'केदारनाथ अग्रवाल के गीत : संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन'

KEDARNATH AGARWAL KE GEET : SAMVEDANATMAK EVAM SHILPAGAT ADHYAYAN

शोधार्थी
उदय भान भगत
पंजीयन संख्या - **पीएच. डी./2577/2014**
दिनांक - **18/09/2014**

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

हिन्दी विभाग
रवीन्द्रनाथ टैगोर भारतीय भाषाएँ एवं संस्कृति अध्ययन संकाय
असम विश्वविद्यालय, सिलचर - 788011, भारत

2019

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि उदय भान भगत (पंजीयन संख्या पीएच.डी./2577/2014, दिनांक- 18/09/2014 ने असम विश्वविद्यालय, सिलचर (असम) की पीएच.डी (हिन्दी) उपाधि के लिए मेरे शोध-निर्देशन में 'केदारनाथ अग्रवाल के गीतः संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन' संज्ञक विषय पर अपना शोध-कार्य पूरा किया है। प्रस्तुत शोध-कार्य शोधार्थी की निजी गवेषणा का फल है। यह पूर्णतः मौलिक है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, इस शीर्षक के अंतर्गत किसी भी विश्वविद्यालय में पीएच. डी. उपाधि हेतु अद्यावधि कोई शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं इस शोध-प्रबन्ध को असम विश्वविद्यालय, सिलचर में पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि-हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति देता हूँ।

शोध-निर्देशक

डॉ. आकाश वर्मा
हिन्दी विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिलचर

घोषणा

मैं उदय भान भगत, पंजीयन संख्या - पीएच.डी./2577/2014 दिनांक-18.09.2014 घोषणा करता हूँ कि 'केदारनाथ अग्रवाल के गीत : संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन' संज्ञक शोध-प्रबन्ध मेरे द्वारा किए गए शोध-कार्य का परिणाम है। इस शोध-प्रबन्ध को मेरे द्वारा अथवा जहाँ तक मेरी जानकारी है अन्य किसी के द्वारा किसी अन्य विश्वविद्यालय अथवा संस्था में किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह शोध-प्रबन्ध असम विश्वविद्यालय, सिलचर में पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

शोधार्थी

दिनांक :
स्थान : असम विश्वविद्यालय, सिलचर

(उदय भान भगत)
हिन्दी विभाग

कृतज्ञता ज्ञापन

मनुष्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त जिज्ञासु होता है, साथ ही वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जिस रास्ते को चुनता है उस रास्ते में जटिलताओं के रोड़े भी काफी होते हैं। उन रोड़ों को हटाने और राह को प्रशस्त करने में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अनेक व्यक्ति और वस्तु सहायक होते हैं। जब कार्य सम्पन्न हो जाता है और जब वह फलप्रसू हो जाता है तब पूर्ववृत्त स्मृतियाँ ही आभार प्रकट करने के लिए हृदय को प्रेरित करती हैं। जहाँ तक शोध, अनुसंधान और गवेषणा का सवाल है वहाँ सफलता प्राप्त करने के लिए लगन, प्रयास, असीम विश्वास, श्रद्धा, विनम्रता और साधना की आवश्यकता होती है। साथ ही गुरूओं, अन्य लोगों का सहयोग, मार्ग-दर्शन और शुभाशीष की नित्तान्त आवश्यकता भी होती है। एक शोधार्थी होने के नाते यह मैं हृदय से कह सकता हूँ कि मुझे दिशा-निर्देश देने और मेरे कमियों और अज्ञानता को दूर करने में सबका सहयोग प्राप्त हुआ है।

अनुसंधान के क्षेत्र में आगे बढ़ने के साथ-साथ मुझे वह पल याद आता है जब मैं सिलचर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में गया और वहाँ मुझे अपनी रूचि के अनुसार अनुसंधान करने का अवसर मिला। मेरा मन श्रद्धा से विनयावनत हो जाता है। शोधकार्य सम्पन्न करने के लिए और जिज्ञासा को शमन के लिए मुझे विभिन्न प्रतिष्ठानों के पुस्तकालयों में जाना पड़ा, जिनमें रवीन्द्रनाथ ग्रंथागार, असम विश्वविद्यालय, सिलचर, कृष्णकांत सन्दिकै पुस्तकालय, गुवाहाटी, जिला पुस्तकालय, नगाँव के अलावे मेरा कार्यस्थल नगाँव गर्ल्स कॉलेज का महेशचन्द्र देवगोस्वामी पुस्तकालय प्रमुख हैं। इन पुस्तकालयों में कार्यरत सभी सदस्यों तथा विशेष रूप से नगाँव गर्ल्स कॉलेज के पुस्तकाल्याध्यक्ष डॉ. किशोर कुमार शर्मा, पुस्तकालय सहायक सुश्री सुमित्रा रॉय तथा गिरिधर हाजरिका के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर पुस्तकालय से पुस्तकों को उपलब्ध कराकर मेरे कार्य को सफल तथा सरल बनाया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की पूर्ण कराने में मेरे शोध निर्देशक डॉ. आकाश वर्मा जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके दिशा-निर्देश में ही इस कार्य को पूर्णता प्रदान कर सका हूँ। उनका मित्रवत व्यवहार मुझे सदैव याद रहेगा। मैं तहे दिल से उनके प्रति आभारी हूँ। सन् 2013 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में रिफ्रेशर कोर्स के दौरान उनसे मुलाकात हुई और उनकी प्रेरणा से ही मैं सन् 2014 में असम विश्वविद्यालय पहुँचा और मुझे अनुसंधान करने का जो मौका मिला उसका ही परिणाम यह शोध-प्रबंध है। मैं पुनः उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

असम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष, डॉ. कृष्णमोहन झा, मेरे गुरूजन डॉ. सत्यपाल सिंह चौहान, डॉ. प्रभात कुमार मिश्र, डॉ. शीतांशु कुमार, डॉ. आकाश वर्मा, डॉ. वेदपर्णा दे तथा विजय चन्द्र का सुझाव और सहयोग समय-समय पर मिलता रहा है। मेरे शोध-कार्य को सुगम और सुरूचिपूर्ण बनाने में इन गुरुजनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मैं उन सभी के प्रति सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

शोध कार्य में आगे बढ़ने और मुझे प्रोत्साहित करने में मेरे सहकर्मियों और मित्रों का बहुमूल्य योगदान रहा है। इनके उत्साहबर्द्धक परामर्शों ने मुझे जो ऊर्जा प्रदान की है उसी ऊर्जा से मैं आगे बढ़ता हुआ शोध-प्रबन्ध को साकार रूप दे पाया हूँ। सहकर्मियों में बिपुल मालाकार, रंजीत बरूआ, मित्रों में नागेश्वर यादव, बिन्द कुमार चौहान, रवीन्द्र सिंह, निर्माली बरा के प्रति मैं आभारी हूँ। कार्यालयीय काम-काजों में सहायता प्रदान करने वालों में असम विश्वविद्यालय के कार्यालय सहायक रूपा पाल के प्रति मैं एहसानमंद हूँ।

मेरे शोध-प्रबन्ध की पूर्णता में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरे घर के प्रत्येक सदस्य का अमूल्य योगदान रहा है। पिता श्री राम सागर भगत, माता श्रीमती शारदा देवी के शुभाशीष और प्रोत्साहन और धर्मपत्नी श्रीमती मंजु देवी का सहयोग और पारिवारिक जिम्मेदारी ने मुझे स्वतंत्र रूप से काम करने का भरपूर अवसर प्रदान किया। पुत्र राहुल कुमार भगत और अंकित कुमार भगत का भरपूर सहयोग भी मुझे प्राप्त होता रहा है, जिन्होंने अपनी पढ़ाई की व्यस्तता में भी मुझे कभी परेशान नहीं किया और अपनी पढ़ाई खुद करते रहे। उन्हें पढ़ाई में सहायता न कर पाने की

आत्मग्लानि मुझे जरूर हो रही है। इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। पारिवारिक सहयोग और प्रोत्साहन के लिए मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों को धन्यवाद देना चाहूँगा।

प्रस्तुत अनुसंधान कार्य चयनित विषय का अंत नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में इस दृष्टि से संबंधित विषयों पर अनुसंधान कार्य होंगे। अपनी सीमित ज्ञान, क्षमता और नगण्य प्रतिभा के सहारे प्रस्तुत विषय पर जितना और जो कुछ भी कर सका हूँ भविष्य में शोधार्थियों के लिए आधार बन सकेगा, यही मेरी आशा है। मुझे विश्वास है, यह शोध-प्रबंध केदारनाथ अग्रवाल के अध्ययन के अनेक अनुद्घाटित विषयों के प्रति विद्वत व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट कर सकेगा।

उदय भान भगत

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय : प्रगतिवाद और केदारनाथ अग्रवाल का जीवन-परिवेश

क) प्रगतिवाद : परिभाषा, स्वरूप एवं विशेषताएँ

ख) केदारनाथ अग्रवाल का जीवन

ग) केदारनाथ अग्रवाल की कृतियाँ

घ) केदारनाथ अग्रवाल का देशकाल एवं वातावरण

ङ) प्रगतिवाद युग से पूर्व की हिन्दी गीत धारा

च) प्रगतिवादी गीत तथा विशेषताएँ

द्वितीय अध्याय : केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्राम्य-जीवन और संस्कृति

क) ग्रामीण जीवन तथा सौन्दर्य का चित्रण

ख) किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों का चित्रण

ग) प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण

घ) प्रेम की अभिव्यक्ति

तृतीय अध्याय : सर्वहारा वर्ग का जीवन और केदारनाथ अग्रवाल के गीत

क) सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति

ख) जीवन यथार्थ का चित्रण

ग) शोषण एवं उत्पीड़न का विरोध

घ) न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान

ङ) समानाधिकार की चेतना

च) पूँजीवाद का विरोध

छ) रूढ़ि का विरोध

चतुर्थ अध्याय : केदारनाथ अग्रवाल के गीत : गीत रचना के तत्वों की कसौटी पर

क) आत्माभिव्यंजना

ख) प्रभावान्विति

ग) संक्षिप्तता

घ) निर्बन्धता

ङ) संगीतात्मकता

पंचम अध्याय : केदारनाथ अग्रवाल के गीत : भाषा तथा शिल्प विधान

क) भाषा का स्वरूप

ख) अलंकार योजना

ग) प्रतीक विधान

घ) बिम्ब विधान

ङ) मिथकों का प्रयोग

उपसंहार

परिशिष्ट

प्रस्तावना

आधुनिक काल में छायावादी साहित्यांदोलन के बाद वस्तुपरक सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत, यथार्थवादी दृष्टिकोण से सम्पृक्त जिस साहित्यांदोलन की चर्चा होती है, उसे प्रगतिवाद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से प्रचलित है। प्रगतिवाद विषमता का विरोधी और समता का समर्थक सिद्धान्त है। इसका मूल लक्ष्य सभी प्रकार के भेदभाव का विरोध और विनाश कर सभी प्रकार की समानता की स्थापना करना है। इसमें जितना स्थान और महत्व अधिकार को दिया गया है, उतना ही स्थान और महत्व कर्तव्य को भी मिला है अर्थात, इसमें अधिकार और कर्तव्य, दोनों में पूर्ण संतुलन रहता है। इसकी व्यवस्था ऐसी रहती है जिसमें कोई भी व्यक्ति दूसरे परिश्रम का लाभ स्वंय उठा उसका शोषण नहीं कर सकता। इसीलिए यह विचारधारा हर उस बात का विरोध करती है जो दूसरों का शोषण करती है अथवा शोषण करने में सहायक होती है।

साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का आविर्भाव सर्वप्रथम 1907 ई. में इटली के माखेति द्वारा हुआ। सन् 1935 में लंदन स्थित भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारा वालों ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना का निश्चय किया। इस निर्णय को कार्य-रूप में बदलने का काम मुल्कराज आनन्द और सज्जाद ज़हीर को सौंपा गया। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में सन् 1936 में हुआ। प्रगतिशील विचारधारा को ग्रहण करते हुए जिन रचनाकारों ने समाज और व्यक्ति के हित में अपनी लेखनी चलाई है उन रचनाकारों को प्रगतिवादी कहा गया है।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील विचारधारा के एक सशक्त गीतकार हैं। उनका सरल, सहज और तरल व्यक्तित्व शीशे की भाँति पारदर्शी था। ये जमीन और जिन्दगी से जुड़े रहने वाले मानवतावादी विचारों वाले व्यक्ति थे। हालाँकि वे पेशे से वकील थे

लेकिन वकालत उन्होंने पैसा कमाने के लिए नहीं की। उनका मूल मकसद वकालत के माध्यम से इंसाफ दिलाना था। वकील होने के बावजूद उन्होंने साहित्य-रचना को जारी रखा। उनकी लगभग 22 काव्य-संग्रह आज उपलब्ध है। इन काव्य-संग्रहों में उनके कुछ श्रेष्ठ गीत भी हैं जिनमें उनकी प्रगतिशील विचारधारा पूर्णरूपेण प्रतिफलित है। अपने गीतों में उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों और हलचलों को बखूबी उभारा है।

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिशील विचारधारा के एक प्रमुख गीतकार हैं। भारत में मार्क्सवादी विचारधारा का पदार्पण रूस क्रांति की सफलता के वजह से हुआ। भारतीय साहित्यकारों के एक वर्ग में भी साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रति आक्रोश और असंतोष की भावना पनपने लगी। उन्हीं साहित्यकारों में से एक हैं केदारनाथ अग्रवाल। विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें मार्क्सवादी दृष्टिकोण से दुनिया को देखने और समझने की धुन लगी रही। धीरे-धीरे शोषित एवं पीड़ित श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषण तथा अत्याचार का विरोध, जनशक्ति में आस्था, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, नवनिर्माण के लिए क्रांति का आह्वान, रूढ़ियाँ का विरोध तथा मानवतावादी विचारधारा के समर्थन के साथ समाजवादी नवनिर्माण के लिए जनता को क्रांति का सन्देश देने वाले रचनाकार हिन्दी के प्रगतिवादी गीतकारों में समापूत होते गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक चालबाजियों को केदारनाथ भली-भाँति जानते थे और उन चालबाजों से सावधान रहने और उसे जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए वे अपने गीतों में आह्वान भी करते हैं। वे अपने समय के समाज से भी पूरी तरह प्रभावित थे। उच्च एवं सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के बावजूद वे छोटे लोगों के प्रति ज्यादा सहृदयी रहे। बचपन से ही अपने पास-पड़ोस में अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, छुआ-छूत, मूर्ति-पूजा, बलि-प्रथा, विधवाओं की समस्यायें, आर्थिक विपन्नता आदि को देखने का भरपूर अवसर उन्हें मिला। उन्हीं के प्रभाव के कारण वे संस्कारित होकर स्वयं लोगों को संस्कारित करने के लिए लिखते रहे और समाज के लोगों में बदलाव लाने और बदले लोगों में सुधार लाने का प्रयास करते रहे। केदारनाथ के

समय की धार्मिक परिस्थितियाँ जनता के अनुकूल नहीं थी। पाखण्ड और आडम्बर से युक्त धर्म से उन्हें सदैव नफरत रही है। रूढ़ियाँ या परम्पराओं का वे विरोध सदैव करते रहे। अपने गीतों में उन्होंने धर्म के आड़ में अधर्म करनेवालों की पोल खोलकर रख दिया है। गरीबी और भूख का तांडव उन्होंने स्वयं अपने आँखों से देखा था। महँगाई की मार तो उन्होंने स्वयं झेला था और दूसरों को भी झेलते हुए देखा था। अपने गीतों में केदारनाथ ने सर्वहाराओं की आर्थिक दुरवस्था का चित्रण बखूबी किया है।

अपने समय के परिवेश से जूझते, सर्वहाराओं की व्यथा-गाथा को गाते और पूँजीपतियों और शोषकों को नकारते तथा धज्जियाँ उड़ाते हुए उन्होंने जो लिखा है वह प्रगतिवाद से प्रभावित है। उनकी रचनाओं तथा उनपर जो भी शोध-कार्य हुए हैं वह कविताओं पर ही होकर सिमटे रहे हैं। उनके गीतों को लेकर कोई शोधकार्य नहीं हुआ है। केदारनाथ कवि ही नहीं एक सफल गीतकार भी हैं और उनके गीतों में संवेदना पूरी तरह से पराकाष्ठा पर है, यह उजागर करने के लिए ही 'केदारनाथ अग्रवाल के गीतः संवेदनात्मक और शिल्पगत अध्ययन' शीर्षक शोध-विषय का चुनाव करना जरूरी महसूस हुआ। यहाँ पूर्वाग्रह रहित होकर प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पूरा करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोधविषय को गवेषणात्मक रूप देने के लिए पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'प्रगतिवाद और केदारनाथ अग्रवाल का जीवन-परिवेश' है। प्रगतिवाद और केदारनाथ की समकालीन परिस्थितियों को जानने, समझने तथा प्रगतिवाद से पूर्व तथा बाद के गीतधारा को रेखांकित करने के लिए इसे छः उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है ---

क) प्रगतिवाद : परिभाषा, स्वरूप एवं विशेषताएँ

ख) केदारनाथ अग्रवाल का जीवन

ग) केदारनाथ अग्रवाल की कृतियाँ

घ) केदारनाथ अग्रवाल का देशकाल एवं वातावरण

ङ) प्रगतिवाद युग से पूर्व की हिन्दी गीतधारा

च) प्रगतिवादी गीत तथा विशेषताएँ

प्रथम उपशीर्षक में प्रगतिवाद की परिभाषा, स्वरूप एवं प्रगतिवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा इसमें प्रगतिवाद और प्रगतिशील की धारणा को स्पष्ट किया गया है। व्यक्ति का जीवन और परिवेश तथा उसकी धारणाएँ ही रचनाओं में प्रतिफलित होती है अतः इसमें केदारनाथ का जीवन, उनकी कृतियाँ तथा परिवेश को देखने समझने का भी प्रयास है। जबकि अध्ययन का क्षेत्र गीत है अतः प्रगतिवाद से पूर्व की हिन्दी गीतधारा और प्रगतिवादी गीत और विशेषताओं को जानना जरूरी समझकर इस अध्याय में उक्त उपशीर्षक को स्थान दिया गया है।

आलोच्य शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय 'केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्राम्य-जीवन और संस्कृति' से संबंधित है। इसमें ग्राम्य जीवन के सौन्दर्य तथा ग्राम्य-संस्कृति को चित्रित करते हुए प्रकृति और प्रेम के सौन्दर्य पर भी प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय को चार उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। इसमें ग्रामीण लोगों के अभाव तथा उनके कर्म-संस्कृति के सौन्दर्य को चित्रित किया गया है। साथ ही किसानों और मजदूरों के संघर्ष तथा अभावों को गीतों में दूढ़ने का प्रयास किया गया है तथा रचनाकार की संवेदना किस हद तक उन लोगों के प्रति है उसे उजागर किया गया है। प्रकृति से जीवनी शक्ति प्राप्त करनेवाले कलाकार केदारनाथ का लगाव प्रकृति से कितना रहा है और उनकी धारणा प्रकृति के प्रति कैसी रही है इस अध्याय में प्रतिफलित किया गया है। अंत में एकनिष्ठ प्रेम को केदारनाथ के पत्नी प्रेम के माध्यम से दिखाया गया है।

आलोच्य शोध-प्रबंध का तृतीय अध्याय 'सर्वहारा वर्ग का जीवन और केदारनाथ अग्रवाल का गीत' है, जिसे सात उपशीर्षकों में विभाजित करके समझने का प्रयास किया गया है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, जीवन यथार्थ का चित्रण, शोषण एवं उत्पीड़न का विरोध, न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान, समानाधिकार की चेतना, पूँजीवाद का विरोध तथा रूढ़ियों का विरोध मिलता है। किसान और मजदूरों के प्रति हमदर्दी और संवेदना केदारनाथ के गीतों में

मिलती है। रिश्वत की समस्या, महंगाई की मार, नशाखोरी, दिखावापन इत्यादि का यथार्थ चित्रण इस अध्याय में प्रस्तुत है। व्यवस्था परिवर्तन तथा हक की प्राप्ति के लिए तथा न्याय के लिए संघर्ष का आह्वान किया गया है। साथ ही पूँजीवाद का घोर विरोध और रूढ़ियों की खात्मा के लिए गीतकार ने अपने गीतों में जो लोगो को आह्वान किया है उसका चित्रण भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

आलोच्य शोध-प्रबंध का चतुर्थ अध्याय 'केदारनाथ अग्रवाल के गीत : गीत रचना के तत्वों की कसौटी पर' संज्ञक है। इसमें गीत के तत्वों के आधार पर छः उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है और केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का मूल्यांकन गीत-तत्व की कसौटी पर किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का पंचम अध्याय 'केदारनाथ अग्रवाल के गीत : भाषा तथा शिल्प' है। इसमें गीतों के कलापक्षीय सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया गया है। अध्ययन की सुविधा तथा स्पष्टता के लिए इसे पाँच उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। प्रथम उपशीर्षक में गीतों की भाषा पर प्रकाश डालते हुए गीतो में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के शब्दों का उल्लेख किया गया है। द्वितीय उपशीर्षक में गीतों में प्रयुक्त विभिन्न अलंकारों को चित्रित किया गया है जिनसे गीतों के सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। तृतीय उपशीर्षक प्रतीक विधान है। इसमें गीतों में प्रयुक्त प्रतीकों पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ उपशीर्षक बिम्ब विधान से संबंधित है। इसमें गीतों में प्रयुक्त ऐन्द्रिय बिम्ब को चित्रित किया गया है। पंचम उपशीर्षक मिथकों के प्रयोग से संबंधित है।

अंत में 'उपसंहार' के रूप में आलोच्य शोध-प्रबंध का सारगर्भित मूल्यांकन एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

शोध-प्रबंध का सारांश

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी गीतकार हैं। बचपन से ही वे संस्कारित व्यक्ति थे। अन्याय उन्हें कतई पसन्द नहीं। बचपन में रूढ़ियों के बलि जरूर हुए, पर रूढ़िवादी वे कभी नहीं रहे। धर्म के आड़ मे चलनेवाले हथकंडे को वे अच्छी तरह जानते थे। शोषकों की मनोवृत्ति और शोषितों की मौनता के दुष्परिणाम को जानकर और समाज तथा व्यक्ति पर पड़नेवाले उसके दूरगामी प्रभाव से बौखलाकर उन्होंने अपने गीतों में शोषितों को सबल बनने तथा शोषकों को समूल नष्ट करने का आह्वान किया है। अपने गीतों में जीवन का यथार्थ-चित्रण कर सबकी आँखें वे खोलना चाहते हैं ताकि लोग अपने समाज तथा शोषित-पीड़ित व्यक्तियों की स्थिति को जान सकें। उन्होंने अपने गीतों में एक तरफ ग्राम्य जीवन के सौन्दर्य का चित्रण किया है तो दूसरी तरफ किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों को भी चित्रित किया है। किसान इस धरती के प्रत्यक्ष भगवान और अन्नदाता हैं लेकिन मालिक और पूँजीपति उनका शोषण करके उनका सर्वस्व लूट लेते हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में इन शोषकों की पोल खोलकर रख दिया है। किसानों और मजदूरों के प्रति संवेदना का भाव केदारनाथ के गीतों में पूर्णतः प्रतिफलित है। गीतों में एक तरफ जहाँ समान अधिकार प्राप्त करने के लिए सर्वहाराओं में चेतना जगाने की कोशिश की गयी है वहीं दूसरी तरफ न्याय और अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्ष का भी आह्वान किया गया है। बिना संघर्ष के व्यवस्था परिवर्तन संभव नहीं। गीतों में प्रकृति और प्रेम को बखूबी उभारा गया है। प्रकृति मानव की तो सहचरी आदिकाल से ही रही है, लेकिन कुछ स्वार्थी तत्वों के वजह से आज प्रकृति विद्रूप हो चुकी है। प्रकृति के प्रति गीतकार की संवेदना बहुत अधिक है। प्रकृति के पेड़ तो मानव के अग्रज हैं। हमारा जीवन प्रकृति के प्रत्येक उपादान से ही चल रहा है। प्रकृति की हानि जीवन और जगत की हानि है। अतः केदारनाथ ने अपने गीतों में प्रकृति के प्रति प्रेम-भाव को जागृत करने की कोशिश की है। आज का प्रेम वासना का रूप ले चुका है। प्रेम स्वार्थ के जंजीरों में जकड़ चुका है। केदारनाथ ने अपने गीतों में एकनिष्ठ दाम्पत्य-प्रेम के स्वस्थ स्वरूप को दिखाकर लोगों को उस ओर अग्रसर कराना चाहा है।

शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय प्रगतिवाद और केदारनाथ अग्रवाल के जीवन-परिवेश से संबंधित है, जो छः उप-अध्यायों में विभाजित है। इसमें प्रगतिवाद की परिभाषा, स्वरूप, विशेषताएँ, प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द की व्याख्या, केदारनाथ अग्रवाल का जीवन

परिचय, उनकी कृतियों का परिचय, उनका परिवेश तथा प्रगतिवाद के पूर्व की हिन्दी गीतधारा तथा प्रगतिवादी गीत एवं विशेषताओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। केदारनाथ का जीवन और परिवेश उनकी रचनाओं में-खास करके गीतों में - पूरी तरह से प्रतिफलित हुआ है, क्योंकि रचनाएँ अंतर्मन की बाह्य प्रतिफलन होती है। एक संवेदनहीन व्यक्ति कभी भी किसी दूसरे के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकता।

'प्रगति' शब्द का अर्थ है - चलना, आगे बढ़ना। अतः प्रगतिवाद का शाब्दिक अर्थ हुआ- वह वाद जो आगे बढ़ने में विश्वास रखता है। इस दृष्टि से इसका अर्थ बहुत व्यापक है; किन्तु आधुनिक हिन्दी में इसका प्रयोग एक विशेष विचारधारा के लिए ही रूढ़ हो गया है। वह विशेष विचारधारा है - मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुकूल साहित्यिक विचारधारा। 'प्रगतिवाद' का शब्दकोशीय अर्थ है- ''समाज, साहित्य आदि की निरंतर उन्नति पर जोर देने का सिद्धांत या साहित्य का एक आधुनिक सिद्धान्त जिसका लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संघटित कर मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के ध्येय की संपूर्ति करना है।''[1] दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि साम्यवादी विचारों का प्रचार करनेवाला या साम्यवादी लक्ष्य की पूर्ति में योग देनेवाला साहित्य ही प्रगतिवादी साहित्य कहलाता है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अनुसार- ''प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति काल में 1936 ई० के आस-पास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। इसके शब्दार्थ से इसके स्वरूप को समझने में भ्रांति होती रही है। इसलिए यही समझना चाहिए कि यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली। प्रगतिवादी काव्य के उद्‌भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक हुई ही साथ ही छायावाद की जीवन-शून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी। एक ओर भारतीय समाज में उभरता हुआ जनसंकट था; तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था जो वहाँ के विषम संकट और संघर्ष से गुजरे जन-जीवन को बल दे रहा था, जो सामन्तवाद और पूँजीवाद की विभिषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था। भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों और संकटों को देख रहा था; दूसरी ओर वह रूस के उस

समाज को देख रहा था जो इन विसंगतियों और संकटों से गुजरकर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था जिसमें सामान्य जन-जीवन को महत्ता प्राप्त हो रही थी; जहाँ नये सुख सुविधा की प्रतिष्ठा हो रही थी। रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बन रहा था।[2] इधर देश की परिस्थिति विषम हो रही थी और उस विषम परिस्थिति में युवकों का हृदय असन्तोष और विद्रोह से कसमसा रहा था। देश की अवस्था प्रगतिवादी विश्वासों और स्वरों के लिए उपयुक्त भूमि बन रही थी।

प्रगतिवाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है- ''प्रगतिवाद उस प्रगतिशील को कहा गया है जो समाजवादी राजनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहा है। प्रगतिशील साहित्य में राजनीति या समाजवाद समाविष्ट या तो नहीं ही रहा है और रहा भी है तो मानववादी स्वर से संगत होकर प्रकट हुआ है और वह सभी साहित्य प्रगतिशील समझा गया है जो अपने मूल-स्वर में आम-आदमी के जीवन से उद्भूत हुआ और उसी के लिए समर्पित हुआ।[17] प्रगतिवादी काव्य में वही कविताएँ सर्वग्राह्य हो सकते हैं, जो मार्क्सवादी दार्शनिक जीवन-दृष्टि से वस्तुवता को भेदकर आम-आदमी की मानसिकता से सक्रिय होती हैं और रचना में रची जाकर उस भाषा से और लय से रूपायित होती हैं जो अधिक से अधिक व्यक्तियों को सम्प्रेषित होती हैं।''[18]

प्रगतिवाद को और अधिक जानने और समझने के लिए असके मूल-तत्वों को समझ लेना जरूरी है। मूल-तत्व ही प्रगतिवाद के स्वरूप को जानने में सहायक होंगे-

1. प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक विकासशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

2. मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' को इसका मूलाधार माना गया है। धन का असमान विभाजन को मानव-समाज की सम्पूर्ण विषमताओं का असली और मूल कारण घोषित कर समाज में धन के समान वितरण पर बल दिया गया है।

3. इसका दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी और यथार्थवादी है। इसी कारण यह किसी भी अलौकिक शक्ति अर्थात् ईश्वर, भाग्यवाद, परलोकवाद, कर्मफल, आत्मा की अमरता आदि पर विश्वास नहीं करता, क्योंकि प्रगतिवादी मान्यता के अनुसार समाज के सुविधाभोगी उच्च-वर्ग

ने निम्न-वर्ग को हमेशा दबाए रखने और उसका शोषण करते रहने के लिए इन सबकी कल्पना कर उसे भ्रमित और असहाय बनाए रखा है।

4. प्रगतिवाद का लक्ष्य पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद आदि सभी प्रकार की शोषक शक्तियों का विरोध और उन्मूलन कर ऐसे समाज की स्थापना करना है जिसमें सबको परिश्रम द्वारा उन्नति करने तथा जीवन की सामान्य सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर उनके भोगने का समान अवसर और अधिकार प्राप्त होगा।

5. यह साहित्य और सभी प्रकार की कलाओं को अभिव्यक्ति का साधन-मात्र मान 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त का विरोधी और 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का समर्थक है।

6. यह व्यक्तिवादी-साहित्य का घोर विरोधी और समाज को प्रधानता देने वाले साहित्य का समर्थक है। इसी कारण यह साहित्य में व्यक्ति के ऊपर समाज की सत्ता का अंकुश चाहता है।

प्रगतिवादी गीत जनवादी गीत है। जन संवेदनाओं, उसके सुख-दुःख, शोषण-उत्पीड़न और संघर्ष को गीतात्मक सम्प्रेषणीयता देने की दृष्टि से इस दौर के गीतकारों की उपलब्धियाँ सदैव प्रेरक हैं और प्रेरक रहेंगी।

प्रगतिवादी गीतों का अध्ययन करने के बाद उसकी कुछ विशेषताएँ सामने उभर कर आती हैं, जो इस प्रकार हैं-

1) प्रगतिवादी गीत मानवतावादी गीत हैं। इसमें मानव के सुख-दुःख, संघर्ष और उन पर होनेवाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण कर मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

2) प्रगतिवादी गीत वर्ग-संघर्ष मूलक गीत हैं। संघर्ष द्वारा ही सामंती और पूँजीवादी वर्ग को ध्वस्त कर सर्वहारा और शोषित वर्ग का उद्धार कर साम्यवाद की स्थापना किया जा सकता है। अतः प्रगतिवादी गीतकारों ने वर्ग-संघर्ष मूलक गीत लिखे हैं।

3) प्रगितवादी गीत क्रांतिमूलक गीत हैं। प्रगतिवादियों की दृष्टि में क्रांति द्वारा ही सर्वहारा अपने हक को प्राप्त कर सकता है।

4) प्रगतिवादी गीत प्रशस्तिमूलक गीत है। इसमें मजदूरों, किसानों, मार्क्स-लेनिन की प्रशस्तियाँ गायी गई है।

5) प्रगतिवादी गीत में ग्राम्य-प्रकृति का यथार्थ-चित्र प्रस्तुत किया गया है। मानव और प्रकृति में यहाँ तादात्म्य स्थापित किया गया है। प्रकृति ही मानव को जीवनी-शक्ति प्रदान करती है। अतः प्रकृति यहाँ उपेक्षित नहीं है।

6) प्रगतिवादी गीत सामाजिक गीत है। इसमें मजदूरों की गरीबी, ग्रामीण स्त्रियों की दुर्दशा, समाज में फैली बुराइयों को गीत का विषय बनाया गया है। इसमें एक तरफ समाज को बदलने के लिए उद्‌बोधन किया गया है तो दूसरी तरफ पाठकों के अन्दर संवेदना जगाने की कोशिश की गयी है।

7) प्रगतिवादी गीत में वर्तमान सामाजिक और आर्थिक जीवन की विसंगतियों एवं वैषम्य पर व्यंग्य के माध्यम से कठोर आघात किया गया है।

8) प्रगतिवादी गीत जनवादी गीत हैं क्योंकि यह जनता के हित के लिए लिखा गया गीत है।

शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्राम्य-जीवन और संस्कृति से संबंधित है। इसमें ग्राम्य जीवन का सौन्दर्य तथा अभाव-अभियोग का चित्रण है। इस अध्याय को चार उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है, क्योंकि केदारनाथ अग्रवाल गहन इंद्रिय संवेदना, सामाजिक प्रतिबद्धता के गहरे सरोकार, आधुनिक बोध और विकासमान ऐतिहासिकता की संयुक्त समझदारी से पैदा हुई भीतरी छटपटाहट, लोक-सौन्दर्य और किसान चेतना की मस्ती और उसकी उत्सवधर्मिता के उर्ध्वमुखी गीतकार हैं। उन्होंने सौन्दर्य को ग्रामीण परिवेश और श्रम-संस्कृति में देखा है। द्वितीय उप-अध्याय किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों से संबंधित है। इसमें केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में चित्रित किसानों के अभावों का उल्लेख किया गया है, जिसके वजह से गीतकार की संवेदना उन संघर्षशील अन्नदाताओं के प्रति है। गीतकार की संवेदना पाठकों की भी संवेदना बन जाती है। प्रस्तुत अध्याय का तृतीय उप-अध्याय प्रकृति से संबंधित है। इसमें प्रकृति के प्रति गीतकार की संवेदना पूर्णतः संप्रेषित है। केदारनाथ के गीतों में एकतरफ देशी माटी की सोंधी महक है तो दूसरी तरफ प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण। साहित्य जगत में इनकी ख्याति का आधार प्रकृतिपरक गीत ही हैं। इनमें चित्रित प्रकृति न तो वास्तविकता से दूर की आलंकारिक कल्पना का चोला पहने हुए हैं और न ही छायावादी कवियों की तरह रहस्यात्मकता का आवरण उस पर चढ़ा है। केदारनाथ के गीतों में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन और मानवीकरण के रूप में चित्रित है। वह

कहीं-कहीं सहचरी के रूप में भी दिखाई पड़ती है। प्रकृति के साथ तादात्मय पर उन्होंने लिखा है - ''मै अब अपने आस-पास से, लोगों से, पेड़-पशुओं और पक्षियों से, नदी, पहाड़ और हो रहे घटना-क्रम से सम्बद्ध बना रहता हूँ। यही मानव जीवन है। मैं जब भी इस सबसे असम्बद्ध होने लगूँगा तभी मर जाऊँगा'' गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर ही बच्चन सिंह ने उनके विषय में लिखा है -- ''केदार छायावादोत्तर कविता के पंत हैं।'' चौथा उप-अध्याय प्रेम से संबंधित है। प्रेम मानव जीवन का एक अनमोल रत्न है। केदारनाथ के गीतों में चित्रित प्रेम एकनिष्ठ और स्वकीया प्रेम है। उन्होंने कहीं भी मानसिक तृप्ति के लिए परनारी के सौन्दर्य को चित्रित नहीं किया है। जहाँ कहीं भी वे प्रेम का चित्र उभारते हैं वहाँ केन्द्रविन्दु में उनकी धर्मपत्नी ही होती हैं। उनके गीतों में प्रेम का एकनिष्ठ और शुद्ध रूप ही दिखाई पड़ता है। केदारनाथ ने स्वयं स्वीकार किया है - ''सौन्दर्य प्रकृति में भी है और नारी में भी। यह तो कवि-कवि पर निर्भर है कि वह अपने जीवन में प्रकृति के सौन्दर्य से सम्बद्ध हुआ है या कि नारी के सौन्दर्य से अथवा दोनों के सौन्दर्य से। मेरी रचनाओं में दोनों को समान स्थान मिला है। प्रकृति भी उतनी ही आकर्षक और प्रेरक होती है, जितनी नारी।''

शोध-प्रबंध का तृतीय अध्याय सर्वहारा वर्ग के जीवन से संबंधित है, जिसे सात उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप-अध्याय सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति से संबंधित है। केदारनाथ अग्रवाल को किसान और मजदूरों से ज्यादा हमदर्दी थी। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है -- ''मुझे अपने जीवन में जितने छोटे और गरीब आदमी मिले, वे उन सभी बड़े व ओहदेदारों व शक्तिसम्पन्न पैसे वालों से ज्यादा ही चरित्रवान और कर्मठ आदमी लगे और वही जीवन जीने के लिए सौ-सौ तकलीफें उठाते हैं और कष्ट पर कष्ट झेलते हैं। फिर भी आदमी की तरह जीने के लिए वे ललकते और जीवन की आग और आँधी को पकड़ते और मरते-खपते रहते है।'' केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में सर्वहाराओं के प्रति जो सहानुभूति और संवेदना है उसे ही इस उप-अध्याय में चित्रित किया गया है। दूसरा उप-अध्याय जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। तीसरे उप-अध्याय में शोषण और उत्पीड़न का जो विरोध केदारनाथ के गीतों में मिलता है उसका सविस्तार वर्णन किया गया है। चौथा उप-अध्याय न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान से संबंधित है। इसमें सर्वहाराओं को अपने अधिकार प्राप्ति और न्याय प्राप्ति के लिए गीतकार ने गीतों में संघर्ष करने के लिए जो प्रेरणा दिया है उसका उल्लेख किया गया है। पाँचवा उप-अध्याय सामानाधिकार की

चेतना से संबंधित है। इसमें पूँजीवाद की दीवार तोड़ समता की स्थापना की बात कही गयी है। समान अधिकार प्राप्ति के लिए गीतकार ने अपने गीतों में शोषितों और पीड़ितो के अन्दर एक चेतना जगाने की कोशिश की है, ताकि समाजवाद की स्थापना हो सके। छठा उप-अध्याय पूँजीवाद के विरोध से संबंधित है। पूँजीवादी व्यवस्था में कतई समाजवाद की स्थापना संभव नहीं। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में पूँजीवाद रूपी दानव को खत्म करने की बात की है। पूँजीवादी व्यवस्था समाज में विकृतियाँ लाती है और व्यक्ति को बर्बाद करती है। शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिए पूँजीवाद का खात्मा नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय का सातवाँ उप-अध्याय रूढ़ि का विरोध है। परम्परावादी मानसिकता और रूढ़ियाँ कभी कल्याणकारी नहीं होती। प्रगतिवादी चाहता है कि धर्म, समाज और जीवन की सभी रूढ़ियों को समाप्त किया जाये, क्योंकि ये सब पूर्व-व्यवस्थाओं की ही देन हैं, प्रतिक्रियावादी हैं और श्रमिकों का अहित करती हैं। ईश्वर, भाग्यवाद, धर्म, परम्परागत रीति-रिवाज सब व्यर्थ हैं। धर्म अफीम का नशा है और भाग्य भ्रांति है। केदारनाथ अग्रवाल बचपन से ही रूढ़ि विरोधी मानसिकता के व्यक्ति रहे हैं। अतः उन्होंने अपने गीतों में रूढ़ि का खुलकर विरोध किया है। प्रस्तुत उप-अध्याय में गीतों में जिन रूढ़ियों का विरोध किया गया है उसी पर प्रकाश डाला गया है।

शोध-प्रबंध का चतुर्थ अध्याय केदारनाथ के गीतः गीत रचना के तत्वों की दृष्टि से संबंधित है। इस अध्याय में गीत-तत्व की दृष्टि से केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का मूल्यांकन किया गया है और उन्हें एक सफल गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में गीत के छः तत्वों- आत्माभिव्यंजना, भावप्रवणता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, प्रभावान्विति, निर्बन्धता- के आधार पर केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का अध्ययन किया गया है।

उनके गीतों का अध्ययन करने पर गीतों में छः तत्व स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। संगीतात्मकता और संक्षिप्तता उनके गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। अनुभूति की अभिव्यक्ति भी बेजोड़ है। गीतों को पढ़ने पर लगता है कि गीतकार की आत्मानुभूति परानुभूति और सर्वानुभूति बन गयी है। इसके अलावा भाव की द्रवणशीलता भी उनके गीतों मे स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनके गीत पाठकों और श्रोता पर प्रभाव डाले बगैर नहीं रहते। गीत में जो संवेदना गीतिकार ने दिखाई है वही संवेदना पाठकों के अन्दर भी जागृत हो जाता है। वे

गीतों में इस तरह से उसकी प्रस्तुति करते हैं कि उसकी छाप ह्रदय पर अंकित हुए बगैर नहीं रहता। जहाँ तक निर्बन्धता का सवाल है वहाँ गीतकार ने गीतों में एक नये छन्द का निर्माण किया है जो पारंपरिक छन्द के बंधन से मुक्त हैं। मुक्त होने के बावजूद वे अपने अर्थ-गांभीर्य को छोड़ते नहीं। तुकबंदी और लयात्मकता तो इनके गीतों में है ही। अतः कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल एक अच्छे गीतकार हैं और उनकी पहचान हिन्दी साहित्य में एक गीतकार के रूप में बने, यही इस शोध का उद्देश्य भी है।

शोध-प्रबंध का पंचम अध्याय भाषा तथा शिल्प विधान से संबंधित है। इसे पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। इस अध्याय में मूल रूप से केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त भाषा, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब और मिथकों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम उप अध्याय में भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए उसमें प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के शब्दों (तत्सम, तदभव, देशज, विदेशी) पर विचार किया गया है। गीतों की भाषा सहज, सरल, मुहावरेदानी से भरपूर एवं पात्रानुकूल है। द्वितीय उप-अध्याय अलंकार योजना से संबंधित है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त शब्दालंकार और अर्थालंकारों का अध्ययन किया गया है। अलंकार गीतों को और भी सुन्दर बनाने में सक्षम हुए हैं। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - ''मेरी सौन्दर्य-प्रियता शाब्दिक-आलंकारिक क्रीड़ा-कौतुकी स्वभाव की नहीं होती, मानवीय स्वभाव की अभिव्यक्ति की होती है।'' उनके गीतों में अलंकार अनायास आये हुए हैं। प्रकृति-चित्रण में ज्यादातर मानवीकरण अलंकार का प्रयोग मिलता है। तृतीय उप-अध्याय प्रतीक योजना से संबंधित है। इसमें केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त प्रतीकों का अध्ययन किया गया है। गीतों में प्रयुक्त प्रतीक बौद्धिक एवं संवेदात्मक हैं। बौद्धिक प्रतीक विचारों एवं संवेगों की मिश्रित उद्‌भावना करते हैं तथा संवेगात्मक प्रतीक भावों की अंतरंगता को प्रकट करते हैं। गीतों में प्रयुक्त 'सूरज' कर्मशील व्यक्ति का प्रतीक है, 'तुरंग' और घुड़सवार क्रमशः शोषित और शोषक के प्रतीक हैं, 'कालीमिट्‌टी' अदम्य साहसी किसान का प्रतीक है; 'छोटे हाथ' कृषक और मजदूरों के प्रतीक, 'झोपड़ी' और 'महल' क्रमशः सर्वहारा और अभिजात्य वर्ग के प्रतीक, 'भुजंग' नेताओं के प्रतीक, 'चिड़िया' मानव का आकुल अंतर के प्रतीक, 'भैंस' स्वार्थी और शोषकों के प्रतीक, 'घूरे का घास'-सर्वहारा का प्रतीक; 'कौआ' और 'कबूतर' क्रमशः शोषक और शोषित के प्रतीक के रूप में चित्रित हैं। चतुर्थ उप-अध्याय बिम्ब-विधान से संबंधित है। बिम्ब का निर्माण ऐसी चयन-प्रक्रिया है जो ध्वनि, गति और प्रकृति के प्रभावों से

जीवन्त होकर भावक की विचार और संवेदना-तंत्रियों को झंकृत कर देता है; मनोवेगों को उद्वेलित कर देता है। इस उप-अध्याय में केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त बिम्ब का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। गीतों में बिम्बों का प्रयोग यथास्थान, यथासंभव और आवश्यकतानुसार हुआ है। गीतों में प्रयुक्त बिम्ब इन्द्रियग्राह्य हैं। इन्द्रिय-संवेदना के आधार पर वर्गीकृत सभी बिम्ब-दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्राण और आस्वाद्य-का प्रयोग गीतों में हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय का पंचम उप-अध्याय मिथकों का प्रयोग से संबंधित है। मिथक और साहित्य का घनिष्ठ संबंध अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। अतः केदारनाथ के गीतों में मिथकों का प्रयोग मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हालाँकि केदारनाथ अग्रवाल मिथक के पक्षपाती नहीं थे, फिर भी वे इससे बच नहीं पाये हैं। जाने-अनजाने उनके गीतों में मिथकों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने सौन्दर्यानुभूति के लिए 'मिथ' का प्रयोग नहीं किया है। ये मिथ आधुनिक संदर्भ तथा परिस्थितियों को उभारने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मिथों द्वारा काव्याभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होती है, अतः कथन को प्रभावशाली बनाने, व्यवस्था परिवर्तन करने तथा मानसिकता बदलने के लिए ही केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में 'मिथ' का प्रयोग किया है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों के संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन के उपरान्त वस्तुनिष्ठ शोध-निष्कर्षों की निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं --

1) केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी गीतकार हैं। उनके गीतों का अनुशीलन और अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि गीत के सभी तत्व उनमें मौजूद हैं। अतः हिन्दी साहित्य के प्रगतिवादी गीतधारा के वे एक श्रेष्ठ गीतकार हैं।

2) केदारनाथ अग्रवाल अपने जनपद के जीवन की समस्याओं एवं संघर्षों से जुड़े हुए व्यापक भारतीय समाज की प्रकृति, संस्कृति और विकृतियों की पहचान तथा अभिव्यक्ति करने वाले गीतकार हैं।

3) केदारनाथ अग्रवाल गीतों में जहाँ एक और ग्राम्य जीवन एवं संस्कृति को उद्घाटित करते हैं वहीं दूसरी और सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी पूरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

4) केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में अधिकार प्राप्ति एवं न्याय के लिए क्रांति की चेतना तथा संघर्ष का आह्वान मिलता है।

5) गीतों में सामाजिक विकृतियों एवं रूढ़ियों का पूरजोर विरोध कर स्वस्थ मानसिकता और स्वस्थ समाज की स्थापना पर बल दिया गया है।

6) लोक जीवन से सीधे सरल उपमानों, शब्दों, प्रतीकों, बिम्बों को लेकर रचित गीत लोक रस से संपृक्त हैं।

7) केदारनाथ अग्रवाल के गीतों की भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का मिश्रण है। मुहावरे का भी यथास्थान, यथासंभव प्रयोग हुआ है। उनकी भाषिक संवेदनशीलता में सामाजिक संवेदनशीलता छिपी हुई है। अतः उनके गीतों की भाषा देश, काल, परिवेश और पात्र के अनुरूप है।

8) केदारनाथ अग्रवाल कोई अलंकारवादी गीतकार नहीं हैं। अतः उनके गीतों में अलंकारों का प्रयोग सायास नहीं हुआ है। अपने गीतों में उन्होंने कथ्य की माँग के अनुसार ही अलंकारों को प्रयोग में लाया है।

अंततः कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल एक प्रगतिवादी गीतकार हैं। प्रगतिवाद की सारी विशेषताएँ उनके गीतों में मिल जाती है। जबकि वे मानवतावादी विचारधारा के एक गीतकार हैं, उनकी संवेदना सर्वहाराओं और पीड़ितों के प्रति है। आडम्बर उनमें लेशमात्र भी नहीं, चाहे वह भाव हो या शब्द-शिल्प। अपने सहज-सरल व्यक्तित्व एवं संवेदनशीलता के वजह से हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद युग के एक सफल गीतकार के रूप में केदारनाथ अग्रवाल अमर रहेंगे।

आशा है प्रस्तुत शोध-प्रबंध केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का संवेदनात्मक और शिल्पगत अध्ययन गीतों के भाव-पक्ष और कलापक्ष के अंतःसंबंध के साथ-साथ गीतकार के मनोवृत्ति को समझने में सहायक होगा।

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

प्रगतिवाद और केदारनाथ अग्रवाल का जीवन-परिवेश

क) प्रगतिवाद : परिभाषा, स्वरूप एवं विशेषताएँ

ख) केदारनाथ अग्रवाल का जीवन

ग) केदारनाथ अग्रवाल की कृतियाँ

घ) केदारनाथ अग्रवाल का देशकाल एवं वातावरण

ङ) प्रगतिवाद युग से पूर्व की हिन्दी गीतधारा

च) प्रगतिवादी गीत तथा विशेषताएँ

क) प्रगतिवाद : परिभाषा, स्वरूप एवं विशेषताएँ

'प्रगति' शब्द का अर्थ है - चलना, आगे बढ़ना। अतः प्रगतिवाद का शाब्दिक अर्थ हुआ- वह वाद जो आगे बढ़ने में विश्वास रखता है। इस दृष्टि से इसका अर्थ बहुत व्यापक है; किन्तु आधुनिक हिन्दी में इसका प्रयोग एक विशेष विचारधारा के लिए ही रूढ़ हो गया है। वह विशेष विचारधारा है - मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुकूल साहित्यिक विचारधारा। 'प्रगतिवाद' का शब्दकोशीय अर्थ है- ''समाज, साहित्य आदि की निरंतर उन्नति पर जोर देने का सिद्धांत या साहित्य का एक आधुनिक सिद्धान्त जिसका लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संघटित कर मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के ध्येय की संपूर्ति करना है।''[1] दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि साम्यवादी विचारों का प्रचार करनेवाला या साम्यवादी लक्ष्य की पूर्ति में योग देनेवाला साहित्य ही प्रगतिवादी साहित्य कहलाता है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अनुसार- ''प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति काल में 1936 ई० के आस-पास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। इसके शब्दार्थ से इसके स्वरूप को समझने में भ्रांति होती रही है। इसलिए यही समझना चाहिए कि यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली। प्रगतिवादी काव्य के उद्‌भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक हुई ही साथ ही छायावाद की जीवन-शून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी। एक ओर भारतीय समाज में उभरता हुआ जनसंकट था; तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था जो वहाँ के विषम संकट और संघर्ष से गुजरे जन-जीवन को बल दे रहा था, जो सामन्तवाद और पूँजीवाद की विभिषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था। भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों और संकटों को देख रहा था; दूसरी ओर वह रूस के उस समाज को

देख रहा था जो इन विसंगतियों और संकटों से गुजरकर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था जिसमें सामान्य जन-जीवन को महत्ता प्राप्त हो रही थी; जहाँ नये सुख सुविधा की प्रतिष्ठा हो रही थी। रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बन रहा था।[2] इधर देश की परिस्थिति विषम हो रही थी और उस विषम परिस्थिति में युवकों का हृदय असन्तोष और विद्रोह से कसमसा रहा था। देश की अवस्था प्रगतिवादी विश्वासों और स्वरों के लिए उपयुक्त भूमि बन रही थी।

डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा के अनुसार- ''हिन्दी में 'प्रगतिवाद' शब्द का प्रयोग उस साहित्य के लिए प्रयुक्त किया गया है जो साम्यवादी विचारधारा से अनुप्रेरित और गहरे रूप में प्रभावित था। यह साम्यवादी विचारधारा यूरोप में सन् 1917 में हुई रूसी-क्रांति और वहाँ साम्यवादी शासन की स्थापना करनेवाली थी और उसके बाद भी विश्व के गुलाम और पिछड़े हुए देशों के साथ ही यह विचारधारा साम्राज्यवादी और पूँजीवादी देशों में भी प्रचार पाने लगी थी। भारत में भी साम्यवादी-विचारधारा फैलने और व्यापक होने लगी थी। भारत में कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना के उपरान्त इस विचारधारा का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस विचारधारा से प्रभावित साहित्य की रचना होने लगी, तो उस साहित्य को 'प्रगतिवादी साहित्य' कहा जाने लगा। अतः हिन्दी में 'प्रगतिवाद' का अर्थ हुआ साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित और उसके सिद्धान्त के अनुसार लिखा गया साहित्य।''[3]

आधुनिक काल में छायावादी साहित्यांदोलन के बाद वस्तुपरक सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत, यथार्थवादी दृष्टिकोण से सम्पृक्त जिस साहित्यांदोलन की चर्चा होती है, उसे प्रगतिवाद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।[4] 'प्रगति' से सामान्य तात्पर्य उन्नति से ही है। साहित्य में प्रगतिशीलता का अर्थ है साहित्य द्वारा जीवन की प्रगति उन्नति का उद्देश्य।[5] डॉ० नामवर सिंह के अनुसार- ''छायावाद के गर्भ से सन् 30 के आस-पास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ उसे सन् 36 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गयी और तब से

इस नाम के औचित्य-अनौचित्य को लेकर काफी वाद-विवाद होने के बावजूद छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य-धारा को प्रगतिवाद नाम से ही पुकारा जाता है।''[6] 'प्रगतिवादी कविता' के विषय में केदारनाथ अग्रवाल की राय है- '' 'प्रगतिवादी कविता' इतिहास की उस मानसिकता की कविता होती है, जो मानसिकता समाजवादी या मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को प्राप्त करके निर्मित होती है और जिसके द्वारा दूसरों की वैसी ही मानसिकता बनने की प्रक्रिया चल निकलती है और व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ता चला जाता है और मानवीय मूल्यों की निरन्तरता बराबर बनी रहती है।''[7] जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित की जाती है। दूसरे शब्दों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है।[8]

प्रगतिवाद : स्वरूप

प्रगतिवाद विषमता का विरोधी और समता का समर्थक सिद्धान्त है। इसका मूल लक्ष्य सभी प्रकार के भेदभाव का विरोध और विनाश कर सभी प्रकार की समानता की स्थापना करना है। इसमें जितना स्थान और महत्व अधिकार को दिया गया है, उतना की स्थान और महत्व कर्तव्य को भी मिला है, अर्थात् इसमें अधिकार और कर्तव्य, दोनों में पूर्ण संतुलन रहता है। इसमें उसी व्यक्ति को अधिकार मिलता है जो अपने कर्तव्य का पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ पालन करता है। इसकी व्यवस्था ऐसी रहती है जिसमें कोई भी व्यक्ति दूसरे के परिश्रम का लाभ स्वयं उठा उसका शोषण नहीं कर सकता। इसीलिए यह विचारधारा हर उस बात का विरोध करती है जो दूसरों का शोषण करती है अथवा शोषण करने में सहायक होती है।

छायावाद में जिस प्रकार व्यक्तिवादी चेतना प्रधान है, उसी प्रकार प्रगतिवादी का मूलाधार सामाजिक यथार्थवाद है।[9] हिन्दी में बहुत से विद्वानों ने 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' इन दोनों शब्दों को एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया है, किन्तु ऐसा करना भ्रामक है। इन दोनों के शब्दों के अर्थ में सूक्ष्म अन्तर है। 'प्रगतिवाद' शब्द मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से सर्वथा सम्बद्ध है जबकि

'प्रगतिशील' शब्द उससे सर्वथा स्वतंत्र। किसी भी उपकरण से समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करने वाला साहित्य प्रगतिशील कहला सकता है और ऐसा करना साहित्य का शाश्वत धर्म है। प्रगतिवादी साहित्य सामाजिक वैषम्य के निवारण करने के लिए मार्क्सवादी विचारधारा को माध्यम के रूप में अपनाने के लिए विवश है।[10]

साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का आविर्भाव सर्वप्रथम 1907 ई० में इटली के माखेति द्वारा हुआ।[11] सन् 1935 ई० में हेनरी बारबूज के नेतृत्व में संसार के प्रगतिशील लेखकों को संगठित करने का प्रयास पेरिस में हुआ। 'संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व-लेखक अधिवेशन' (वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ राइटर्स फॉर दि डिफेंस ऑफ कल्चर) उसी वर्ष पेरिस में बुलाया गया। इस अधिवेशन में प्रगतिशील लेखकों की एक स्थायी समिति बनायी गयी। इसके अध्यक्ष अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार और विचारक ई० एम० फोर्स्टर थे। सन् 1935 में ही लंदन स्थित भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारा वालों ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना का निश्चय किया। इस निर्णय को कार्य-रूप में बदलने का काम मुल्कराज आनन्द और सज्जाद ज़हीर को सौंपा गया। वहीं पर संघ का घोषणा-पत्र भी तैयार किया गया जिसका सारांश प्रेमचन्द ने हंस में छापा। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में सन् 1936 में हुआ। सन् 1938 का अधिवेशन रवि बाबू की अध्यक्षता[12] में सम्पन्न हुआ। यद्यपि आरम्भ से ही इस संघ के साथ वामपंथियों का सम्बन्ध जुड़ गया था, पर आरम्भ में यह मार्क्सवादी राजनीति से दूर रहा और जीवन की ऐहिक उन्नति, सामाजिक प्रगति और युगानुरूप उच्च नव सांस्कृतिक मूल्यों की सामान्य प्रतिष्ठा ही इसका लक्ष्य रहा। पर बाद में वामपंथी लेखकों और विचारकों ने इसे मार्क्सवादी राजनीतिक दृष्टि से बाँधकर 'प्रगतिशीलता' से 'प्रगतिवाद' बना दिया। प्रगतिशीलता किसी वाद-विशेष से नहीं बँधी थी, जबकि प्रगतिवाद मार्क्सवाद से बँध गया। इसी से प्रगतिवाद की परिभाषा या व्याख्या आज यह रूढ़ हो गई है कि राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है।

'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा लिखते हैं- '' 'प्रगतिशील' और 'प्रगतिवाद' दो शब्द हैं। इनके अपने-अपने व्यापक अर्थ भी हैं और विशिष्ट अर्थ भी है। 'प्रगतिशील' शब्द के भीतर वह सब कुछ आ जाता है जो आगे प्रगति कर रहा हो अथवा करनेवाला हो। इसमें मानव-जीवन और समाज अपने सम्पूर्ण रूप में अंतर्भुक्त हो जाता है। इस दृष्टि से मानवतावाद भी प्रगतिशील था और साम्यवाद भी प्रगतिशील है। उस साहित्यकार को प्रगतिशील कहा जा सकता है जो मानव और मानव समाज के यथार्थ रूप का अंकन करता हुआ आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करे। यह प्रगतिशील का सामान्य और व्यापक अर्थ है। इसके विपरीत हिन्दी में 'प्रगतिवाद' शब्द का प्रयोग उस साहित्य के लिए प्रयुक्त किया गया है जो साम्यवादी विचारधारा से अनुप्रेरित और गहरे रूप में प्रभावित था। यह साम्यवादी विचारधारा यूरोप में सन् 1917 में हुई रूसी-क्रांति और वहाँ साम्यवादी शासन की स्थापना करनेवाली थी और उसके बाद भी विश्व के गुलाम और पिछड़े हुए देशों के साथ ही यह विचारधारा-साम्राज्यवादी-विचारधारा फैलने और व्यापक होने लगी थी। आगे चलकर जब इस विचारधारा से प्रभावित साहित्य की रचना होने लगी तो उस साहित्य को 'प्रगतिवादी-साहित्य' कहा जाने लगा।[13] अर्थात् हिन्दी में 'प्रगतिवाद' का अर्थ हुआ- साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित और उसके सिद्धांतों के अनुसार लिखा गया साहित्य। इसके विपरीत 'प्रगतिशील' का अर्थ हुआ व्यापक मानवता से प्रेरित ऐसा साहित्य जिसमें जन-जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हुए मानव और समाज के कल्याण और विकास की आकांक्षा व्यक्त की गयी हो।

डॉ० नामवर सिंह के मत में- ''प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं है, बल्कि यह एक निरन्तर विकासशील साहित्य-धारा है, जिसके लेखकों का विश्वास है कि प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अतःप्रेरणा से उद्भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है और उसके सिद्धान्त उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं।''[14] प्रगतिशील साहित्य संज्ञा का प्रचार यूरोप में उस समय हुआ जब समाज और साहित्य

की गति में एक प्रकार की स्थिरता अथवा कुछ-कुछ ह्रास का अनुभव किया जा रहा था। इस दमघोंटू स्थितिशीलता से उबरने के लिए वहाँ के लेखकों ने प्रगति का नारा दिया। अपने यहाँ हिन्दुस्तान में सन् '३६' के आसपास एकदम यूरोप-सा गतिरोध तो नहीं था, लेकिन कविता में छायावाद का विकास लगभग रूक-सा गया था और कवि कुछ नये विचारों और नये व्यंजना के माध्यमों की खोज में थे। ऐसे ही समय यूरोप से लौटे हुए हिन्दुस्तानी लेखकों ने 'प्रगति' को आवाज लगायी और यह आवाज छायावादी कवियों को अपने अन्तर की प्रतिध्वनि-सी प्रतीत हुई।[15]

डॉ० नामवर सिंह ने प्रगतिवादी साहित्य को पूर्णतः भारतीय बताते हुए लिखा है- ''यदि प्रगतिवाद की माँ मार्क्सवाद ही है तो हिन्दी में प्रगतिवाद का जन्म उन्नीसवीं सदी में ही हो जाना चाहिए था क्योंकि उस समय यूरोप में मार्क्सवाद की धूम मची हुई थी और हिन्दुस्तानी लोग तक यूरोप के सम्पर्क में अच्छी तरह आ गये थे। लेकिन वास्तविकता यह है कि हिन्दी में प्रगतिवाद पैदा हुआ 1930 ई० के बाद। इसका साफ मतलब है कि प्रगतिवाद हिन्दी में अपने समय पर ही पैदा हुआ- ऐसे समय जब हिन्दी जाति और साहित्य की जमीन उसके अनुकूल तैयार हो गयी थी।''[16]

प्रगतिवाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है- ''प्रगतिवाद उस प्रगतिशील को कहा गया है जो समाजवादी राजनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहा है। प्रगतिशील साहित्य में राजनीति या समाजवाद समाविष्ट या तो नहीं ही रहा है और रहा भी है तो मानववादी स्वर से संगत होकर प्रकट हुआ है और वह सभी साहित्य प्रगतिशील समझा गया है जो अपने मूल-स्वर में आम-आदमी के जीवन से उद्भूत हुआ और उसी के लिए समर्पित हुआ।[17] प्रगतिवादी काव्य में वही कविताएँ सर्वग्राह्य हो सकते हैं, जो मार्क्सवादी दार्शनिक जीवन-दृष्टि से वस्तुवता को भेदकर आम-आदमी की मानसिकता से सक्रिय होती हैं और रचना में रची जाकर उस भाषा से और लय से रूपायित होती हैं जो अधिक से अधिक व्यक्तियों को सम्प्रेषित होती हैं।''[18]

प्रगतिवाद : विशेषताएँ

प्रगतिवाद की कुछ विशेषताएँ हैं जिन्हें निम्नलिखित विन्दुओं पर देखने का प्रयास किया जा रहा है-

i) रूढ़ि-विरोध- प्रगतिवादी रचनाकार की दृष्टि में जगत के सृष्टिकर्ता ईश्वर नही है। सृष्टि का विकास तो संघर्ष से हुआ है। जागतिक द्वन्द्व ही सृष्टि को विकसित करने का मूल कारण है। प्रगतिवादी ईश्वर की सत्ता को पूर्णतः नकारता है। उसे आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक आदि में विश्वास नहीं। वह धर्म को अफीम की नशा और प्रारब्ध को प्रवंचना मानता है। वह जातिवाद में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार नियम और उपनियम तो मनुष्य के बनाये हुए हैं अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए। वह इन नियमों को पूर्णरूपेण खारिज कर देता है। उसके लिए धार्मिक स्थल, धार्मिक ग्रंथ, कर्मकांड महत्वहीन हैं। वह अंधविश्वास, मिथ्या परम्पराओं और रूढ़ियों के दलदल में फँसे मानवों का उद्धार चाहता है। वह मानव को मानव के रूप में मानवी कर्तव्य करते हुए देखने का इच्छुक है। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी रचनाकार होने के नाते अपने गीतों में धर्म-संबंधी अंधविश्वास पर करारा चोट करते हैं-

दिनभर अधरम करने वाले
पर नारी को ठगने वाले
पर संपति को हरने वाले
भीषण हत्या करने वाले
धर्म लूटने के अधिकारी
टोली की टोली में निकले।[19]

ii) शोषितों के प्रति सहानुभूति- शोषण एक ऐसा दानव है जो मानवता को पूरी तरह से निगलता जा रहा है। इसका खात्मा साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना द्वारा ही किया जा सकता है। हमारे यहाँ मजदूर और किसान सबसे ज्यादा शोषित और पीड़ित हैं। कृषि कर्म करके देश को अनाज उपलब्ध कराने वाले किसान के प्रति बहुत कम लोगों के अन्दर संवेदना का भाव होता है। प्रगतिवादी रचनाकार इन्हीं शोषित

और पीड़ित कृषक और श्रमिक तथा आर्थिक दृष्टि से विपन्न लोगों की पीड़ा को यथार्थ रूप में चित्रित कर उनके प्रति सहानुभूति का भाव पैदा करता है। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए लिखा है-

खाते हैं पेट की थैली में गाड़ते
रोटी के टुकड़े को दाँत से काटते
माँजते हैं बरतन
नंगी ही धरती पर सोते हैं
काँखते-हाँफते
रोज की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की।[20]

iii) शोषकों के प्रति आक्रोश- आज के युग में दो ही जातियाँ इस संसार में हैं जो शोषक और शोषित के नाम से जाने जाते हैं। शोषक वर्ग में जमींदार, व्यापारी, उद्योगपति और पूँजीपति आते हैं जो पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक हैं क्योंकि इसी के बल पर वे शोषण की चक्की में सर्वहराओं को पीसते हैं। शोषित वर्ग में कृषक-मजदूर आदि आते हैं जो शोषकों के बलि चढ़ते रहते हैं। प्रगतिवादी इस प्रतिकूल सामाजिक व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहता है। वह निरीहों पर हो रहे अन्याय और अत्याचार को देखकर अक्रोश से भर जाता है और प्रलयंकारी शंखनाद करता है। केदारनाथ अग्रवाल अपने गीतों में शोषकों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

पैसे वाले पूँजी वाले
सब जन घर में बंद हैं
ऊनी कपड़े पहने खुश हैं
उनको बहु-आनंद है
दीवारों की गरमाहट को
उनके घर में आग है
दौड़ाने को तन में गरमी
बोतल भरी शराब है।[21]

iv) क्रांति की भावना- साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए सामन्तवादी परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक है। केवल परम्पराओं का उन्मूलन ही काफी नहीं बल्कि शोषकों का समूल नाश जरूरी है, अतः प्रगतिवादी कवि, क्रांति के उन प्रलयंकारी भैरव स्वरों का आह्वान करता है, जिनसे जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियाँ एवं परम्पराएँ किसी अनन्त में विलीन हो अस्तित्वहीन हो जाए। उन्हें समझौते या हृदय-परिवर्तनवादी नीति पर तनिक विश्वास नहीं है। वह फोड़े को दबाने के बजाय अस्त्रोपचार कर उसका स्थायी इलाज चाहता है। प्रगतिवादी कवि प्राप्तव्य को प्राप्त करने के लिए क्रांति का आह्वान करता है। प्रगतिवादी गीतकार केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में क्रांति की चेतना दर्शनीय है-

आज मंडलाकार मेघ-सा उमड़-घुमड़ कर
शासन को थर्राने वाला
कोटि-कोटि कंठों का जनमत
भारत की आजादी के हित
ओजपूर्ण गर्जन करता है।[22]

v) मार्क्स तथा रूस का गुणगान- साम्यवाद के प्रवर्तक एवं समर्थक मार्क्स तथा रूस दोनों का उन्मुक्त गान प्रगतिवादी काव्य में मिलता है। कवि नरेन्द्र शर्मा ने लाल रूस का गुणगान करते हुए लिखा है-

लाल रूस है ढाल साथियों! सब मजदूर किसानों की,
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ नहीं है बेकारी।
लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन सब इन्सानों का,
दुश्मन है सब मजदूरों का, दुश्मन सभी किसानों का।[23]

vi) मानवतावाद- प्रगतिवादी साहित्यकार अपनी मातृभूमि से प्रेम करने के कारण ही लिखता है और अपने ही देश के सर्वहाराओं का उद्धार करना चाहता है। वह समस्त मानवता का उद्धार भी करना चाहता है। उसे पीड़ित लोगों से प्यार एवं सहानुभूति है। संसार के किसी भी कोने में किसी के प्रति किये गये अत्याचार के प्रति

उसके मन में क्रोध है। उसके लिए मानव होने के नाते सभी बराबर हैं। मानवतावादी विचारधारा के होने के नाते केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में मानवतावाद का पूर्ण झलक मिलता है-

जो आदमी
मर गये आदमी के पास
समवेदना में खड़ा है,
वह आदमी
जुल्म और जंगल से
निजात पाने के
इंतजार में खड़ा है।[24]

vii) वेदना और निराशा- प्रगतिवादी रचनाओं में वेदना और निराशा का पूर्ण चित्रण हुआ है। प्रगतिवाद की वेदना वैयक्तिक और सामाजिक दोनों है। वह संघर्षो से जूझता हुआ निराश और हताश नहीं होता। उसे विश्वास है कि वह इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने में सफल होगा और एक न एक दिन वह समता का सबेरा देख पायेगा। उसकी ओजस्विनी वाणी शोषित-वर्ग के अन्दर अत्याचारियों से लड़ने की चेतना जगाती है। प्रगतिवादी इस संसार को ही स्वर्ग बनाना चाहते हैं जिसमें वर्ग-भेद, शोषण और रूढ़ियों का नामोनिशान न हो। केदारनाथ अग्रवाल ने 'पंख और पतवार' नामक काव्य-संग्रह के गीत में कर्म करने की बेताबी और अपनी छटपटाहट को व्यक्त किया है-

अब तक अकेला मैं अकेला हूँ
विरक्ति के मुँह में
त्रिकाल को भोगता
दिन के साथ उड़ता
शाम के साथ ढलता
रात के साथ रोता।[25]

निराशा के क्षणों में लिखित गीतों में गीतकार ने यह बताना चाहा है कि प्रगतिवादी भी जीवन में उदास और निराश होते हैं।

viii) नारी-चित्रण- प्रगतिवादी रचनाकार का मानना है कि किसान और मजदूरों की तरह नारी भी शोषित और पीड़ित है। वह सदियों से पुरुषों की दासी बनी हुई है और वह पुरुषों की दासता की जंजीर में बंधकर पददलित हो रही है। ऐसा लगता है जैसे उसकी स्वतंत्रता ही खत्म हो चुकी है और वह पुरुषों की हवस मिटाने वाली कोई उपकरण हो। उसकी आत्मा की तेज पुरुषों की नजर में निस्तेज हो गई है। प्रगतिवादी रचनाकार केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में नारी की दीन-दशा का चित्रण पूर्ण-रूपेण हुआ है। 'पति की टेक' नामक गीत में नारी के प्रति पुरुष की मानसिकता का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है-

सुन ले मेरी ब्याही औरत!
ऊपर से नीचे तक पूरा
अंगुल अंगुल इस देही का
मेरा ही बस मेरा ही है![26]

'गाँव की औरतें' नामक गीत में भी ग्रामीण नारियों का यथार्थ-चित्र प्रस्तुत किया गया है। गाँव की औरतें हाड़-तोड़ मेहनत करके गुजर-बसर करती हैं पर उन्हें पेट भर खाना भी मयस्सर नहीं-

गाँवों की औरतें
सूखा पिसान फाँक-फाँककर
पीठ-पेट एक कर-हाड़ तोड़
मरती हैं पत्थर रगड़कर!![27]

ix) सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण- प्रगतिवादी पूर्व के साहित्य में मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के जीवन को प्रतिफलित किया गया था, पर प्रगतिवादी काव्य में सर्वहाराओं और निम्नवर्ग के जीवन को प्रतिबिम्बित कर उनके प्रति सहानुभूति का भाव जागृत करने का प्रयास किया गया है। आज के रचनाकारों के सामने अनेक नई-नई

समस्यायें हैं, अतः वह अध्यात्मिकता की राग अलापने के बजाय आज के वैज्ञानिक युग की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयासरत है। सर्वहाराओं की समस्याओं ने उसे व्यथित बना दिया है। वह सामाजिक जीवन की यथार्थ को खुली आँखों से देखकर चित्रित करने लगा है। उसे विलास, मादक-वसन्त, ऐश्वर्य, सुमन-सुरभि सब असार लगने लगे हैं। जबकि केदारनाथ अग्रवाल एक प्रगतिवादी रचनाकार हैं उन्होंने बाँदा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है-

यह बाँदा है
सूदखोर, आढ़तवालों की इस नगरी में।
जहाँ मार, काबर, कछार, मड़ुआ की फसलें,
कृषकों के पौरुष से उपजा कन-कन सोना।
लढ़ियों में लद-लदकर आकर
बीच हाट में बिक कर कोठों गोदामों में
गहरी खोहों में खो जाता है जा जा कर...।[28]

x) सामयिक समस्याओं का चित्रण- प्रगतिवादी कवि देश हो या विदेश सब की सामयिक समस्याओं के प्रति अत्यंत सजग रहा है। उसके लिए विश्व-संस्कृति और मानवतावाद की प्रतिष्ठा और साहित्य में जन-जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए यह आवश्यक भी था। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान विभाजन, कश्मीर समस्या, बंगाल का अकाल, महंगाई, दरिद्रता, बेकारी और चरित्रहीनता आदि का प्रगतिवादियों ने कविताओं में चित्रण किया है। केदारनाथ अग्रवाल ने 'बाप बेटा बेचता है' नामक गीत में सामयिक समस्याओं का चित्रण बखूबी किया है-

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म, धीरज, प्राण खोकर,
हो रही अनरीति बर्बर राष्ट्र सारा देखता है।[29]

xi) कला संबंधी मान्यता- प्रगतिवादी कवियों की भाषा में सरलता और बोधगम्यता है। उसमें किसी प्रकार का आडम्बर नहीं है। छन्द के क्षेत्र में इस धारा के कवियों ने उदार दृष्टिकोण से काम लिया है। मुक्तक और अतुकान्त छन्दों के साथ इन्होंने गीतों, लोक-गीतों की शैली का भी प्रयोग किया है। अलंकार के क्षेत्र में भी उन्होंने रूढ़-उपमानों का परित्याग करते हुए नवीन रूपक, उपमान एवं प्रतीक प्रस्तुत किये हैं।

ख) केदारनाथ अग्रवाल का जीवन

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील विचारधारा के एक सशक्त गीतकार हैं। उनका जन्म (जन्मकुंडली के अनुसार) 1 अप्रैल 1911 ई० और हाईस्कूल के प्रमाण-पत्र के अनुसार 6 जुलाई 1910 ई० को उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के कमासिन में हुआ था। उनके दादा का नाम महादेव प्रसाद था। पिता श्रीहनुमान प्रसाद किसानी करते थे और ब्रजभाषा में कविता भी लिखते थे। उनका कवि नाम प्रेमयोगी मान था। कविता के प्रति जो रुचि केदारनाथ के अन्दर दिखाई पड़ती है वह उन्हें अपने पिता के संस्कार और परिवेश से प्राप्त हुई थी। केदारनाथ अग्रवाल की माँ का नाम धसिट्टो था। एक अन्धविश्वास मूलक प्रथा के अनुसार उनकी माँ को पैदा होते ही जमीन पर घसीटा गया था, इसलिए उनका नाम घसिट्टो पड़ गया।[30]

मध्यप्रदेश कटनी में रहते हुए उनका ब्याह पार्वती देवी से हुआ। उस समय वे सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। दसवीं कक्षा में पढ़ते समय उनका गौना हुआ। जब वे इंटर में थे तब उन्हें एक कन्या की प्राप्ति हुई। एक साक्षात्कार में केदारनाथ ने अपने परिवार का परिचय देते हुए कहा है- ''मेरे स्वर्गीय पिता का नाम श्री हनुमान प्रसाद गुप्त था। मेरी माता जी का नाम घसिट्टो था। मेरी पत्नी का नाम पार्वती है। मेरी बड़ी लड़की का नाम श्यामा (हेमा) अग्रवाल है, इलाहाबाद में ब्याही है। उससे छोटी लड़की का नाम किरन अग्रवाल है, दिल्ली में ब्याही है। मेरी सबसे छोटी सन्तान मेरा बेटा अशोक कुमार अग्रवाल है। वह मद्रास में सिनेमेटोग्राफर है और उसकी पत्नी का

नाम ज्योति अग्रवाल है। उसके तीन पुत्र हैं; बड़े बेटे का नाम प्रशांत, मझले का विशाल और छोटे का आकाश है।''[31] केदारनाथ को बाल-सुलभ खेलों में गुल्ली-डंडा, गोली, कबड्डी आदि में रुचि थी।[32] सारंगी केदारनाथ का प्रिय वाद्य था। वे सारंगी बजाते नहीं थे; सुनते थे। बुन्दिया खाना उन्हें बेहद पसन्द था।

व्यक्तित्व

केदारनाथ अग्रवाल को बाँदा के लोग प्रेम और आदर से 'बाबूजी' कहते थे। सामने भी या पीठ पीछे भी कोई उन्हें उनके नाम से नहीं याद करता था- नाम लेता भी था तो या तो 'केदार-बाबू' कहता था या फिर बाबू केदारनाथ अग्रवाल। सबको समान स्नेह और आदर देते थे। चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या बे-पढ़ा किसी को भी अपने 'छोटेपन' का अहसास नहीं होने देते थे। उम्र का, बुजुर्गियत का, विद्वता का, कविताई का और अभिजात्य का कोई अहं उनमें लेश-मात्र भी नहीं था। नये लेखकों, रचनाकारों से मिलने-जुलने की प्रवृत्ति उनमें प्रबल थी। प्रगतिशीलता उनकी सहज जीवन आचरण थी। उनकी प्रगतिशीलता किताबी नहीं थी। वामपंथी पार्टियों की नीतियों से कुछ विशेष लेना-देना नहीं था। प्रगतिशीलता उनकी निजता थी।[33]

केदारनाथ का सरल, सहज और तरल व्यक्तित्व शीशे की भाँति पारदर्शी था। अन्दर-बाहर सब एक जैसा। कोई बनावटीपन नहीं, दिखावा नहीं। पाटरे की जाँधिया और बुशशर्ट में हैं तो उसी वेश-भूषा में बिना किसी कुंठा के घंटो बतियाते थे। बतियानेवाला कोई भी हो- नामी-गिरामी वकील, डिग्री कॉलेज का प्रोफेसर, बाँदा के नौजवान, बाहर से आया हुआ कोई छोटा बड़ा साहित्यकार, औरतें-बच्चे, रिक्शेवाला, घर के नौकर, मुंशीजी, मजदूर, किसान, मुवक्किल आदि। उनका व्यक्तित्व एक दर्पण की तरह भी था जिसमें सामनेवाला अपनी प्रतिबिम्बित छवि को देख सकता था।[34] लापरवाही केदारनाथ को बिल्कुल पसन्द नहीं थी। जीवन में संयम तथा समय की पाबंदी और पकड़ के प्रति वे हमेशा संजीदा रहे हैं। बाँदा में किराये के मकान में आजीवन रहे। खपरैलों वाला घर था और दीवारें मिट्टी की थी, लेकिन जब तक

जिन्दा रहे उनका पूरा घर तुरंत की हुई सफाई का अहसास देता था- पूर्णतः धूल रहित रहता था। प्रातः काल जल्दी उठना उनकी आदत थी। नौकर द्वारा साफ किये गये घर की सफाई पर उन्हें यकीन नहीं था। प्रातःकाल उठकर पूरे घर की धूल झाड़ना एक तरह से उनका व्यसन बन गया था। इसे ही वे अपना प्रातःकालीन व्यायाम भी मानते थे। ''गंदगी केदारनाथ को बिल्कुल पसन्द नहीं थी- गंदगी चाहे घर की हो, चाहे शरीर की, चाहे विचारों की, चाहे चरित्र की।''[35]

केदारनाथ का व्यवहार आडम्बर रहित था। उनसे कोई किसी भी समय मुलाकात करने क्यों न जाए; बड़े ही आदर और अपनी सहज मुस्कान से उनका स्वागत करते थे। ये मेहनतकशों, वंचितों, दलितों और उपेक्षितों को वाणी देने वाले गीतकार हैं। उन्होंने अपने यहाँ काम करनेवालों को कभी डाँटा-पिटा नहीं। गरीबों और मेहनतकश लोगों के प्रति उनकी हमदर्दी दिन पर दिन बढ़ती गयी। उन्होंने खुद स्वीकार किया है- ''मैं कुलीन घराने में जन्मा जरुर लेकिन मुझे मेरी बतसिया कहारिन अपने घर उठा ले जाती थी। उनके यहाँ मैं बासी भात और मट्ठा खाकर वहीं सो जाता था। अपने घर के पकवान मुझे अच्छे नहीं लगते थे; मैं घर के पकवान ले जाता था, तो उस मोहल्ले के बच्चों को बाँट देता था। वे लोग बेर तोड़ लाते थे और रूखी-सूखी रोटियाँ। तो ये चीजें मैं प्रेम से खाता था।''[36] जमीन और जिन्दगी से जुड़े रहनेवाले केदारनाथ का दृष्टिकोण मानवतावादी था। वे कहते हैं- ''मैं तो पूरी तरह से जमीन और जिन्दगी से जुड़ा हुआ था। मेरा दृष्टिकोण मानववादी था। इतना जानता था कि आदमी को बेईमान नहीं होना चाहिए, किसी को छलना नहीं चाहिए।''[37] केदारनाथ अग्रवाल के मानववादी होने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी वकालत है। उन्होंने सच को सच और झूठ को झूठ साबित करने तथा लोगों को इंसाफ दिलाने के लिए वकालत की थी। एक साक्षात्कार में वे कहते हैं- ''वकालत मैंने सच को झूठ और झूठ को सच करने के लिए नहीं, न ही निर्दोष को दोषी ठहराने के लिए की, न ही किसी की किसी से साँठ-गाँठ कर की, किसी की सम्पत्ति

अपहरण करने के लिए की। वकालत मैंने विवेक से और बुद्धि से, आम आदमी का हमदर्द होकर, सच को सच और झूठ को झूठ साबित करने के लिए की।''[38]

केदारनाथ को हास्य-विनोद से सहज प्रेम था। प्रेम ही नहीं, हँसना, प्रसन्न रहना उनकी सहज-वृत्ति थी। वह हास्य-विनोद की सामग्री वहाँ ढूढ़ लेते थे जहाँ कवियों की निगाहें कम जाती हैं।[39] वे स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। चाटुकारी और जी-हुजूरी करना उनकी फितरत में नहीं था। वे साफ तौर से कहते थे- ''एक मुकदमें में चालीस रुपये मिलते हैं सो उस पर पूरी मेहनत कर देता हूँ। इसके बाद मुझसे यह नहीं होता कि हाकिमों के दरवाजे जाकर सुबह-शाम सलामी ठोकूँ। बड़े लोगों के साथ बैठकर शराब पिऊँ- भईया; ये है बाँदा। तुरत आन मा तान होते हैं।''[39]

केदारनाथ अग्रवाल पत्नी-प्रेमी और प्रकृति प्रेमी हैं। उनके गीतों में यह दोनों प्रेम पूरी तरह से प्रतिफलित हुआ है। केदारनाथ का प्रेम स्वकीया है; एकनिष्ठ है और वर्तमान संदर्भ में शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक है, प्रासंगिक है। केदारनाथ अग्रवाल अपना काम खुद करते थे। कुँए से पानी खींचकर अपना कपड़ा खुद धोते थे, उन्हें काम करने में कोई शर्म नहीं आती थी, उनके अन्दर हीनता की भावना नहीं थी। धोबी के यहाँ, जहाँ तक उन्हें याद है, कपड़े कभी नहीं धुलाए।[41] केदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व बहुत ही सहज, सरल, मानववादी और सहानुभूतिपूर्ण था। सादा जीवन उच्च विचार के ये साक्षात् प्रतिमूर्ति थे।

शिक्षा

केदारनाथ अग्रवाल की शिक्षा ग्राम ही की प्राथमिक पाठशाला में प्रारम्भ हुई। औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ उनके मन पर अनौपचारिक शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। गाँव के स्कूल में भय और आतंक के बल पर पढ़ाई होती थी। पाठ याद न करने पर हरी-हरी लपलपाती सटैया से धुलाई होती थी; तमाचे जड़े जाते थे; मुर्गा बनाया जाता था; मेज के पाये के नीचे हाथ दबाने की धमकी दी जाती, जूते और लात के रूप में प्रसाद मिलता और आशीर्वाद के रूप में मिलती माँ-बहन की खालिस

गालियाँ। केदारनाथ भी इन अनुभवों से अछूते न रहे। शिक्षा-दीक्षा के ऐसे ही ग्रामीण माहौल में अधिकांश बच्चों की भाँति केदारनाथ भी कक्षा तीन तक पढ़े। काठ की पट्टी पर कालिख से रंगते, घुट्टे से घोटकर चमकाते बोरके (दावात) की गीली खड़िया से, सेंठे की कलम से लिखते, उबने पर धूल में गोल दायरा बनाकर, उसमें मक्खी मारकर रखते।[42] सन् 1911 से 1921 तक इसी वातावरण में संस्कारित गाँव की पाठशाला की मार से त्रस्त केदारनाथ अंग्रेजी पढ़ने की लालसा से 1921 में रायबरेली गये। वहाँ कक्षा चार में बड़े मनोयोग से पढ़ना शुरू किया। जिस मार के भय से केदारनाथ गाँव छोड़कर रायबरेली पढ़ने गये, उसी से फिर सामना हुआ। अंग्रेजी के खलील मास्टर सौ-सौ जुमले एक साथ ट्रांसलेशन के लिए देते और काम पूरा न करने पर बेंत से वह धुलाई करते कि देखकर रूह काँप जाती। इसी डर से केदारनाथ उनका काम घर के दरवाजे पर पड़े एक पत्थर पर बैठकर जरूर पूरा करते।

केदारनाथ अग्रवाल को नेचर स्टडी और मैनुअल ट्रैनिंग की कक्षाएँ बेहद प्रिय थी। नेचर स्टडी की कक्षा में क्यारियाँ बनाते, आलू बोते, सब्जी लगाते, सिंचाई-गुड़ाई करते। उन्हें नरम-नरम मिट्टी बहुत अच्छी लगती। काँपी पर पत्तियाँ चिपकाना इस कोर्स का हिस्सा था जिसने वनस्पतियों से केदारनाथ का घनिष्ठ परिचय कराया। मैनुअल ट्रैनिंग में कागज की नाव बनाते, रंग-बिरंगे कागजों से तरह-तरह के खिलौने बनाते। इन सबमें उन्हें बहुत मजा आता। इसी बीच केदारनाथ के पिता घर से रुष्ट होकर पत्नी सहित मध्यप्रदेश के कटनी चले गये। केदारनाथ की छठी से आगे की शिक्षा वहीं से शुरु हुई। सन् 1927 में आठवीं कक्षा पास करने के बाद केदारनाथ अपने पिता के साथ इलाहाबाद चले गये। इलाहाबाद में ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज में नौवीं में दाखिल हुए और अपने ननिहाल नैनी में रहने लगे। कक्षा नौवीं तक केदारनाथ हरदम हँसते रहते थे, लेकिन आगे चलकर दसवीं में गौना होने और कविता के प्रति गंभीर होने के बाद उनके स्वभाव में भी गंभीरता आ गयी। दसवीं कक्षा में केदारनाथ मामा का घर छोड़कर ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज के हॉस्टल में आ

गये। केदारनाथ पर विद्यार्थी और पति की दुहरी जिम्मेदारी आ पड़ी, पर वे इस जिम्मेदारी को बखूबी संभाल रहे थे। इंटर में पढ़ते समय वे पिता बन गये। बी०ए० की पढ़ाई केदारनाथ ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पूरा किया। यहीं उनका परिचय नरेन्द्र शर्मा और शमशेर से हुआ। ये सब एक ही कक्षा में थे। सभी लोग हिन्दू हॉस्टल में रहते थे। केदारनाथ कमरा नं. 114 में रहते थे। बी०ए० के दोनों वर्षों में केदारनाथ 'हिन्दी साहित्य परिषद' के सचिव थे। साहित्यिक व्यस्तता काफी थी, इसलिए वे 1934 में बी०ए० फाइनल में अंग्रेजी-प्रोज के पेपर में फेल हो गये। 1935 में हिन्दी, अंग्रेजी, दर्शन-शास्त्र तथा अर्थ-शास्त्र लेकर उन्होंने बी०ए० पास किया और इलाहाबाद छोड़कर डी०ए०वी० कॉलेज, कानपुर चले गये। 1938 में लॉ की डिग्री लेकर बाँदा लौट आये।

वृत्ति एवं पेशा

केदारनाथ अग्रवाल पेशे से वकील थे। लॉ पास करने के बाद अपने संयुक्त परिवार के मुखिया और बाँदा के ख्यातनामा वकील चाचा मुकुन्दलाल जी के साथ वकालत शुरू की। उस समय उनके पास यदि पाँच सौ रुपये होते तो वे आवश्यक राशि जमा करके तभी 'एडवोकेट' बन गये होते, पर मात्र पचीस रुपये जमा करके 'प्लीडर' ही बन सके। स्वाभिमान के कारण चाचा से रुपये माँगे नहीं और चाचा ने अपने आप रुपये भी नहीं दिये। वकालत शुरू करने के पहले ही वे कवि बन चुके थे। ''वकालत उनका पेशा है, रोजी-रोटी चलाने के लिए, क्योंकि कविता के धंधे से रोटी नहीं चलती। वे मानते हैं कि वकालत उन्हें तर्क से लैस किए रहती है। आदमी को परखने और उसके अंदर बैठने का मौका देती है। समझ और सोच बढ़ाती है। आज के आदमी का असली रूप उन्हें कचहरी में ही देखने को मिलता है। वे साफ-साफ स्वीकार करते हैं कि अगर वे वकील न होते तो असफल कवि होते।''[43]

केदारनाथ अग्रवाल खुद स्वीकार करते हैं- ''मैं अपने पेशे से बहुत क्षुब्ध रहता था। पैसा कमा सकने में कमजोर पड़ता था और जीवन-यापन का कोई दूसरा रास्ता

खोजता था।''[44] वकालत से परेशान केदारनाथ 26.12.55 को रामविलास शर्मा के नाम एक पत्र में लिखते हैं- ''मैं तो पाँव बाँधकर यहाँ रूपया चुगने की टोह में रोज न्यायालय के चक्कर काटता हूँ। परन्तु एक भी मुअक्किल आजकल नजर नहीं आता। पता नहीं अब क्या काम करना पड़े। कुछ तो राय दो। वरना धूल फाँककर पेट पालना असम्भव है।''[45] किसी को ठगने, परेशान करने या जबरदस्ती फीस वसूलने की मानसिकता उनकी कभी नहीं रही। अनेक परेशानियों और आर्थिक तंगी से गुजरने के बावजूद वे कभी भी पलायनवादी नहीं बने। प्रतिकूल परिस्थितियों को कोशिश और मेहनत द्वारा अनुकूल बनाते रहे। सन् 1963 में वे सरकारी वकील DGC फौजदारी के बना दिये गये और 4 जुलाई 1970 तक इस पद पर कार्यरत रहे। सरकारी वकील के रूप में पहले 20 रुपये प्रति मुकदमे की दर से तथा बाद में 40 रुपये प्रति मुकदमे की दर से मेहनताना मिलता था।[46] उन्होंने 19.04.1991 को दूरदर्शन महानिदेशालय, दिल्ली में सहायक नियंत्रक का पदभार भी संभाला था।

मानद उपाधि

केदारनाथ अग्रवाल को सन् 1989 में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', प्रयाग द्वारा 'साहित्य-वाचस्पति' और बुन्देलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी द्वारा सन् 1995 ई० में डी.लिट. की उपाधि प्रदान की गयी।

पुरस्कार

केदारनाथ अग्रवाल को समय-समय पर कुछ पुरस्कार भी प्राप्त होते रहे हैं। लेकिन उन्होंने कभी भी उपाधियों और पुरस्कारों की परवाह नहीं की, मिल गया तो दूसरी बात है।[47] प्राप्त पुरस्कारों की सूची निम्नलिखित हैं-

i) सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार (1973) (फूल नहीं रंग बोलते हैं पर)।

ii) ‘उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान’, लखनऊ द्वारा दीर्घकालीन सेवाओं के लिए 1979-80 का विशिष्ट पुरस्कार।

iii) ‘अपूर्वा’ पर 1986 का साहित्य अकादमी पुरस्कार।

iv) मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल का तुलसी सम्मान (1986)।

v) मध्यप्रदेश साहित्य परिषद,भोपाल का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान (1990)।

निधन

केदारनाथ एक रात दीवाल पर थोड़ी ऊँचाई पर लगी अपनी दीवाल घड़ी में चाभी भरने स्टूल पर खड़े हुए कि अचानक बिजली चली गयी; संतुलन डगमगाया और वे स्टूल से नीचे गिर गये। कुल्हे की हड्डी टूट गयी थी। डॉक्टर से इलाज कराने के बावजूद कोई लाभ नहीं हुआ और वे 22 जून 2000 को सदा के लिए इस संसार को छोड़कर विदा हो गये।

ग) केदारनाथ अग्रवाल की कृतियाँ

केदारनाथ अग्रवाल स्कूली जीवन से ही कविता लिखना प्रारम्भ कर चुके थे। नवीं कक्षा में पढ़ते समय तोते पर लिखी उनकी एक कविता ‘सेवा’ में छपी। ‘सरस्वती’ के माध्यम से वे खड़ीबोली से परिचित हुए। इसके अलावे वे हिन्दी साहित्य के कई प्रमुख रचनाकारों और कवियों के सम्पर्क में आये। उन रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रभाव केदारनाथ पर काफी हद तक पड़ा। हरिऔध, पंत, निराला, नरेन्द्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, नाटककार भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, विश्वम्भरनाथ शर्मा ‘कौशिक’, मुंशी प्रेमचन्द, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, गिरिजा कुमार माथुर, नरोत्तम नागर आदि के सम्पर्क में वे थे। शमशेर ने अंग्रेजी

कवियों से केदारनाथ का परिचय कराया। निराला के आतिथ्य सत्कार से वे काफी प्रभावित थे। उनके यहाँ ही रामविलास शर्मा से केदारनाथ का परिचय हुआ। यह परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठ मित्रता में तब्दील हो गया। उनकी लिखित कविताएँ और गीत- सेवा, वीणा, रूपाभ, उच्छृंखल, हंस, नया-साहित्य, नया पथ, जनयुग आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। सन् 1930 में वे पूरी तरह काव्य-सृजन में तल्लीन हो गये। उनके द्वारा रचित व प्रकाशित ग्रंथों का परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

काव्य-संग्रह

i) युग की गंगा- 'युग की गंगा' की सभी कविताएँ प्रगतिवादी भावभूमि की कविताएँ हैं। इसका प्रकाशन सन् 1947 में हुआ और इस संकलन ने कवि केदारनाथ के व्यक्तित्व को उभारा। वर्तमान में यह काव्य-संग्रह अप्राप्य है। इसकी लगभग 42 कविताएँ एवं गीत साहित्य भंडार, इलाहाबाद से प्रकाशित 'गुलमेंहदी' काव्य-संग्रह में संग्रहित हैं।

ii) नींद के बादल- इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 1947 में हुआ। इसकी कुछ कविताएँ प्रेम-संबंधी, प्रकृति संबंधी, रहस्यवादी, यथार्थवादी, मनोवृत्ति की हैं। यह संग्रह भी अप्राप्य है। इसकी भी लगभग 41 कविताएँ एवं गीत 'गुलमेंहदी' नामक काव्य-संग्रह में हैं।

iii) लोक और आलोक- केदारनाथ अग्रवाल का यह तीसरा काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ। इस संकलन में गीतों की एक नई दिशा में कुछ सुन्दर और श्रेष्ठ प्रयोग हुए हैं। यह संग्रह भी अपने मूल रूप में अप्राप्य है। इसकी प्रायः 37 कविताएँ और गीत 'गुलमेंहदी' में संकलित हैं।

iv) फूल नहीं रंग बोलते हैं- यह काव्य-संग्रह सन् 1965 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल 235 कविताएँ एवं गीत हैं।

v) आग का आईना- यह काव्य-संग्रह सन् 1970 में प्रकाशित हुआ। इसमें केदारनाथ अग्रवाल की भीतरी तपन, मन की कसक और क्रांति की ज्वाला है। इस संकलन में कुछ 106 कविताएँ और गीत हैं जो सन् 1960 से 1969 तक की लिखी हुई हैं।

vi) गुलमेंहदी- इसका प्रकाशन सन् 1978 ई० में हुआ। इसमें कुल 152 कविताएँ एवं गीत हैं। इसमें तीन अप्राप्य काव्य-संकलन (युग की गंगा, नींद के बादल और लोक और आलोक) की अधिकांश कविताएँ और गीत के अलावा कुछ अन्य कविताएँ और गीत भी संकलित हैं।

vii) पंख और पतवार- प्रस्तुत काव्य-संग्रह सन् 1980 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रकृति संबंधी और जीवन यथार्थ से संबंधित कविताएँ और गीत हैं। इसमें सन् 1963 से लेकर 1977 ई० तक की रचित कुल 123 कविताएँ एवं गीत संग्रहित हैं।

viii) हे मेरी तुम- यह काव्य-संग्रह सन् 1981 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 61 कविताएँ एवं गीत हैं, जो सन् 1973 से लेकर 1980 तक की रचित हैं। अपनी अर्द्धांगिनी को संबोधित करके केदारनाथ ने इन्हें लिखा है।

ix) मार प्यार की थापें- सन् 1981 में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में कुल 66 गीत एवं कविताएँ हैं जो सन् 1968 से लेकर 1980 तक की रचित हैं।

x) कहें केदार खरी-खरी- यह काव्य-संग्रह सन् 1983 में प्रकाशित हुआ, जिसमें सन् 1946 से 1977 तक की कुल 101 गीत और कविताएँ हैं। यह संकलन अपने कथ्य, शिल्प और अपनी भाषा में उनकी अब तक की संकलनों से कुछ अलग तेवर लिए हुए है। इसमें मेहनत-मजदूरी करनेवाले लोगों की आत्मा की पुकार है, झुंझलाहट, तिलमिलाहट, खिसियाहट और उनकी संघर्ष की संकल्प शक्ति है। सत्ता लोलुपों की उनकी फटकार और ललकार है।

xi) जमुन जल तुम- प्रस्तुत काव्य-संग्रह केदारनाथ की पुस्तकाकार अप्रकाशित पुरानी कविताओं और गीतों का संकलन है, जिसका प्रकाशन सन् 1984 ई० में हुआ। इसमें सन् 1932 से लेकर 1976 तक की कुल 111 कविताएँ एवं गीत संकलित हैं।

xii) अपूर्वा- इसका प्रकाशन सन् 1984 ई० में हुआ। इसमें 23 जनवरी सन् 1968 ई० से लेकर 5 अगस्त सन् 1982 तक की कुल 63 कविताएँ एवं गीत संग्रहित हैं। इस संग्रह के गीत और कविताएँ छोटे कद की हैं, कहने में जो कहती हैं, थोड़े में कहती हैं, विवेक से कहती हैं।

xiii) बोले बोल अबोल- इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 1985 में हुआ। इसमें कुल 106 कविताएँ और गीत हैं जो सन् 1963 से 1985 तक की रचित हैं। इसमें सत्य की पकड़ ही गीतों के प्राण हैं और यही इसकी कलात्मकता भी।

xiv) जो शिलाएँ तोड़ते हैं- इसका प्रकाशन सन् 1986 ई० में हुआ। इसमें कुल 138 कविताएँ एवं गीत हैं, जो सन् 1931 से लेकर 1948 तक की रचित, अप्रकाशित रचनाओं को संजोया गया है। इस संग्रह के गीत ग्राम्य-जीवन की समस्याओं तथा संघर्षों को उजागर करते हैं।

xv) आत्मगंध- यह संग्रह सन् 1988 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेम, प्रकृति, राजनीति आदि से संबंधित कुल 150 गीत और कविताएँ हैं जो सन् 1964 से लेकर 1987 तक की रचित हैं।

xvi) अनहारी-हरियाली- सन् 1990 में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह की कविताएँ एवं गीत प्रकृति से संबंधित हैं। इसके अलावे इसमें जीवन-यथार्थ का भी चित्रण मिलता है। इसमें सन् 1987 से सन् 1990 तक की रचित कुल 98 कविताएँ एवं गीत हैं।

xvii) खुली आँखें खुले डैने- सन् 1993 में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में कुल 82 गीत एवं कविताएँ है, जो सन् 1962 से लेकर 1992 तक की रचित हैं। इसके गीत प्रेम संबंधी, प्रकृति संबंधी एवं देश की वर्तमान स्थिति को चित्रित करने वाले हैं।

xviii) वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी- प्रस्तुत काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 1996 ई० में हुआ। इसमें कुल 323 कविताएँ एवं गीत हैं जो सन् 1939 से लेकर 1960 तक की रचित हैं। इसमें सर्वहारा का चित्रण, प्राकृतिक सौन्दर्य, पूँजीवाद का विरोध एवं ग्रामीण सौन्दर्य का चित्रण मिलता है।

xix) कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह- इस काव्य-संग्रह में कुल 436 कविताएँ एवं गीत हैं जो सन् 1956 से लेकर 1978 तक की रचित हैं। इसका प्रकाशन काल सन् 1997 ई० है। इसके गीतों में शोषण एवं अन्याय का विरोध, समाधिकार के लिए क्रांति, रूढ़ियों का विरोध, प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण एवं प्रेम की अभिव्यक्ति मिलता है।

xx) पुष्पदीप- इसका प्रकाशन सन् 1994 में हुआ। इसमें कुल 73 गीत एवं कविताएँ हैं, जो सन् 1992 से लेकर 1994 तक की रचित हैं।

xxi) देश-देश की कविताएँ- यह काव्य-संग्रह अनूदित है। इसका प्रकाशन सन् 1970 ई० में हुआ। इसमें पाब्लो नेरूदा की 30 कविताएँ, नाजिम हिकमत की 7 कविताएँ, मायकोवस्की की 21 कविताएँ, वाल्ट ह्विटमैन की 25 कविताएँ, अलेस्की सुरकोव की 5 कविताएँ, एजरा पाउंड की 11 कविताएँ, याकूब कोलास की 3 कविताएँ, निकोला वाप्तसरोव की 3 कविताएँ, पुश्किन की 2 कविताएँ, प्लेतान वोरोन्कों की 1 कविता, मूसा जलील की 1 कविता, जॉन कॉर्नफोर्ड की 1 कविता, एंड्रियाई मैलीश्को की 1 कविता, शैली की 2 कविताएँ, एक चीनी कविता, डब्ल्यू.एस. लेण्डर की 1 कविता, जॉन कीट्स की 2 कविताएँ, रवीन्द्रनाथ टेगोर की 1 कविता, मूल कवि के नामोल्लेख से वंचित 2 कविताओं का अनुवाद संग्रहित है।

xxii) बम्बई का रक्त स्नान- यह आल्हा छंद में लिखित है। इसका प्रकाशन काल सन् 1981 ई० है। इसमें बम्बई के नौसैनिकों के जीवन-मरण की गाथा है।

ड. प्रगितवादी युग से पूर्व की गीतधारा

गीत अपने लयात्मक और रागात्मक सौन्दर्य के कारण एक शाश्वत विधा के रूप में आदिकाल से ही लोकप्रिय रहा है और मनुष्य की संवेदनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम भी रहा है। इसके रूप और आकार चाहे जो भी रहे हों, गीत ने मनुष्य के अहसासों और धड़कनों में अपनी उपस्थिति सदैव दर्ज कराई है। गीत ने मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों को सदैव आंदोलित और संप्रेरित किया है। अतः गीत की अनुगूंज जीवन के हर क्रिया-कलाप में सदैव से महसूस की जाती रही है। तीज-त्योहारों, मेले-ठेलों में गाये जाने वाला गीत यदि उल्लसित ह्रदय की अभिव्यक्ति था तो कठोर परिश्रम के समय श्रमिकों द्वारा और पसीना पोंछते हुए किसानों द्वारा गाया जानेवाला गीत उनके उत्साह और संघर्ष का प्रतीक था और उनको सक्रिय रखने के लिए ऊर्जा प्रदान करने वाला भी था। इसलिए गीत सदैव जन-जीवन और जनमानस को यदि आह्लादित करने का एक सशक्त माध्यम रहा है तो आंदोलित करनेवाला भी रहा है। इसी वजह से गीत की व्याप्ति और प्रतीति हमारे जीवन में बराबर बनी हुई है।

हिन्दी में गीत लिखने की परम्परा आदिकाल से ही रही है। विद्यापति के पद और नाचारी आज भी मिथिला के स्त्रियों के लिए कंठहार बने हुए हैं। वे विभिन्न अवसरों पर और प्रायः शाम को नाचारी गाती हैं। गेयता की विशेषता से पूर्ण हैं विद्यापति के पद और नाचारी। नन्दकिशोर नवल लिखते हैं - ''हिन्दी के प्रथम कवि विद्यापति तो गीत-कवि ही थे।''[79] आदिकाल में रचित रासो-ग्रंथो में विशेषकर आल्हखंड (परमाल रासो) गाथा-काव्य ही हैं। इनमें गेयता की विशेषता होने के कारण ये सब गीत-काव्य हैं। आल्ह शैली में लिखित आल्हखंड की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरू तेरह लौ जियै सियार।
> बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार।।[80]

युद्ध वर्णन का एक सुन्दर दृश्य जो गेयता की विशेषता से लैस है उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

> अररर गोला छूटन लागे, सर सर तीर रहे सन्नाय।

गोला लागे जेहि हाथी के, मानो चोर सेंध ह्वै जाय।।
गोला लागै जौन ऊँट के, सो गिरि परै चकत्ता खाय।
खट खट खट खट तेगा बोलै, बोलै छपक छपक तलवार।।
चलै जुनबषी और गुजराती, ऊना चलै विलायत क्यार।
तेगा चमकै बर्दवान कै, कटि गिरे सुघरवा ज्वान।।[81]

भक्तिकाल के कवियों द्वारा रचित दोहे, पद, चौपाई एवं साखियों में गेयता की विशेषता दिखाई पड़ती है। भक्तिकाल के निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के जितने भी संत हैं उनकी रचनाओं में संगीतात्मकता की प्रवृत्ति होने के वजह से ही उसे गाया जाता है। संगीत विद्यालय और महाविद्यालयों में सूर एवं मीराबाई के पद तो पढ़ाये जाते ही हैं उनपर रियाज भी कराया जाता है। कबीर ने तो स्वयं स्वीकार किया है - ''तुम जिन जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार।''[82] गेयता की विशेषता से पूरित कबीर का एक पद प्रस्तुत है -

तोको पीव मिलैंगे घूँघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन-जोबन की गरब न कीजै, झूठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगत सो रंगमहल में, पिय पाई अनमोल रे।
कहैं कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

कबीर की रमैनी, रमैनी छंद में लिखित हैं, जो गेय हैं। उद्भ्रांत लिखते हैं- ''कबीर के पद और उनकी बारिकियाँ आज के प्रगतिशील चिन्तन को भी समाहित किये हैं और भले ही उनमें गीत का पारंपरिक ढाँचा न हो मगर उन्हें गीत की श्रेणी में रखे जाने में कोई हर्ज नहीं लगता।''[83]

संत सुन्दरदास के पद भी गेय हैं। उन्होंने श्रृंगार-रस संबंधी ग्रंथ-रसिकप्रिया, 'रसमंजरी' और 'सुन्दर श्रृंगार' पर व्यंग्य करते हुए लिखा है -

रसिकप्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जान।
चतुराई करि बहुविधि, विषय बनाई आन।।

विषय बनाई आन, लगत विषयिन कूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचंड, सराहै नख सिख प्यारी।।
जूँ रोगी मिष्ठान खाइ, रोगहि विस्तारै।
सुन्दर ये गति होइ, रसिक जो रसप्रिया धरै।।[84]

प्रेममार्गी धारा के प्रमुख कवि जायसी के 'पद्मावत' में हमें गीत के तत्व मिल जाते हैं। संगीतात्मकता एवं गेयता की विशेषता से पूरित एक पद अवलोकनार्थ प्रस्तुत है-

जौ भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनहुँ सोइ अस जागा।
आवन जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा
हा तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएऊँ कहाँ।
केई उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।[85]

सगुण भक्तिधारा के दोनों शाखाओं-रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा के प्रत्येक कवि की रचनाएँ गेयता की विशेषता से पूरित हैं। तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' के दोहे और चोपाइयाँ तो गेय हैं ही, 'विनय-पत्रिका' और 'दोहावली' के पद और दोहे में तो गीत के सारे तत्व मौजूद हैं। 'विनय-पत्रिका' का एक पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

देव!
तू दयाल, दीन हौं, तू दानि ; हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहीं, आरति हर तोसो।।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।[86]

कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत अष्टछाप के आठों भक्त कवि श्रीनाथ जी के मंदिर में आठों प्रहर भजन-कीर्तन करने के लिए नियुक्त थे। अतः उनके पदों में गेयता की विशेषता का होना अनिवार्य है। भ्रमरगीत तो सूरदास के गीत ही हैं। कृष्ण से दूर होकर गोपियों की दशा बहुत ही दयनीय हो गयी है। कृष्ण की क्रीड़ाओं का वर्णन

करके ही वह अपना दिन व्यतीत कर रही हैं। विरह की स्थिति में गोपियों को ब्रज अब पहले जैसा नहीं मालूम पड़ता। गोपियों की इसी दशा का चित्रण सूरदास ने भ्रमरगीत में किया है। भ्रमरगीत भ्रम में पड़कर गाया जाने वाला गीत है। गोपियों की स्थिति को व्यक्त करनेवाला एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

बिचारत ही लागे दिन जान।
तुम बिन नन्द-सुवन इहिं गोकुल, निसि भइ कल्प समान।
मुरलि सब्द, कल धुनि की गुँजनि, सुनियत नाहीं कान।
चलत न रथ गहि रही स्याम, कौ अब लागी पछितान।
है कोइ आय कहे माधौ सौं, धीरज धरहिं न प्रान।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु फुरत नाहिं औसान।।[87]

सम्प्रदाय निरपेक्ष कवियों में मीराबाई और रसखान का नाम उल्लेखनीय है। मीराबाई के पद तो संगीत विद्यालय और महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम के अंतर्गत शामिल हैं। गेयता के तत्व से परिपूर्ण एक पद प्रस्तुत है -

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीरां गई बाबरी, न्यात कहैं कुलनासी रे।[88]

रसखान एक सहृदय और भावुक व्यक्ति थे। जाति के मुसलमान होने के बावजूद उनका मन कृष्ण में पूरी तरह रम गया था। वे सचमुच ही 'रस के खान' हैं। उनके द्वारा रचित पदों में संगीतात्मकता की विशेषता दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ एक पद प्रस्तुत है-

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू वैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।।
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।[89]

केदारनाथ सिंह लिखते हैं - ''मेरा मानना है कि सूर, तुलसी, कबीर और मीरा से बेहतर गीत अब तक हिन्दी में नहीं लिखे गये।''[90]

रीतिकाल के कवियों की प्रवृत्ति हालाँकि रीति-निरूपण की रही है, फिर भी उनके द्वारा रचित दोहे और पदों में गेयता की विशेषता है। मतिराम द्वारा रचित एक पद देखा जा सकता है जो गायन-शैली में रचित है-

कुंदन को रंग फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यौं-त्यौं खरी निखरै सी निकाई।[91]

पद्माकर होली खेलने का जिस चित्रात्मक दृश्य को उपस्थित करते हैं उसमें गीत के तत्व भी मौजूद हैं-

या अनुराग की फागु लखौ जहँ रागती राग किसोर किसोरी।
त्यौं पद्माकर घालि घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रंग मैं बोरी।
गोरिन के रंग भीजिगो साँवरो साँवरे के रंग भीजिगो गोरी।।[92]

स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों में प्रमुख हैं धनानंद। उनके पदों में भावात्मकता, वैयक्तिकता, मार्मिकता, स्वछंदता आदि के गुण मिल जाते हैं। धनानंद प्रेम और विरह के गायक हैं। उनके विरह-वर्णन में स्वाभाविक अनुभूति की तीब्रता[93] है। उदाहरणस्वरूप एक पद दर्शनीय है-

अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चले तजि अपनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
धन आनंद प्यारे सुजान सुनौं यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु, पै देहु छटाँक नहीं।।[94]

भूषण के पदों में जहाँ राष्ट्रीयता की भावना मिलती है वहीं वीर-रस से पूरित पद पाठकों के मन में एक स्फूर्ति का अनुभव कराते हैं। गेयता के तत्व से आप्लुत एक कवित्त उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।

पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर,

ज्यौं सहसबाहु पर राम द्विजराज है।

दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुँड पर

रावण वितुंड पर जैसे मृगराज है।

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,

त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है।।[95]

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपने पूर्ववर्ती कालों से भिन्न रहा है। रचनाएँ भी विविध विषयक हुई हैं। इस काल की रचनाओं में विशेष के प्रति नहीं सामान्य के प्रति रचनाकारों की सहानुभूति एवं संवेदना रही है। सामान्य मानवता की प्रतिष्ठा इसी काल में हुई है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार भारतेन्दु की रचनाओं में गीत की योजना दिखाई पड़ती है। 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक में गीत की समावेश हुआ है। समसामयिक समस्याओं को चित्रित करनेवाला एक गीत 'भारत दुर्दशा' से प्रस्तुत है-

रोअहुँ सब मिलिकै आवहु भारत भाई।

हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।

सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।

सबके पहिले जो रूप-रंग-रस भीनो।

सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।

अब सबके पीछे सोई परत लखाई।

हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[96]

द्विवेदी युगीन कवियों की रचनाओं में भी गीत की योजना दिखाई पड़ती है। नाथूराम शर्मा, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त आदि की रचनाओं में गेयता के तत्व हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के माध्यम से देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएँ प्रबुद्ध की हैं। उनके द्वारा रचित एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डल हैं,
बन्दी जन खगवृन्द, शेष फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।[97]

व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो छायावाद-युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है।[98] इस युग के कवियों ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध सूक्ष्म भावनाओं की प्रतिष्ठा की, तत्कालीन रूढ़ियों और ईसाई धर्म-प्रचारकों के आक्षेपों के विरूद्ध अतीत भारत के प्राणवान मूल्यों की प्रतिष्ठा की, आर्थिक, राजनीतिक दासता के विरूद्ध स्वाधीनता केवल राष्ट्रीय ही नहीं, मानव-मात्र की स्वाधीनता के मूल्य की प्रतिष्ठा की। इस युग के कवियों ने सुन्दर गीतों की रचना की है जिसमें व्यक्तिनिष्ठ भावना की प्रधानता है।[99] छायावाद मुख्यतः प्रगीत के विकास का ही काल है। उसके तीन कवियों ने महत्वपूर्ण प्रगीतों की रचना की हैं, वे हैं- जयशंकर प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा।

छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में महाकवि के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में गीत की योजना की है। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु आदि नाटकों में गीतों की योजना को देखा जा सकता है। स्कन्दगुप्त नाटक का एक गीत प्रस्तुत है-

संसृति के वे सुन्दरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना।
वह उच्छृंखलता भी अपनी-कहकर मन मत बहलाना।
मादकता-सी तरल हंसी के प्याले में उठती लहरी।
मेरे निःश्वासों से उठकर उधर चूमने को ठहरी।[100]

निराला की गीत प्रतिभा छायावादी अन्य कवियों के मुकाबले सबसे अधिक है। उन्होंने गीतों में ‘नवगति, नवलय, ताल-छंद-नव’ प्रयोग करते हुए हिन्दी की उस गीत परम्परा से भी मुस्तैदी के साथ जुड़े रहे जो छायावाद की उदात्त भाषा-शैली, छंद-

रचना, विषय-वैविध्य और युगीन-चेतना से सर्जित होती रही। वे प्रयोगधर्मिता से भी जुड़े रहे। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' लिखते हैं- ''गीत निराला को भी परम्परा से ही मिला था। अपनी नवोन्मेष शालिनी सर्जनात्मक प्रज्ञा के द्वारा उन्होंने गीत में नए से नए प्रयोग किए और उसे उस ऊँचाई तक पहुँचा दिया कि वे आज भी गीत के अनतिक्रम्य शिखर पुरूष बने हुए हैं।''[101] डॉ. रामदरश मिश्र का कहना है-

''निराला के जो उत्कृष्ट गीत हैं उन्हें प्रगतिशीलता और अप्रगतिशीलता के खाने में फिट नहीं किया जा सकता। वे मुख्यतः प्रकृति और प्रेम के गीत हैं। अंतिम दिनों के गीतों में अकेलेपन और उदासी की धनी छायाएँ दिखाई पड़ती हैं। उन्होंने आध्यात्मिक गीत भी लिखे।''[102] डॉ. नामवर सिंह ने अपने लेख ''गीत भी कविता है, उसे नकारने का सवाल ही नहीं'' में लिखा है- गीतों की चर्चा निराला से प्रारंभ करना सर्वथा उचित है। निराला ने यद्यपि मुक्त-छंद का उद्घोष किया था, किन्तु छंदबद्ध गीतों के लिए भी वे बहुत विख्यात हैं।''[103] गीतिका, अणिमा, बेला, गीतगुंज नामक संग्रह गीत-संग्रह ही हैं। उनके गीतों में रागों की दृष्टि से काफी विविधता है। ''आधुनिक काल में यदि उनको सबसे बड़ा गीतकार कहा जाय तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है।''[104]

निराला द्वारा रचित 'अणिमा' में संग्रहित 'स्नेह निर्झर बह गया है' नामक गीत प्रस्तुत है-

स्नेह निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है - अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है।[105]

अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर निराला द्वारा लिखित 'सरोज स्मृति' नामक गीत हिन्दी का श्रेष्ठ शोक-गीत है।

कवियित्री महादेवी वर्मा छायावाद युग की प्रमुख गीतकार हैं। उनके रहस्यवादी गीतों में विरह की प्रधानता है।[106] निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा में संग्रहित गीतों के स्वरूप को देखा जा सकता है। प्रभाव की जिस एकान्विति और कथ्य के जिस संयम की आवश्यकता गीतों में होती है वह सब महादेवी के गीतों में मौजूद हैं। ''असल में गीत काव्य अनुभूति के प्रभाव-संघटन की माँग करता है। इसीलिए उसमें वर्णनात्मकता के स्थान पर सूक्ष्म संवेदनशीलता अधिक होती है।''[107] महादेवी वर्मा द्वारा रचित एक गीत, जिसमें विरह की भावना है, उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पंदन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली।

मेरा पग-पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न पराग झरा
नभ के नव रंग बुनते दुकूल
छाया में मलय-बयार पली।[108]

प्रकृति के कवि के रूप में परिचित सुमित्रानन्दन पंत छायावाद युग के एक प्रमुख रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति मानवीकरण रूप में चित्रित हुई है। उनके व्यक्तित्व पर अलमोड़ा की प्राकृतिक सौन्दर्य का गम्भीर प्रभाव पड़ा। उनकी दृष्टि प्रकृति के सौन्दर्य में उलझे होने के वजह से नायिकाओं के रूप सौन्दर्य से सदैव उदासीन ही रही। पंत ने प्राकृतिक सौन्दर्य, दर्शन आदि पर सुन्दर गीत लिखे हैं। गीत के सारे तत्व उनके गीतों में मौजूद हैं। अपनी सहजता, अर्थ-गांभीर्य और द्रवणशीलता के वजह से गीत भावप्रवण हैं। 'चाँदनी' नामक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

नीले नभ के शतदल पर

वह बैठी शारद-हासिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर
नीरव, अनिमिष एकाकिनि।
वह स्वप्न-जड़ित नत-चितवन
छू लेती अग-जग का मन,
श्यामल, कोमल चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन।[109]

'नौका विहार' नामक गीत बहुत ही लोकप्रिय रही है। उसमें एक ओर जहाँ प्रकृति का मानवीकरण चित्रण है वहीं दूसरी ओर गीतकार की दार्शनिक चिन्तन-चक्र भी चलता हुआ दिखाई पड़ता है। नाव ज्यों-ज्यों तट की ओर बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उन्हें ऐसा महसूस होता है मानो वे जीवन की शाश्वतता को समझने लगे हों। 'नौका विहार' के अंतिम अंश में वे लिखते हैं -

ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार!
इस धारा-सा ही जग का क्रम; शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम!
शाश्वत नभ का नीला विकास; शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास![110]

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीत-धारा

आदिकाल से ही हिन्दी साहित्य में देशभक्ति से संबंधित कुछ कविताएँ देखने को मिलती हैं। कहीं न कहीं भक्तिकाल और रीतिकाल में भी यह राष्ट्रभक्ति से संबंधित कविता एवं गीत उपलब्ध हो जाते हैं। आधुनिक काल में राष्ट्रीयता या देशभक्ति की भावना तो और भी अधिक दिखाई पड़ती है। सिर्फ कविताएँ ही नहीं सुन्दर गीतों की रचना भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा में हुई है। छायावाद के ठीक बाद का समय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा का है। इस धारा के गीतकारों में माखनलाल

चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त और रामधारी सिंह दिनकर प्रमुख हैं।

एक भारतीय आत्मा के नाम से प्रसिद्ध माखनलाल चतुर्वेदी एक देशभक्त रचनाकार हैं। उन्होंने श्रेष्ठ गीतों की रचना की हैं जिसमें देशभक्ति और आत्म बलिदान की भावना स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'पुष्प की अभिलाषा' नामक गीत संक्षिप्त होने के बावजूद भावगांभीर्य है। देश की वेदी पर बलि चढ़ जाने की उत्कट लालसा और अदम्य साहस इस गीत की बेजोड़ कड़ी है। 'पुष्प की अभिलाषा' में वे लिखते हैं-

चाह नहीं मैं, सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव
पर हे हरि, डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना बनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।[111]

प्रस्तुत गीत में पुष्प वह भारतीय नागरिक है जो अपनी धरती और देश की रक्षा के लिए बलि चढ़ जाने की लालसा मन में रखते हुए कर्म करते जाने की प्रेरणा देता है।

इस धारा के अन्य एक श्रेष्ठ गीतकार हैं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख सेनानी थे। सिर्फ चौबीस वर्ष की उम्र में वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा और अपना बहुमूल्य समय उन्हें

कारागार में ही बिताना पड़ा। वे एक सिद्धान्तवादी रचनाकार थे। उनके गीतों में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम और राष्ट्रीय संस्कृति-प्रेम की झलक दिखाई पड़ती है। इतना ही नहीं उनके गीतों में गुलामी की जंजीर तोड़कर उथल-पुथल मचा देने का आह्वान भी मिलता है। 'विप्लव गान' नामक गीत इसी तरह का गीत है -

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोरे इधर से आये एक हिलोरे उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये,
नास और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मसात् भूधर हो जायें;
पाप-पुण्य सद्-सद् भावों की धूल उड़ उठे दायें-बायें
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक-टूक हो जायें,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।[112]

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा की एक मात्र महिला रचनाकार हैं सुभद्रा कुमारी चौहान। इनके गीतों में भी देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। इन्होंने देश-सेवा और साहित्य-सेवा को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। 'झाँसी की रानी', 'वीरों का कैसा हो वसंत', 'जलियाँ बाले बाग में वसन्त' आदि गीतों में ओज की पूर्ण झलक दिखाई पड़ती है। 'राखी की चुनौती' नामक गीत, जिसमें देशप्रेम की भावना दिखाई पड़ती है, प्रस्तुत है-

मैं हूँ बहिन किन्तु भाई नहीं है।
है राखी सजी पर कलाई नहीं है।।
है भादों, घटा किन्तु छाई नहीं है।
नहीं है खुशी पर रुलाई नहीं है।।
मेरा बंधु माँ की पुकारों को सुनकर -
के तौयार हो जेलखाने गया है।
छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को
वह जालिम के घर में से लाने गया है।।[113]

सियाराम शरण गुप्त इस धारा के एक प्रमुख रचनाकार हैं। इनकी रचनाएँ गाँधीवाद से प्रभावित हैं। इनकी दृष्टि में महात्मा गाँधी का सत्याग्रह सांस्कृतिक आन्दोलन था न कि राजनीतिक आन्दोलन। इन्होंने अपनी रचनाओं में देश की ज्वलंत समस्याओं का जीवंत चित्रण किया है। 'शरणागत' नामक गीत में गुलामी की जकड़न को अभिव्यक्त करने वाले गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

क्षुद्र सी हमारी नाव, चारो ओर है समुद्र
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जाने को नौका के चारो ओर
सिंधु की तरंगे सौ-सौ जिह्वाएँ पसारे हैं।
हारे सभी भाँति हम, तब तो तुम्हारे बिना
झूठे ज्ञात होते और सबसे सहारे हैं।
और क्या कहें अहो! डुबा दो या लगा दो पार
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं।[114]

इस काव्यधारा के बहुत ही लोकप्रसिद्ध कवि गीतकार हैं रामधारी सिंह दिनकर। इनका कार्यकाल पराधीनता से आरम्भ हुआ और स्वतंत्र भारत के सत्तर दशक तक रहा। उनके द्वारा रचित राष्ट्रीय कविता का स्वर क्रांतिकारी रहा है। हृदय परिवर्तनवादी नीति में उन्हें विश्वास नहीं। उनका मानना है कि न्यायोचित अधिकार को लड़कर ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि वह माँगने से प्राप्त नहीं होता। जब तक प्रत्येक व्यक्ति को सुख का भाग प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक संघर्ष कम नहीं हो सकता। 'लोहे के मर्द' नामक गीत में वे नौजवानों के हौसले और कर्तव्य को व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

हमें कामना नहीं सुयश-विस्तार की
फूलों के हारों की, जय जयकार की।
तड़प रहीं घायल स्वदेश की शान है,
सीमा पर संकट में हिन्दुस्तान है
ले जाओ आरती, पुष्प, पल्लव हरे,

ले जाओ ये थाल मोदकों ले भरे।
तिलक चढ़ा मत और हृदय में हूक दो,
दे सकते हो तो गोली बन्दूक दो।[115]

स्वछन्दतावादी गीत

छायावाद के बाद के काल में बच्चन के गीतों का प्रचार-प्रसार हुआ। उन्होंने हिन्दी में सुन्दर गीत लिखे हैं। ''बच्चन ने अपने गीतों द्वारा छायावादी कथ्य तथा शिल्प को तोड़ा था और ऐसे गीत रचे और दिये थे, जो कविता भी थे और गीत भी थे।''[116] उदभ्रांत लिखते हैं- ''मैं बच्चन के नाम को विशेष रूप से रेखांकित कर रहा हूँ जिसके ऊपर 'हालावादी' का ठप्पा लगा दिया गया; मगर इस पर ध्यान नहीं दिया गया कि बच्चन ने गीत के कथ्य और शिल्प को भी कल्पनालोक से उतारकर यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया था।''[117]

बच्चन के 'मधुशाला' और 'निशा-निमंत्रण' के गीत श्रेष्ठ गीत हैं। डॉ. जानकी प्रसाद के अनुसार ''समकालीन काव्य-परिदृश्य पर जब हम नजर दौड़ाते हैं तो हम पाते हैं कि निराला के 'अर्चना-आराधना' के बाद बच्चन का 'निशा-निमंत्रण' एक महत्वपूर्ण गीत-संग्रह देखने को मिलता है जिसमें मानवीय सरोकारों को सामाजिक परिवेश में देखने का प्रयास किया गया है।''[118]

बच्चन द्वारा रचित 'जुगनू' नामक गीत में स्वतंत्रता की चेतना निहित है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है -

गगन में गर्व से उठ-उठ
गगन में गर्व से घिर-घिर
गरज कहती घटाएँ हैं
नहीं होगा उजाला फिर
मगर चिर ज्योति में निष्ठा
जमाये कौन बैठा है,
अंधेरी रात में दीपक जलाये कौन बैठा है।[119]

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' स्वछन्दतावादी गीतधारा के एक प्रमुख कवि गीतकार हैं। स्वच्छंदतावादी वायवी प्रेम को नकारकर इन्होंने शरीरी प्रेम या मांसल प्रेम के गीत लिखे हैं -

प्यास का सागर तुम्हारा, स्वप्न-सा मधु-स्पर्श नारी
जल रहा परितृप्त अंगों में पियासाकुल पुजारी
है तृषा इतनी विपुल, कितना बनूँगा अब विकल मैं
एक पल के ही दरस में, जल उठी तृष्णा अतल में।[120]

नरेन्द्र शर्मा के गीत अपना अलग पहचान लिए हुए हैं। रामदरश मिश्र लिखते हैं- ''उनके गीतों का सुख-दुख सीधे-सीधे प्रेमपात्र को निवेदित है, बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। इन गीतों का एक परिवेश होता है और वह परिवेश कवि का ही नहीं हमारा भी निकट का परिचित होता है। वह कवि के अनुभवों को जीवन्तता प्रदान करता है।''[121] बच्चन सिंह लिखते हैं- ''शर्माजी का काव्य-लेखन प्रेम और प्रगति के द्वन्द्व से आरंभ होता है। 'शूल-फूल' और 'कर्णफूल' उनके प्रारंभिक काव्य-संग्रह हैं। उनसे चुनी हुई कुछ कविताओं को 'प्रभात फेरी' (1938) में प्रकाशित किया गया। इसमें जोशपरक विध्वंसक गीत और बेहोशपरक प्रेमगीत संग्रहीत हैं। उनका सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-संग्रह 'प्रवासी के गीत' (1939) है।''[122] विरह मिलन की अनुभूतियों को एक गीत में देखा जा सकता है-

फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता सांझ सबेरा,
मैंने भी चाहा फिर आये
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।[123]

भगवतीचरण वर्मा स्वच्छन्दतावादी विचारधारा के गीतकार है। हालाँकि उनका रचनाकर्म कथा-साहित्य पर अधिक है, काव्य बहुत कम ही लिखे हैं। 'मधुकण', 'प्रेम संगीत' काव्य-संग्रह में प्रणय-गीत संग्रहीत हैं। उनके गीतों में बालकृष्ण शर्मा जैसी मस्ती है-

हम दीवानों की क्या हस्ती
हैं आज यहाँ कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।[124]

भगवतीचरण वर्मा के गीतों में ''परम्परा के साथ युग-बोध, वैयक्तिक सुख-दुख, हर्ष-विषाद और आशा-निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्नवर्ग का पीड़ाबोध, अभिजात भाषा के साथ ऊर्जामयी सामान्य भाषा का अस्तित्व लक्षित होता है।''[125]

च) प्रगितवादी गीत और विशेषताएँ

कविता एक सामाजिक क्रिया है और गीत कविता का अत्यंत ही निजी और संघटित स्वर। नचिकेता लिखते हैं - ''कविता का जन्म गीत से हुआ है और उसका अंतिम लक्ष्य या स्वप्न गीत बनने में ही अंतर्निहित है, क्योंकि गीत मानवीय संवेदना और सामाजिक संवेग का सर्वोत्तम निचोड़ है। यह वह साधनावस्था है, जहाँ रचना में व्यक्त विचार, संवेदना, भाव, अनुभूति, अर्थानुषंग और सांगीतिक लय एक-दूसरे में धुल-मिलकर एकरूप हो जाते हैं। गीत का वास हमारी स्मृतियों में होता है। गीत हमारे सांस्कृतिक विकास और सामाजिक सरोकार की सर्वाधिक सार्थक अभिव्यक्ति है। गीत वस्तुतः संवेदना की अंगुली पकड़कर मनुष्यों के भाव जगत की भाषा की राह पर ठोस कदम से चलने की प्रतिज्ञा है, जिसकी विचारधारा उसकी मूल्य-चेतना में अंतर्निहित होती है।''[126]

प्रगतिवादी गीत में मानवीय संवेदना पूर्ववर्ती गीत के मुकाबले कुछ ज्यादा ही है। ये गीत समसामयिक ज्वलंत समस्याओं के अलावा मानवीय सुख-दुःख आदि पर लिखित हैं। अतः ये गीत जनगीत कहलाते हैं। डॉ. रामनारायण शुक्ल के अनुसार - ''हिन्दी कविता का प्रगतिवादी युग जन-गीतों की दृष्टि से भी महत्व रखता है। जन संवेदनाओं, उसके सुख-दुःख, शोषण-उत्पीड़न और संघर्ष को गीतात्मक संप्रेषणीयता देने की दृष्टि से इस दौर के रचनाकारों की उपलब्धियाँ उत्प्रेरक रहेंगी।''[127] जनवादी आन्दोलन ने जनता के भीतर सुषुप्त रचनात्मक क्षमता को जगाया और विभिन्न क्षेत्रीय

बोलियों और भाषाओं में नये-नये गीत के सृजन हुए। हिन्दी में निराला, नागार्जुन, केदारनाथ, बच्चन आदि ने गीतों की रचना की। इनके गीत निश्चित रूप से जनता की मूल्यवान थाती हैं।

प्रगतिवादी गीतधारा के गीतकार हैं नागार्जुन। इनके गीत विविध विषयक हैं। इनके गीत राजनीतिमूलक, प्रकृति-संबंधी, तत्कालीन परिस्थितियों से संबंधित तथा शोषक और शोषित से संबधित गीत हैं। देश की अफसरशाही का चित्रण करते हुए उन्होंने 'तो फिर क्या हुआ' शीर्षक कविता लिखा है। इसी तरह नेहरू की मृत्यु के बाद नागार्जुन ने उस पर एक तीखा व्यंग्य करते हुए लिखा है -

तुम रह जाते दस साल और।
झुकती स्वराज्य की डाल और।
सबका हो जाता तेज-हरण;
जुगनू कर लेता आत्म-घात।
जमती अशोक के सिंहों पर
बेशर्म उल्लुओं की जमात।
छिपते क्या नटवरलाल और।
तुम रह जाते दस साल और।[128]

ग्रामीण समाज की आर्थिक दुरवस्था का चित्रण करते हुए नागार्जुन ने आवृत्ति शैली में 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक गीत में लिखा है-

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद,
धुँआ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद।
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद,
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।[129]

प्रगतिवादी कवियों और गीतकारों ने सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों और वैषम्य पर व्यंग्यात्मक कुठाराघात किया है। रामविलास शर्मा ने इसीतरह के कुछ व्यंग्यात्मक भाव 'सत्यं शिवं सुन्दरम' नामक गीत में व्यक्त किया है -

हिन्दुस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है।
इसकी रक्षा कौन करे,
सेंत मेंत में कौन मरे
पाकिस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है।
इसकी रक्षा कौन करे?
बैठो हाथों में हाथ धरे
गिरने दो जापानी बम।
सत्यं शिवं सुन्दरम्।[130]

त्रिलोचन शास्त्री प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्थान रखनेवाले हैं। उन्होंने चतुर्दशपदी की रचना की है। ये 'सानेट' के रचनाकार हैं। उनका 'दिगन्त' काव्य-संकलन उनकी चतुर्दशपदियों का ही संकलन है। उन्होंने सामाजिक जीवन के अछूते पक्षों को प्रकाशित किया है। प्रगतिवादी दृष्टि से इसे जनकाव्य कहा जा सकता है।[131] एक चतुर्दशपदी में अपने दृष्टिकोण को उन्होंने प्रस्तुत किया है -

ध्वनि ग्राहक हूँ मैं, समाज में उठनेवाली
ध्विनयाँ पकड़ लिया करता हूँ, इस पर कोई
अगर चिढ़े तो उसकी बुद्धि कहीं है खोई
करना यही पड़ेगा, अगर न हो हरियाली
कहाँ दिखा सकता हूँ। फिर आँखों पर मेरी
चश्मा हरा नहीं है। यह नवीन ऐय्यारी
मुझे पसंद नहीं है। जो इसकी तैयारी
करते हों वे करें। अगर कोठरी अंधेरी

है तो उसे अंधेरी समझाने-कहने का
मुझको है अधिकार। सिफारिश से, सेवा से
गला सत्य का कभी न घोंटूँगा। मेवा से
बरंबूहि न कहूँगा और न चुप रहने का।
लड़ता हुआ समाज, नयी आशा-अभिलाषा,
नये चित्र के साथ नयी देता हूँ भाषा।[132]

केदारनाथ अग्रवाल तो प्रगतिवादी गीतकार हैं ही। उनके गीतों में पूँजीवाद का विरोध, शोषकों के प्रति आक्रोश, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामयिक समस्याओं का चित्रण तथा रूढ़ियों का विरोध मिलता है। प्रगतिवाद की प्रायः सारी विशेषताएँ उनके गीतों में है। एक गीत प्रस्तुत है -

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर
धर्म, धीरज, प्राण खोकर
हो रही अनरीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है
बाप बेटा बेचता है।[133]

अतः प्रगतिवादी गीत जनवादी गीत है। जन संवेदनाओं, उसके सुख-दुःख, शोषण-उत्पीड़न और संघर्ष को गीतात्मक सम्प्रेषणीयता देने की दृष्टि से इस दौर के गीतकारों की उपलब्धियाँ सदैव प्रेरक हैं और प्रेरक रहेंगी।

विशेषताएँ

प्रगतिवादी गीतों का अध्ययन करने के बाद उसकी कुछ विशेषताएँ सामने उभर कर आती हैं, जो इस प्रकार हैं-

1) प्रगतिवादी गीत मानवतावादी गीत हैं। इसमें मानव के सुख-दुःख, संघर्ष और उन पर होनेवाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण कर मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

2) प्रगतिवादी गीत वर्ग-संघर्ष मूलक गीत हैं। संघर्ष द्वारा ही सामंती और पूँजीवादी वर्ग को ध्वस्त कर सर्वहारा और शोषित वर्ग का उद्धार कर साम्यवाद की स्थापना किया जा सकता है। अतः प्रगतिवादी गीतकारों ने वर्ग-संघर्ष मूलक गीत लिखे हैं।

3) प्रगितवादी गीत क्रांतिमूलक गीत हैं। प्रगतिवादियों की दृष्टि में क्रांति द्वारा ही सर्वहारा अपने हक को प्राप्त कर सकता है।

4) प्रगतिवादी गीत प्रशस्तिमूलक गीत है। इसमें मजदूरों, किसानों, मार्क्स-लेनिन की प्रशस्तियाँ गायी गई है।

5) प्रगतिवादी गीत में ग्राम्य-प्रकृति का यथार्थ-चित्र प्रस्तुत किया गया है। मानव और प्रकृति में यहाँ तादात्म्य स्थापित किया गया है। प्रकृति ही मानव को जीवनी-शक्ति प्रदान करती है। अतः प्रकृति यहाँ उपेक्षित नहीं है।

6) प्रगतिवादी गीत सामाजिक गीत है। इसमें मजदूरों की गरीबी, ग्रामीण स्त्रियों की दुर्दशा, समाज में फैली बुराइयों को गीत का विषय बनाया गया है। इसमें एक तरफ समाज को बदलने के लिए उद्‌बोधन किया गया है तो दूसरी तरफ पाठकों के अन्दर संवेदना जगाने की कोशिश की गयी है।

7) प्रगतिवादी गीत में वर्तमान सामाजिक और आर्थिक जीवन की विसंगतियों एवं वैषम्य पर व्यंग्य के माध्यम से कठोर आघात किया गया है।

8) प्रगतिवादी गीत जनवादी गीत हैं क्योंकि यह जनता के हित के लिए लिखा गया गीत है।

छायावाद के बाद का काल 'प्रगतिवाद' के नाम से जाना जाता है। इसमें रचित साहित्य का महत्व शोषित एवं पीड़ित जनता के उद्धार के लिए एवं शोषकों के समूल नाश के लिए है। प्रगतिवादी गीत जनवाद और मानवतावाद से पूरित हैं। गीतकार केदारनाथ का जीवन विभिन्न अभाव-अभियोगों तथा सामाजिक रूढ़ियों के छल-छद्‌म से प्रभावित रहा है। अतः उनकी कृतियों में सामाजिक बुराईयों एवं विकृतियों का चित्रण मिलता है। उनके गीत मानवता के उद्धारक हैं। भारतीय जीवन में गीतों की दो परम्परायें हैं - एक, साहित्यिक परम्परा और दूसरी लोक-गीतों की

परम्परा। यह तो निश्चित है कि दोनों परम्परायें एक-दूसरे को प्रस्तावित करती रही हैं, कथ्य और रूप के बदलाव का कारण बनती रही हैं। गीत लिखने की परम्परा आदिकाल से ही रही है। हिन्दी में कवि विद्यापति के गीत लोक-धुन और शैली के संस्पर्श से भरपूर हैं। भक्तियुगीन साहित्य-पूँजी, लोक-जीवन के बीच निर्मित हुआ अतः कवियों ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए लोक-रूपों का चुनाव किया। हिन्दी में गीत-रचना का प्रारम्भ भारतेन्दु से ही होता है। मैथिलीशरण गुप्त के गीतों में छायावादी गीत-रचना के बीज मिल जाते हैं। गीतों को नया साहित्यिक स्तर छायावादी कवियों ने दिया। छायावाद ने भावपूर्ण, सूक्ष्म आनुभूतिक, संगीतात्मक और कलात्मक गीतों की रचना के साथ-साथ राष्ट्रीय गीतों की भी रचना की, जिनका महत्व, राष्ट्रीय जीवन से मुक्ति की प्रेरणा की दृष्टि से, अत्यधिक है। हिन्दी कविता का प्रगतिवादी युग जन-गीतों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस आन्दोलन ने जनता के भीतर मौजूद रचनात्मक क्षमता को जगाया, और विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों और भाषाओं में नये-नये गीत और अन्य रचना-प्रकारों के सृजन हुए।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. कालिका प्रसाद, राम बल्लम सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव - वृहत् हिन्दी कोश, पृ. सं. 720
2. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 622-623
3. डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा - छायावाद से नई कविता, पृ. सं. 73-74
4. मृत्युंजय उपाध्याय - प्रगतिशील हिन्दी कविता :स्वरूप और प्रतिमान, पृ. सं. 17
5. डॉ. कृष्णदेव झारी - हिन्दी साहित्य और साहित्यकार - 2, पृ. सं. 118
6. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. सं. 70
7. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 128
8. डॉ. शिवकुमार शर्मा-हिन्दी साहित्य का इतिहासःयुग और प्रवृत्तियाँ, पृ. सं. 524
9. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय - प्रगतिशील हिन्दी कविता : स्वरूप और प्रतिमान, पृ. सं. 17
10. डॉ. शिव कुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. सं. 524
11. डॉ. महेन्द्रपाल शर्मा (कौशिक) - आधुनिक हिन्दी काव्य में जीवन-दर्शन (भाग-2), पृ. सं. 444
12. डॉ. कृष्णदेव झारी - हिन्दी साहित्य और साहित्यकार-2, पृ. सं. 117
13. रमेशचन्द्र शर्मा - छायावाद से नई कविता, पृ. सं. 73-74
14. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. सं. 76
15. वही, पृ. सं. 71
16. वही, पृ. सं. 73
17. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 126
18. वही, पृ. सं. 129
19. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 34
20. वही, पृ. सं. 44
21. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 145

22. रामविलास शर्मा - प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ, पृ. सं. 98
23. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास : युग एवं प्रवृत्तियाँ, पृ. सं. 529
24. केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 110
25. वही, पृ. सं. 117
26. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 42
27. वही, पृ. सं. 77
28. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 85
29. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 117
30. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 30
31. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 118
32. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 32-33
33. विश्वनाथ त्रिपाठी - पेड़ का हाथ, पृ. सं. 3-4
34. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 13
35. वही, पृ. सं. 15
36. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 99
37. वही, पृ. सं. 99
38. वही, पृ. सं. 133
39. रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी (सं) - मित्र-संवाद (भाग-1), पृ. सं. 14
40. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 104
41. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 36
42. वही, पृ. सं. 32
43. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 103
44. केदारनाथ अग्रवाल - विचार बोध, पृ. सं. 159
45. रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी (सं) - मित्र-संवाद (भाग-2), पृ. सं. 103-104
46. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 42
47. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 135

48. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 56
49. अनुराग मिश्र - नागार्जुन एवं केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक अभिव्यक्तियाँ और धारणाएँ, पृ. सं. 26
50. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 36
51. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 59
52. वही, पृ. सं. 61
53. केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 34
54. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 114
55. वही, पृ. सं. 103
56. केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 17
57. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 73
58. अनुराग मिश्र - नागार्जुन एवं केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक अभिव्यक्तियाँ और धारणाएँ, पृ. सं. 55
59. वही, पृ. सं. 38
60. वही, पृ. सं. 30-31
61. वही, पृ. सं. 31
62. वही, पृ. सं. 33
63. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 155
64. वही, पृ. सं. 135
65. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 66
66. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 119
67. अनुराग मिश्र - नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक अभिव्यक्तियाँ और धारणाएँ, पृ. सं. 40
68. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 164
69. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 34
70. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 155

71. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 35
72. रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी (सं) - मित्र-संवाद (भाग-2), पृ. सं. 52
73. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 91
74. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 153
75. अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 31
76. वही, पृ. सं. 37
77. वही, पृ. सं. 38
78. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 131
79. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 100
80. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 71
81. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 56-57
82. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 128
83. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 66
84. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 97
85. श्रीनिवास शर्मा (सं) - जायसी ग्रंथावली, पृ. सं. 166
86. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी (सं) - विनय पत्रिका, पृ. सं. 19
87. हरवंशलाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य, पृ. सं. 325
88. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 135
89. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 238
90. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 34
91. विजयपाल सिंह (सं) - रीतिकाव्य संग्रह, पृ. सं. 125
92. वही, पृ. सं. 121
93. वही, पृ. सं. 86
94. वही, पृ. सं. 87
95. वही, पृ. सं. 129
96. परेशचन्द्र देवशर्मा (सं) - हिन्दी कविता, सुमन, पृ. सं. 56

97. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 500

98. वही, पृ. सं. 531

99. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 11

100. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त, पृ. सं. 49

101. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 43

102. वही, पृ. सं. 35

103. वही, पृ. सं. 24

104. वही, पृ. सं. 24

105. निराला - अणिमा, पृ. सं. 43

106. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 57

107. वाचस्पति पाठक (सं) - प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, पृ. सं. 57

108. वही, पृ. सं. 213

109. वही, पृ. सं. 169

110. वही, पृ. सं. 167

111. डॉ. विजय पाल सिंह (सं) - आधुनिक काव्य धारा, पृ. सं. 13

112. डॉ. अमूल्य चन्द्र बर्मन एवं डॉ. भूषण चन्द्र पाठक (सं) - हिन्दी साहित्य संकलन, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32, संस्करण - 2011, पृ. सं. 119

113. वही, पृ. सं. 108

114. Kabitakosh. org. - शरणागत - सियारामशरण गुप्त

115. Kabitakosh. org. - लोहे का मर्द - रामधारी सिंह दिनकर

116. केदारनाथ अग्रवाल - विचारबोध, पृ. सं. 50

117. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 66

118. वही, पृ. सं. 49

119. परेशचन्द्र देवशर्मा (सं) - हिन्दी कविता सुमन, पृ. सं. 78

120. बच्चन सिंह- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 408

121. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. स. 617

122. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 408

123. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 617

124. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 403

125. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 618

126. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 95

127. रामनारायण शुक्ल - जनवादी समझ और साहित्य, पृ. सं. 155

128. उमाशंकर तिवारी - आधुनिक गीतिकाव्य, पृ. सं. 303

129. नागार्जुन - सतरंगे पंखोवाली, पृ. सं. 30

130. उमाशंकर तिवारी - आधुनिक गीतिकाव्य, पृ. सं. 311

131. वही, पृ. सं. 308

132. वही, पृ. सं. 308-309

133. मृत्युंजय उपाध्याय-हिन्दी प्रगतिशील कविता : स्वरूप और प्रतिमान, पृ. सं. 34

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्रामीण जीवन और संस्कृति

क) ग्रामीण जीवन तथा सौन्दर्य का चित्रण

ख) किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों का चित्रण

ग) प्राकृतिक सौन्दर्य का निरुपण

घ) प्रेम की अभिव्यक्ति

केदारनाथ प्रगतिशील विचारधारा के गीतकार हैं और वे इस आन्दोलन से जुड़े भी रहे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे कहीं निराला के वजह से, कहीं पी.सी. गुप्त की वजह से, कहीं रामविलास शर्मा की वजह से और दूसरे 'हंस' की वजह से आन्दोलन से सम्बद्ध होते गये।[1] वे मानवतावादी दृष्टिकोण वाले गीतकार हैं। उनका जुड़ाव गाँवों और ग्रामीण परिवेश से है। वे ग्राम्य-संस्कृति और सौन्दर्य के पक्षधरता हैं और श्रम-सौन्दर्य को ज्यादा महत्व देते हैं। कुलीन घराने में जन्म लेने के बावजूद वे गरीबों के प्रति हमदर्दी रखते हैं। वे स्वयं स्वीकार करते हैं — ''मैं कुलीन घराने में जन्मा जरुर, लेकिन मुझे मेरी बतसिया कहारिन अपने घर उठा ले जाती थी। उसके यहाँ मैं भात और मट्ठा खाकर वहीं सो जाता था। अपने घर के पकवान मुझे अच्छे नहीं लगते थे, मैं घर के पकवान ले जाता था, तो उसे मोहल्ले के बच्चों में बाँट देता था। वे लोग बेर तोड़ लाते थे और रुखी-सूखी रोटियाँ। तो ये चीजें मैं प्रेम से खाता था।''[2] देहात के वातावरण में पले बढ़े होने के कारण केदारनाथ का संस्कार ग्रामीण परिवेश के अनुकूल हो गया था। उनके गीत बुनियादी रुप से जमीन से जुड़े गीत हैं। अशोक त्रिपाठी को दिये एक साक्षात्कार में केदारनाथ अग्रवाल ने स्वयं स्वीकार किया है — ''मुझे अपने जीवन में जितने छोटे और गरीब आदमी मिले, वे उन सभी बड़े व ओहदेदारों व शक्ति सम्पन्न पैसेवालों से ज्यादा चरित्रवान और कर्मठ आदमी लगे और वही जीवन जीने के लिए सौ-सौ तकलीफें उठाते हैं और कष्ट पर कष्ट झेलते हैं। फिर भी आदमी की तरह जीने के लिए वे ललकते और जीवन की आग और आँधी को पकड़ते और मरते-खपते रहते हैं। मैं उन्हीं की मानसिकता को अपनी मानसिकता की तरह बनाने के लिए, लिखता रहा हूँ।''[3]

केदारनाथ अग्रवाल कभी-भी अपने देश से अजनबी नहीं हुए। वे हमेशा अपनी धरती, अपने गाँव और लोगों से जुड़े रहे। वे आदमियों को समझते रहे, इसलिए उनके गीतों में अजनबीपन नहीं है। 'आग का आईना' की भूमिका में वे लिखते हैं — ''मैं अपने देश में अजनबी नहीं हुआ। अजनबी होना आदमी न होने की निशानी है। आदमी न होने का मतलब है अपने आदमियों को न समझना - अपने युग के यथार्थ को न समझना और विसंगतियों में रह कर आदमी होने से इनकार करना।''[4]

केदारनाथ अग्रवाल ने विद्यार्थी जीवन से ही गीत लिखना शुरु कर दिया था जो 'हंस' तथा 'नया साहित्य' जैसी उदीयमान पत्रिकाओं में छपते रहते थे। पुस्तक के रुप में उनकी काव्य-कृत्तियों का सर्वप्रथम प्रकाशन सन्, 1947 में हुआ।[5] केदारनाथ ने अपने गीतों में ग्रामीण जीवन तथा सौन्दर्य, किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा प्रेम की अभिव्यक्ति का चित्रण बखूबी किया है। आगे इन्हीं विन्दुओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया जाएगा।

क) ग्रामीण जीवन तथा सौन्दर्य का चित्रण

केदारनाथ अग्रवाल गाँव में जन्मे और पले, बढ़े एक स्वस्थ मानसिकता वाले गीतकार हैं। उनकी दृष्टि उपेक्षितों और छोटों के प्रति ज्यादा संवेदनशील रही है। वे गहन इन्द्रिय-संवेदना, सामाजिक प्रतिबद्धता के गहरे सरोकार, आधुनिक बोध और विकासमान ऐतिहासिकता की संयुक्त समझदारी से पैदा हुई भीतरी छटपटाहट लोक सौन्दर्य और सर्वहाराओं के सचेतक गीतकार है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में खेत-खलिहान का चित्रण बखूबी हुआ है। खेत में किसान काम करता है। उसके फावड़े चलने में एक लय है। वह खेतों की गुड़ाई और निराई करता हुआ अति प्रसन्न है क्योंकि आये दिन वही खेत उसे मनोनुकूल अनाज और फल देंगे। वह दिन भर मेहनत तो करता है पर उसे थकान की अनुभूति नहीं होती क्योंकि आये दिन यही मेहनत ही उसके लिए फलदायी होगा। जब वह लहलहाते फसलों को देखता है तब उसका भी मन प्रसन्नता से झूम उठता है। अनेक इच्छाएँ और अशाएँ उसके मन में हिलोरे लेने लगती हैं। खेतों में उग आये घासों को वह बहुत ही बारीकी से निराई करता है। घासों के वजह से फसल कमजोर हो जाती है और पैदावार भी आशा के अनुरूप नहीं होती। अतः किसान भाई बड़े ही तल्लीनता से निराई कर अपनी फसल को नष्ट होने से बचाता है। धीरे-धीरे फसल पकने लगते हैं और वह समय आ जाता है जिसकी बेसब्री से किसान भाइयों को इंतजार रहता है। वह सपरिवार फसल की कटाई कर खलिहान में जमा करता है और उसकी दँवरी कर, अनाज को ओसा कर अपने घर लाता है। फसल की बुवाई से लेकर दँवरी और ओसौनी तक कितने पड़ाव

उसे पार करने पड़ते हैं तब कहीं जाकर वह अनाज प्राप्त करता है। अपने मंजिल को प्राप्त करने मे उसे कर्म-संस्कृति की राह से ही गुजरना पड़ता है। केदारनाथ ने इसी कर्म संस्कृति में ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य को देखा और अपने गीतों में चित्रित किया है।

श्रम-सौन्दर्य सिर्फ कृषक-श्रमिकों में ही नहीं मजदूरों में भी है। मजदूरों का एक मात्र सहारा सिर्फ मजदूरी है। मजदूर अपने मेहनत से ही परिवार का गुजारा करता है। वह कहीं लोहा पीटता, कहीं ठेला खींचता, कहीं खेतों में काम करता, कहीं गंदे नालों को पाटता दिखाई पड़ता है। वह पेट के लिए ही यह सब करता है। कर्म करके ही अपने परिवार का पेट भरता है। जब किसी मजदूर के यहाँ कोई बच्चा पैदा होता है तो उसके घर में इस बात की खुशी होती है कि एक मजदूर (काम करनेवाला) तो पैदा हुआ। केदारनाथ ने सौन्दर्य को ग्रामीण परिवेश और श्रम-संस्कृति में देखा है। ''श्रम-सौन्दर्य कृषक श्रमिकों के साथ-साथ मजदूर में है, हथौड़े वाले में है।''[6]

हथौड़े की सक्रियता में लय है। यह लय श्रम-सौन्दर्य की अंतर्वस्तु का धारक है। गीत उस लय को धारण करके श्रम-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं। लय श्रमिक की सक्रिय-हथौड़ा चलाने में है। लय श्रम की गति का रूप है —

आँखें खुली कर उठा-कलेजा कड़का
धूल झाड़ कर सोता मानव कड़का
रात ढली दिन हुआ उजेला दौड़ा
ताबड़तोड़ चला, बज उठा हथौड़ा।[7]

कर्म और श्रम से जो समर जीतने में कामयाब हुए ऐसे बाहुबली ही गीतकार के प्रेरणा-श्रोत रहे हैं। वह अपने अंदर एक स्फूर्ति का अनुभव करता है। उसे ऐसा लगता है जैसे गगन भेदकर कोई सूरज निकल आया हो। चेतना भी जययात्रा को निकल चुकी हो ऐसी अनुभूति वही कर सकता है जिसकी संवेदना इन श्रम के बाहुबलियों के प्रति हो —

जाग गया मैं भीतर बाहर,

गगन भेदकर
निकला सूरज
मुझे मिला;
तरल ताल की
मृदुल नाल पर,
मेरा शतदल कमल खिला
रुप-रंग रस-राग भरा;
मधुरा हुई धरा,
जग जीवन की
जय-यात्रा को
चेतन गंध चली;
समर जीतने लगे कर्म से
श्रम के बाहुबली।[8]

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँव के लोग ग्रामीण परिवेश में रहकर विभिन्न प्रकार के अभावों और समस्याओं से जूझते हुए अपने कर्म में व्रती रहते हैं। बड़े ही आत्मविश्वास के साथ वे कर्म संस्कृति को निबाहते हैं। उन्हें अपने कर्म और बल पर बड़ा ही आत्मविश्वास होता है। बंजर को तोड़कर उसमें भी अनाज उगाने की सक्रियता उनमें होती है। उनका जीवन कर्म सौन्दर्य से ओत-प्रोत होता है। गीतकार ऐसे लोगों के प्रति ज्यादा संवेदनशील दिखाई पड़ता है, इसलिए तो वह 'किसानों का गाना' में लिखता है —

हमारे हाथ में हल है
हमारे हाथ में बल है;
कि हम बंजर को तोड़ेंगे
बिना तोड़े न छोड़ेंगे।
कड़ी धरती इधर भी है,
कड़ी धरती उधर भी है,

कि हम उसको बिदारेंगे
न चूकेंगे, न चूकेंगे।[9]

गीतकार 'जुताई का गाना' भी लिखता है। हल की फाल जिस तरह से कठोर जमीन को भी चीर कर अपनी राह बना लेता है वैसे ही किसानों को भी अपनी राह बना लेना पड़ेगा, ऐसा उनका मानना है। गीतकार लिखता है —

मेरे खेत में हल चलता है,
फाड़ कलेजा गड़ जाता है
तड़-तड़ धरती तड़काता है,
राह बनाता बढ़ जाता है
मेरे खेत में हल चलता है;
खून पसीना चुचुआता है,
तेरा तन-मन खप जाता है,
मिट्टी का तन नरमाता है।[10]

गीतकार की संवेदना इस हद तक ग्रामीण व्यक्तियों के प्रति है कि वह पूरे आत्मविश्वास के साथ यह घोषित करता है कि जो धूल चाटकर बड़ा हुआ है, समस्याओं से जूझते हुए भी जो खड़ा है वह सूरज के रथ का घोड़ा है, क्या वह किसी के मारने से मर सकता है? एक संवेदनशील गीतकार ही लिख सकता है 'वह जन मारे नहीं मरेगा' जैसा गीत —

जो जीवन की धूल चाटकर बड़ा हुआ है,
तूफानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है,
जिसने सोने को खोदा, लोहा मोड़ा है,
जो रवि के रथ का घोड़ा है,
वह जन मारे नहीं मरेगा,
नहीं मरेगा!![11]

केदारनाथ अग्रवाल यह भली-भाँति जानते हैं कि गाँव के छोटे लोग और उनके छोटे हाथ ही बड़े-बड़े काम करने में सफल होते हैं। बड़े लोगों के बड़े हाथ व्यक्तिगत स्वार्थ

की पूर्ति में लिप्त रहते हैं। इसलिए तो 'छोटे हाथ' नामक गीत में उन्होंने ग्रामीण जीवन का सौन्दर्य बखूबी उकेरा है

छोटे हाथ नहीं रुकते हैं,
और नहीं धीरज धरते हैं।
जड़ को चेतन,
पानी को पय,
मिट्‌टी को सोना करते हैं।[12]

'हल हाथ है उसी का' नामक गीत में गीतकार ने कर्म और कर्मरत लोगों के माध्यम से ग्रामीण जीवन के नैसर्गिक-सौन्दर्य को चित्रित किया है —

हल हाथ है उसी का
जो खेत में चला है
श्रम विन्दु है उसी का
जो बीज हो उगा है
वरदान है उसी का
जो धान्य हो फला है
उल्लास है उसी का
जो प्राण को मिला है।[13]

हमारे देश के 70% लोग कृषि पर निर्भर हैं। गाँव के किसान कृषि कर्म करते हैं। फसले अच्छी होने पर उनका मन भी हरा-भरा होकर फसल की तरह लहलहा उठता है। मेहनत से ही अच्छी फसल उगाया जा सकता है। कामचोर और आलसी प्रकृति के लोग मनोनुकूल फल की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते। फसलों को निराना और निगरानी करना बहुत जरूरी होता है। जिस तरह से देश की वेदी पर बलिदान देने से देश की रक्षा होती है उसी तरह से खेत में उग आये घास-फूसों को निराकर ही फसल की अच्छी पैदावार की आशा की जा सकती है। समय के अनुकूल खेत की निगरानी करने और आलस्य को त्याग कर ही स्वर्ण सदृश अनाज की प्राप्ति की आशा की जा सकती है, आलसी प्रवृत्ति के लोग कभी भी अपने लक्ष्य को हासिल नहीं

कर सकते इसलिए गीतकार ने 'निरौनी का गीत' में एक ऐसा चित्र उभारा है, जहाँ श्रम-सौन्दर्य का नैसर्गिक रूप देखा जा सकता है—

खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत
घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास
घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

x x x

बेर करौ ना बेर करौ ना बेर करौ ना बेर
बेर किए पर नहीं पैहों सुन्दर सोन सबेर
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत
खेतिहर भैया! खेतिहर भैया! खेतिहर भैया चेत
मूँड़ी काटे देश मिलत है, चारा काटे खेत
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत।[14]

खेत निराने और फसल की निगरानी के बाद वह क्षण आता है जिसका इंतजार एक किसान को रहता है, वह क्षण है फसल की कटाई का। फसल कटाई के बाद वह खलिहान में अनाज को झाड़ता है और ओसौनी करता है। इस काम को करते समय खेतिहर का मन आनन्द के सागर में हिलोरे लेने लगता है। 'ओसौनी का गीत' में गीतकार ने इस सौन्दर्य को चित्रित करते हुए लिखा है—

साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा
दौरी साधौ अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा
ताल ठोंकि के मारि भगावौ जेते ऐरा गैरा
अन्न बटोरौ, रासि लगावौ छुइले परबत चोटी
देस भर के खेतिहर खावौ पेट पेट भर रोटी
साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा।।[15]

इस गीत की चौथी पंक्ति में केदारनाथ अग्रवाल की प्रगतिशील विचारधारा, पूरी तरह से प्रतिफलित हुई है जहाँ वे ऐरो-गैरों को ताल ठोककर मार भगाने की बात करते हैं। गीतकार की आंतरिक संवेदना खेतिहरों के प्रति है जो बड़ी मेहनत से अन्न उगाते हैं और खुद की पेट तो भरते ही हैं, दुनिया जहाँन की पेट भी ये ही भरते हैं। वास्तव में प्रत्यक्ष अन्नदाता तो ये लोग ही हैं।

खेतिहर भाई तन-मन से अपने काम में लगे हुए हैं। फसल की उपज अच्छी हुई है। धान की पैदावार दुगुनी हुई है। अपने प्रिय जनों के साथ खेतिहर खेत में आ पहुँचा है। उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं है। लंगोटे कसकर उभरे वदन हाथ में हँसिया लेकर प्रातःकाल अपने खेत में आ धमका है। इस ग्रामीण परिवेश के कर्म-सौन्दर्य को केदारनाथ ने 'खेतिहर' नामक गीत में पिरोया है —

काछा मारे-देह उधारे
आ धमका है आज सबेरे
सबके हाथों में हँसिया है
सबकी बाँहों में ताकत है
जल्दी जल्दी साँसे लेते
सब जन मन से काट रहे हैं।[16]

किसी भी कार्य का परिणाम एक अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। इस आनन्द की महत्ता उस व्यक्ति के लिए ज्यादा होती है जो ईमानदारी से कड़ी मेहनत करता है। सफलता से जितना ही आनन्द मिलता है विफलता से उतना ही कष्ट। किसान कठोर परिश्रम करके अन्न उगाता है और फसल की पैदावार अच्छी होने पर धान, गेहूँ, जौ की बालियों और चने की कुनबे पर प्रसन्नता से झूमने लगता है। 'खेतिहर[1]' नामक एक गीत में खेतिहर की प्रसन्नता को गीतकार ने व्यक्त किया है। यहाँ ग्रामीण कर्म-संस्कृति की सौन्दर्य का शब्दांकन बखूबी किया गया है —

'उस खेतिहर से पूछो अपने खेतों में जा अन्न उगाता
गेहूँ चाउर और चने के कुनबे पर जो बलि-बलि जाता
हल की मुठिया जिसका बल है, हँसिया पर जो है इतराता

बढ़िया पैदा हुई फसल के हर दाने पर झूमा जाता।'[17]

हमारे देश की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँव का समुचित विकास ही देश के विकास का सूचक होगा। गाँव और गाँववासियों की अनदेखी कर देश अपने विकास की दावा नहीं कर सकता। गीतकार की संवेदना गाँवों के प्रति ज्यादा है। गाँव के लोग साहसी और शूर-वीर होते हैं। गाँव को स्वर्ग बनाकर उच्च-निम्न की खाई को पाटकर ही हम देश का समुचित विकास कर सकते हैं। इसलिए तो गीतकार 'गाँव' नामक गीत लिखता है और गाँव के स्वर्गिक-सौन्दर्य को देखने का इच्छुक है —

गाँव ऐसा गाँव होगा देखने में स्वर्ग होगा
उच्च अथवा निम्न श्रेणी का न कोई वर्ग होगा
प्रात के निर्माल्य के आलेख का ही सर्ग होगा
गाँव के हम आदमी हैं, सूरमा हैं साहसी हैं।[18]

केदारनाथ अग्रवाल के गीत लोकजीवन के सौन्दर्य और उसके साथ-साथ लोकगीतों की मिठास से निर्मित हैं। 'धीरे उठाओ मेरी पालकी' नामक गीत में ग्रामीण-सौन्दर्य तथा संस्कृति का चित्र उभरता दिखाई पड़ता है —

धीरे उठाओ मेरी पालकी
मैं हूँ सुहागिन गोपाल की
बेला है फूलों के माल की
फूलों के माल की
धीरे उठाओ मेरी पालकी।[19]

कुल मिलाकर देखा जाय तो कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य को किसान और मजदूरों के श्रम और कर्म के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

ख) किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों का चित्रण

केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में किसानों को महत्व देते हुए उनके संघर्षमय जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। उनकी पूरी संवेदना उन कृषकों के प्रति है जो प्रत्यक्ष अन्नदाता हैं, जिनके परिश्रम और परिश्रम के फल पर हमारा देश आश्रित है। सपरिवार कृषि कर्म में व्यस्त किसान अनाज उगाकर खुद अपना पेट तो भरता ही है, देश के प्रत्येक नागरिक तक अन्न पहुँचाने का काम भी वही करता है। पर विडम्बना यह है कि हमारे यहाँ यही वर्ग अधिक शोषित, पीड़ित, अभावग्रस्त और आत्महत्या करनेवाला है। अपने गीतों में केदारनाथ ने इन्हीं अभावग्रस्त लोगों का चित्र उभारा है, क्योंकि किसान-जीवन से उनका गहरा संबंध रहा है। अपने गीतों के माध्यम से केदारनाथ जहाँ स्वयं अपनी संवेदना उनके प्रति जाहिर करते हैं वहीं हमारे अन्दर भी वैसी ही संवेदना जगाने की कोशिश करते हैं। उनका यह भी मानना है कि दुःख सहते-सहते ये लोग दुःख सहने के आदि हो चुके हैं। कमला प्रसाद को दिये एक साक्षात्कार में केदारनाथ ने स्वयं स्वीकार किया है - ''उनको अपने दुःख के कारणों का कुछ अहसास ही नहीं है। रहते-रहते, सहते-सहते कुछ ऐसा हो गया है कि उनका आदमी होने का एहसास ही मर गया है।''[20]

केदारनाथ अग्रवाल निराला के व्यवहार, कर्मशीलता और मेहमान नवाजी से काफी प्रभावित थे। निराला के प्रभाव के वजह से ही उनमें किसान-मजदूर से जुड़े रहने की उत्कंठा में मदद मिली।[21] उन्होंने छोटे और गरीबों के बारे में ज्यादा लिखा है। इसका कारण बताते हुए डॉ० रामचन्द्र मालवीय से बातचीत में उन्होंने कहा है — ''मुझे अपने जीवन में जितने छोटे और गरीब आदमी मिले, वे उन सभी बड़े व ओहदेदारों व शक्ति सम्पन्न पैसे वालों से ज्यादा ही चरित्रवान और कर्मठ आदमी लगे और वही जीवन-जीने के लिए सौ-सौ तकलीफें उठाते हैं और कष्ट पर कष्ट झेलते हैं। फिर भी आदमी की तरह जीने के लिए वे ललकते और जीवन की आग और आँधी को पकड़ते और मरते-खपते रहते हैं। मैं उन्हीं की मानसिकता को अपनी मानसिकता की तरह बनाने के लिए अधिकांश लिखता रहा हूँ। मैं सामाजिक

कार्यकर्ता नहीं रहा हूँ। इसलिए अपनी वाणी को लिपिबद्ध करके उन तक पहुँचाने में ही अपने आदमी होने की सार्थकता समझता रहा हूँ।''[22]

प्रगतिवादी चेतनावाले गीतों में गीतकार का व्यक्तित्व मेहनतकश मजदूर किसानों के साथ घुलमिल कर एक हो गया लगता है। विशेषतः उनकी प्रवृत्ति कृषक-जीवन की समस्याओं के चित्रण में अधिक रमी है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में खेत-खलिहान, किसानी जीवन का यथार्थ चित्रण देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वकील केदारनाथ एक किसान कवि के रुप में बोल रहा है।[23]

केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि मानवतावादी था। वे जमीन और जिन्दगी से जुड़े होने की बात स्वयं स्वीकार करते हैं — ''मैं तो पूरी तरह से जमीन और जिन्दगी से जुड़ा हुआ था। मेरा दृष्टिकोण मानवतावादी था। इतना जानता था कि आदमी को बेईमान नहीं होना चाहिए, किसी को छलना नहीं चाहिए। जैसे-जैसे राजनीतिक चेतना बढ़ी, व्यवस्था के दोष गहराई से समझ में आते गये।''[24]

केदारनाथ अग्रवाल की चेतना जैसे-जैसे बढ़ी वैसे-वैसे उन्होंने अनुभव किया कि रचना को टिकाऊ बनाने के लिए कड़ी मेहनत की जरूरत होती है। उन्होंने किसानों की तरह अपने गीत रूपी फसल को लहलहे बनाने के लिए कड़ी मेहनत की है। उन्होंने अपनी संवेदना उन मेहनतकश अन्नदाताओं के प्रति व्यक्त की है जो बहुत कम लोगों की सहानुभूति प्राप्त करते हैं। इन्हीं किसानों के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हुए उनके अभावों और संघर्षों का चित्रण केदारनाथ ने अपने गीतों में किया है। उनके द्वारा रचित गीत उनके काव्य-संग्रहों - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, अपूर्वा, गुलमेंहदी, खुली आँखे खुले डैने, आग का आईना, वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, कहें केदार खरी-खरी में संग्रहित हैं, जो किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों को चित्रित करते हैं। 'बाप बेटा बेचता है' नामक गीत में भूख से बेहाल कृषक और मजदूर दोनों की स्थिति को शब्दबद्ध किया है —

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म, धीरज, प्राण खोकर,

हो रही अनरीति बर्बर राष्ट्र सारा देखता है।
बाप बेटा बेचता है,
माँ अचेतन हो रही है,
मूर्छना में रो रही है
दाम के निर्मम चरण पर प्रेम माथा टेकता है।[25]

श्रमजीवी किसान कठोर शारीरिक परिश्रम करते हैं और मानसिक यातनाएँ भी झेलते हैं। परिवार बड़ा होने के कारण उसका बोझ ढोना भी काफी मुश्किल होता है। उनके यहाँ राशन की खपत और माँग ज्यादा होती है। माँग के अनुसार आपूर्ति नहीं हो पाती। उनके इस समस्या का अनुभव एक संवेदनशील प्रगतिवादी और मानवतावादी विचारधारा वाला व्यक्ति ही कर सकता है। श्रमजीवी गरीबी में ही पैदा होते हैं, कर्म भी गरीबी में ही करते हैं और उनका दीपक भी गरीबी में ही बुझ जाता है। 'जहरी' नामक गीत में गरीबी की मार झेल रही एक कृषक की बेटी का चित्र अंकित हुआ है-

पैदा हुई गरीबी में,
पाली गई गरीबी में।
ब्याही गई गरीबी में,
माता हुई गरीबी में!!
हँसिया लिया गरीबी में,
खुरपी गही गरीबी में,
काटी घास गरीबी में,
छीली घास गरीबी में!!

x x x

बुड्ढी हुई गरीबी से,
टूटी रीढ़ गरीबी से।
आँधी उठी गरीबी से
दीपक बुझा गरीबी से!![26]

'आदमी का बेटा' नामक गीत में किसान जीवन के संघर्ष को बखूबी उकेरा गया है। यह गीत किसानों की स्थिति को चित्रित करनेवाला एक प्रतिनिधि गीत है —

आदमी का बेटा
गरमी की धूप में भाँजता है फड़ुआ।
हड्डी को, देह को तोड़ता है।
खूब गहराई से धरती को खोदता है।
काँखता है हाँफता है, मिट्टी को ढोता है।[27]

यहाँ गीतकार की संवेदना ऐसे लोगों के प्रति इतनी सघन है कि इन मेहनतकश लोगों को वह आदमी कह कर संबोधित करता है क्योंकि आदमीयत और इंसानियत इनके अंदर ही देखने को मिलती है। ये किसी के टुकड़े पर पलनेवाले जीव नहीं हैं। अपने बाहुबल पर इनको अटूट भरोसा है। मेहनत की रोटी खाकर जावित रहनेवाले हैं ये लोग। शोषित और पीड़ित होने के बावजूद ईमानदारी का साथ ये नहीं छोड़ते। केदारनाथ अग्रवाल का यहाँ तक मानना है कि इस धरती पर इन भूमि-पुत्रों का ही हक होना चाहिए। कड़ी मेहनत करके अपने को धूप में गला-तपाकर धरती को जोतकर बीज बोता है और वह उस धरती से स्वर्ण फसल के उगने की आस लगाये बैठा रहता है। उनका जीवन बहुत ही संघर्षमय होता है। आशा के अनुकूल फसल की उपज न होने पर बहुत ही कष्टमय जीवन व्यतीत करने को मजबूर हो जाते हैं ये लोग। अतः गीतकार को लगता है कि धरती का असली मालिक तो ये किसान लोग ही हैं —

नहीं कृष्ण की,
नहीं राम की
नहीं भीम, सहदेव, नकुल की,
नहीं पार्थ की,
नहीं राव की, नहीं रंक की
नहीं किसी की, नहीं किसी की;
धरती है केवल किसान की।[28]

किसानों का जीवन संघर्ष से भरा रहा है और आज आजादी के इतने साल बाद भी उनकी हालत में सुधार नहीं हो पाया है। सर छुपाने को मकान नहीं, है तो सिर्फ छप्पर-छानी, जेब में लक्ष्मी नहीं, है तो सिर्फ कौड़ी कानी, यही है किसान जीवन की कहानी। तभी तो केदारनाथ 'उनको महल-मकानी' नामक गीत में किसान की दशा का बयान करते हैं —

उनको
महल-मकानी
हमको छप्पर छानी
उनको
दाम-दुकानी
हमको कौड़ी कानी
सच है
यही कहानी
सबकी जानी-मानी।[29]

केदारनाथ अग्रवाल ने 'किसान स्तवन' में किसानों की समस्याओं और संघर्ष भरी जीवन को चित्रित कर उनके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं। भले ही शासकों द्वारा उनको मान-सम्मान न मिले पर गीतकार के दिल में उनके प्रति सम्मान का भाव है और उनपर गर्व भी है। तभी तो वह लिखता है —

तुम जो अपने हाथों में विधि से ज्यादा ताकत रखते हो
मेहनत से रहते हो; खेतों में जाकर खेती करते हो

x x x

तुम जो छाती पर पत्थर रक्खे जीने का दम भरते हो,
अन्यायों से जोर-जुलुम से मुट्ठी ताने लड़ मरते हो
तुम तो ठगते नहीं ठगे सब दिन जाते हो

x x x

तुम अच्छे हो तुमसे भारत का भीतर-बाहर अच्छा है

तुम सच्चे, तुमसे भारत का सुन्दर सपना सच्चा है।[30]

'कहें केदार खरी-खरी' नामक काव्य-संग्रह में एक गीत 'कारण-करण' है जो किसान जीवन के संघर्षों को चित्रित करता है। मौसम की मार और जमींदारी कर्ज का भार वहन करने में जोखू बाजी हार जाता है। बड़े ही दुःख भरी अंदाज में गीतकार ने इस दृश्य को संवेदनशील भाव पैदा करते हुए प्रस्तुत किया है—

गेहूँ में गेरुआ लगा,
घोंघी ने खा लिया चना
बिल्कुल बिगड़ा, खेल बना।
अब आफत से काम पड़ा,
टूटा सुख से भरा घड़ा,
दिल को धक्का लगा बड़ा।
जमींदार ने कहा भरो,
सब लगान अब अदा करो,
वरना जिंदा आज मरो।
जोखू ने घर बेंच दिया
रुपया और उधार लिया
खंड-खंड हो गया हिया।
विधि से देखा नहीं गया;
जोखू बाजी हार गया
लकवा उसको मार गया।[31]

प्रगतिवादी चेतना वाले गीतों में गीतकार का व्यक्तित्व मेहनतकश किसानों के साथ घुल-मिलकर एक हो गया-सा लगता है। उनकी संवेदना उन कृषकों के प्रति है जो अनेक समस्याओं से घिरे रहने के बावजूद अपनी कर्मठता और ईमानदारी को छोड़ते नहीं। ऐसे लोग हमारे देश की शान हैं। हमें उनपर गर्व करना चाहिए। केदारनाथ के गीतों में खेत-खलिहान एवं किसानी जीवन का यथार्थ चित्रण देखकर ऐसा लगता है जैसे वकील केदारनाथ एक किसान गीतकार के रूप में गा रहा है।

ग) प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण

केदारनाथ का लगाव बुन्देलखण्ड के लोक-जीवन, जन-जीवन से रहा है। ग्राम्य-जीवन के रस्म-रिवाज, पर्व-त्योहार, ऋतुएँ उन्हें बेहद प्रभावित करती हैं। वे प्रकृति से जीवन-जीने की शक्ति-प्राप्त करनेवाले एक सशक्त कलाकार हैं। उनके गीतों में एक तरफ देशी माटी की सोंधी महक है तो दूसरी तरफ प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण। उनके यहाँ प्रकृति रुग्ण एवं कुण्ठाग्रस्त रुप में नहीं बल्कि सहज-सरल ग्राम्य और रूमानी रूप में दिखाई पड़ती है। केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति को बहुत नजदीक से देखा है, उन्हें मानवीय मूल्यों की धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। प्रकृति उन्हें विषम परिस्थिति में भी अडिग रहने की प्रेरणा देती है। समकालीनता की दायरों को अतिक्रम करते हुए उनके गीत समस्त प्रकृति में फैल जाते हैं। वहाँ फूल हैं, पर्वत हैं, नदी है, नदी के किनारे बैठे पत्थर हैं, चीन्हीं-अनचीन्हीं वनस्पतियाँ हैं। ''साहित्य जगत में इनकी विशेष ख्याति का आधार प्रकृतिपरक गीत ही हैं। इनमें चित्रित प्रकृति न तो वास्तविकता से दूर की आलंकारिक कल्पना का चोला पहने हुए हैं और न ही छायावादी कवियों की तरह रहस्यात्मकता का आवरण उस पर चढ़ा है।''[32] केदारनाथ के गीतों में चित्रित प्रकृति ग्रामांचलों के उस परिवेश की छवि हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है जो हमारे देश की लोक-संस्कृति की मुखर सहचरी है।

केदारनाथ अग्रवाल अनुभूत सौन्दर्य को चित्रित करने वाले रचनाकार हैं। चाहे वह नारी सौन्दर्य हो या प्रकृति का सौन्दर्य। रामचन्द्र मालवीय को दिये साक्षात्कार में उन्होंने कहा है — ''सौन्दर्य प्रकृति में भी है और नारी में भी। यह तो कवि-कवि पर निर्भर है कि वह अपने जीवन में प्रकृति के सौन्दर्य से सम्बद्ध हुआ है या कि नारी के सौन्दर्य से अथवा दोनों के सौन्दर्य से। मेरी रचनाओं में दोनों को समान स्थान मिला है। प्रकृति भी उतनी ही आकर्षक और प्रेरक होती है, जितनी नारी।''[33] गीत चेतना की सृष्टि है। उसकी सृष्टि भी रंग-रूपमयी होती है। उससे मानवीय सौन्दर्य का बोध होता है। 'पुष्पदीप' की भूमिका में केदारनाथ ने लिखा है — ''प्रकृति का अशब्द पुष्प शब्दार्थ पाकर मानवीय चेतना का हृदयहारी पुष्प बन जाता है और सांस्कृतिक सौन्दर्य और सुगंध की व्यंजना करने लग जाता है।''[34]

'केदारनाथ अग्रवाल प्रकृति से तादात्म्य रखनेवाले गीतकार हैं।' प्रकृति से उनका बचपन से संबंध रहा है। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' की भूमिका में प्रकृति से तादात्म्य के विषय में उन्होंने लिखा है— ''मैंने प्रकृति को चित्र के रूप में देखा है। उनके सम्पर्क में मुझे जीने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। अतएव प्रकृति का मेरा निरूपण चित्रोपम निरूपण है। उसमें कलाकारिता है। शब्दों का सौन्दर्य है। ध्वनियों की धारा है। कहीं-कहीं 'क्लासकीय' अभिव्यक्ति है। 'वसन्ती हवा' में अवश्य गति और वेग है।''[35] खुली आँखे खुले डैने' की भूमिका में प्रकृति के साथ तादात्मय पर लिखा है— ''मैं अब अपने आस-पास से, लोगों से, पेड़-पशुओं और पक्षियों से, नदी, पहाड़ और हो रहे घटना क्रम से सम्बद्ध बना रहता हूँ। यही मानव जीवन है। मैं जब भी, इस सबसे असम्बद्ध होने लगूँगा तभी मर जाऊँगा।''[36] आगे वे लिखते हैं — ''जड़-चेतन, चर-अचर जो भी हुआ है, जो भी जन्मा है, वह सब, पूरा का पूरा, प्रकृति के अंतर्गत आता है और कहीं बाहर से अस्तित्व में नहीं आता। प्रकृति स्वयं, होने और न होने के कारण अस्तित्व में आती, विकसित होती, पुरातन रूप को त्यागती, नये घटना-क्रम में नये रूप धारण करती है।''[37] आगे उन्होंने प्रकृति को अपनाने का उद्देश्य बताते हुए लिखा है — मेरा एकमात्र उद्देश्य यही रहता है कि मैं अनचाहे मौत की चपेट में न आ जाऊँ। इसीलिए, मैं दीर्घजीवी पेड़ो को, धीर नीर से भरी-भरी प्रवाहित नदी को, तरल-तरंगित हरहराते घुड़दौड़ लगाते हिरनों की चौकड़ी भरते सागर को, चहचहाती चिड़ियों को, नित्य नया घोंसला बनाते पंख पसारे उड़ते आसमान चूमते पखेरुओं को, नित्य नूतन फसल उगाने वाले खेतों को, बैलों को, प्यार करता और अपनाता हूँ, और आत्मीय बना-बनाकर उनपर न्यौछावर होता हूँ। शेषनाग से भी आतंकित नहीं होता। पाँच बार बरजोर महाकाल से बच निकला हूँ। मेरे घर के बाड़े के पेड़ निरंतर पहरुओं की तरह सजग चौकसी करते रहते हैं कि मौत मेरे पास न आ सके। मैं इसीलिए तो अब चिरन्तन प्रकृति के साथ अत्यंत आत्मीय ढंग से सम्बद्ध हो रहा हूँ और अपनी रचना में उसे ही व्यक्त कर रहा हूँ।''[38]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रकृति का सौन्दर्य बखूबी चित्रित हुआ है। उन्होंने प्रकृति का चित्रण आलम्बन, उद्दीपन और मानवीकरण रुप में किया है। कहीं-

कहीं प्रकृति सहचरी और भयंकर रुप में भी दिखाई पड़ती है। केदारनाथ अग्रवाल के प्रायः काव्य-संग्रहों के गीतों में प्रकृति का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। 'यह उजियाली रात' नामक गीत चाँदनी रात की षुषमा को उजागर करने में सक्षम है —

यह उजियाली रात आज सिंगार किए जो हँसती आई,
धवल चाँदनी जग में जिसकी कोमल सेज बिछाती छाई,
जिसे देखते ही मैं रीझा, हुआ रूप का लोभी पागल
गीत सुनाकर, गाकर मोहा थाम लिया जिसका प्रिया आँचल।[39]

प्रकृति के पेड़ भी अकेलेपन से दुखी होते हैं। उन्हें भी किसी न किसी का सान्निध्य चाहिए। अकेलेपन के दुःख से व्यथित सेमल भी अपना पत्ता झाड़ देता है। गीतकार की संवेदना इन प्राकृतिक उपादानों के प्रति भी है, तभी वह 'जब सेमल का पेड़' नामक गीत में कहता है —

जब सेमल का पेड़ अकेला
बाट जोहकर थक जाता है
तब बेचारे का हर पत्ता
आहत होकर झर जाता है।[40]

पूरब से बहनेवाली हवा पुरवैया को गीतकार ने एक युवती के रूप में प्रस्तुत किया है। वह हरी दूब पर बूंदों के घूँघरू की आवाज पर मदमत्त हो नाच रही है। प्रकृति का यह मानवीकरण चित्रण किसका मन नहीं मोह लेता? 'पुरवैया' नामक गीत का यह चित्र दर्शनीय है —

दल के दल बादल छहराकर
नील नवल लहँगा लहराकर
घेर रही क्षिति को पुरवैया!
सरका चीर, खुला अवगुंठन
निर्जन में होता सम्मोहन,
रोम रोम माती पुरवैया!
बजते हैं बूँदों के घूँघर

होता है मादक मीठा स्वर
करती है छमछम पुरवैया!![41]

पेड़ो का सौन्दर्य हरा-भरा रहने, फूलने और फलने में है। केदारनाथ की आत्मीयता प्रकृति से थी, इसलिए वे 'पेड़ महोदय' नामक गीत में पेड़ से आग्रह करते हुए कहते हैं—

पेड़ महोदय
कलियाँ खोलो,
कुछ तो हमसे
हँसकर बोलो।[42]

शुक्ल पक्ष की रात अति सुहावती होती है। शरद ऋतु की चाँदनी तो और भी मनमोहक होती है। सारा संसार उस सुन्दरता से मुग्ध रहता है। चाँद भले ही आकाश में रहता हो, उसकी चाँदनी धरती पर उतरकर धरती के उपादानों से अठखेलियाँ करती है। इसी भाव को 'चंद्र-रात्रि' नामक गीत में देखा जा सकता है—

चाँद की गागर निशा के शीश पर है।
चाँदनी का रौप्य आँचल भूमि पर है।।
रूप है रसदार, रम्भा नृत्यरत है।
मुग्ध है संसार सारा स्वप्नवत है।।[43]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में किसी प्रसिद्ध नदी का चित्रण नहीं है। उन्होंने अपने गाँव में बहनेवाली छोटी-सी केन नदी का चित्रण किया है। वह अन्य लोगों के लिए एक अनजानी और अनचीन्हीं नदी है, पर केदारनाथ के लिए वह बचपन से ही जानी-पहचानी नदी है। जिस नदी को उन्होंने बचपन से देखा है, उसके किनारे घंटों बैठकर समय बिताया और उसके सौन्दर्य को परखा है उसे वे कैसे भुला सकते हैं। नदी उनके लिए उनकी प्रेयसी से कम नहीं है। केन के सौन्दर्य से अभिभूत होकर उन्होंने कई गीत लिखे हैं। छोटों और उपेक्षितों के प्रति वे ज्यादा संवेदनशील रहे हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके गीतों में चित्रित केन नदी रही है। 'केन-किनारे' में गीतकार ने अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण मानवीकरण रूप में किया है—

सोने का रवि डूब गया है केन किनारे,
नीले जल में खोज रहे हैं नन्हे तारे।
चट्टानों ने देखा लेकिन एक न बोलीं,
ज्यों की त्यों निस्पन्द रहीं, वे एक न डोली।।
वायु तैरती रही केन का नीला पानी,
अनुबुझ ही रह गयी अजानी मर्म कहानी।
अंधकार भी गिरा और क्षण-क्षण गहराया,
तारों ने गम्भीर कार्य को कठिन बताया।।[44]

प्रातःकालीन सूर्य की किरणें एक नई ताजगी और स्फूर्ति सभी के अन्दर भर देती है। सभी एक नई उर्जा के साथ कर्मरत हो जाते हैं। ऐसी शक्ति और तेज प्रकृति हमें निःस्वार्थ प्रदान कर रही है और इस विश्व को जिलाये हुई है। अतः प्रकृति के प्रति हमें संवेदनशील होने की सीख देती है 'सबेरे का आग' नामक गीत—

पूरब में पैदा हुआ जीवन का राग है
पंखों के उड़ने का अम्बर में नाद है
कोयल की बोली से झरता प्रमाद है
किरनों के मेले में गाता प्रकाश है।[45]

प्रकृति के उपादानों में कुछ देने की भावना होती है लेने की नहीं। पर मनुष्य के जब अत्याचार की सीमा बढ़ जाती है तब प्रकृति उसका सर्वस्व छीन लेती है। प्रकृति के आगे किसी का कोई वश नहीं चलता। पेड़-पौधे अपने फलों से हमारे जीवन को सुन्दर बनाते और सँवारते हैं। उनमें कुछ देने की भावना होती है। खड़ी ज्वार की लालसा भी जीने की है, फल देने की है, इसलिए वह निष्ठुर मानव से निहोरा करती है कि फल लगने और पकने से पूर्व उसे नष्ट ना करे। 'ज्वार और जीवन' नामक गीत दर्शनीय है —

मेरी इच्छा है जीने की जीने देना
जी भर मुझको धूप रूपहली पीने देना
शाम सबेरे की होली में हँसने देना

मस्त हवा के हिलकारों में हँसने देना
इससे पहले मुझे न छूना।[46]

'दिवस शरद के' नामक गीत में शरद ऋतु के दिन का सौन्दर्य भी चित्रित है—

मुग्ध कमल की तरह पाँखुरी-पलकें खोले
कंधों पर अलियों की आकुल अलकें तोले
तरल ताल से दिवस शरद के पास बुलाते
मेरे मन में रस पीने की प्यास जगाते।[47]

पेड़ केदारनाथ के अति प्रिय रहे हैं। वे उन्हें अपने भाई जैसे लगते हैं जो धरती माई से नाता जोड़े हुए हैं। पेड़ हैं तो हम हैं। वे हमारे जीवन के आधार हैं। यदि हमें जीवित रहना है तो हमें प्रकृति को सुरक्षित रखना ही होगा। 'पेड़' नामक छोटा-सा गीत देखा जा सकता है—

मरकत पातों की श्यामलता को सरसाए।
सूर्यातप में खड़े पेड़ छवि-क्षीर नहाए।।
प्यारे लगते हैं मुझको मेरे भाई से।
नाता जोड़े हैं ये भी धरती माई से।।[48]

मौसम जब अनुकूल हो मन भी प्रसन्न हो तो दिल बाग-बाग हो जाता है। 'मौसम बहार का है' नामक गीत में सुहावने मौसम के माध्यम से प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत किया गया है-

मौसम बहार का है।
बजते सितार-सा है।।
अवसर मिलाप का है।
कुहकन-कलाप का है।।[49]

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' के प्राकृतिक-सौन्दर्य से संबंधित गीतों में प्रकृति का मानवीकरण चित्रण दिखाई पड़ता है। ऐसा चित्रण प्रकृति में जान डाल देने वाले होते

हैं। 'धूप का गीत' नामक गीत में आकाश से धरती पर उतरती धूप का मानवीकरण चित्रण हुआ है—

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी।
धरती भी कोलाहल करती
तम से ऊपर उभरी!!
धूप धरा पर बिखरी।।[50]

वसंत ऋतु में प्रकृति श्रृंगार करती हुई दिखाई पड़ती है। पेड़ों में फूल और मंजर आने लगते हैं। हिम से संकुचित प्रकृति अपनी आलस और जड़ता को त्याग मतवाली होने लगती है। इसी भाव को केदारनाथ ने अपने गीत 'वसंत' में प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप में चित्रित किया है-

हिम से हत संकुचित प्रकृति अब फूली
रुप-राग-रस-गंध भार भर झूली
रंगों से अभिभूत हुई चट्टानें
जड़ता में जागी जीवन की तानें
नभ में भी आलोक-नील गहराया
सागर ने संगीत तरंगित गाया।[51]

धूप भरे खेतों की सुन्दरता से अभिभूत गीतकार की चेतना झूमने लगती है। उसे ऐसा लगता है कि समस्त पृथ्वी एक माता है जो खिले फूलों को गोद लिए हुई है। विहंग मधुर स्वर में गा रहे हैं और पेड़ों के पत्ते करतल ध्वनि कर रहे हैं। प्रकृति का ऐसा संश्लिष्ट सौन्दर्य तो वही देख सकता है जो प्रकृति की सुरम्य वातावरण और मसृण गोद में अपने को पाता हो। 'पृथ्वी' नामक गीत की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं —

पृथ्वी है
या कि खिले फूलों को गोद लिए माता है।
मोर; जिसे मुग्ध देख, नाच-नाच जाता है

विहंगों का दल विशेष पहरों तक गाता है

और पवन पेड़ों के पत्तों से तालियाँ बजाता है।[52]

केदारनाथ अग्रवाल 'अनहारी हरियाली' की भूमिका में लिखते हैं — ''मैं मानता हूँ कि आदमी को जीने और विकास करने के लिए जितनी आदमियों की आत्मीयता चाहिए, उतनी ही प्रकृति के इन महान सपूतों की। मुझे उनकी आत्मीयता प्राप्त है और मैं जीवंत और प्राणवन्त हूँ।''[53] केदारनाथ द्वारा रचित गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण बखूबी हुआ है। उनकी आत्मीयता एवं संवेदना पूरी प्रकृति के प्रति है जो मानव के जीवनाधार हैं।

घ) प्रेम की अभिव्यक्ति

प्रेम मानव जीवन का एक अनमोल रत्न है। प्रेम के बगैर जीवन की सुन्दरता अधूरी है। प्रेम और सौन्दर्य का अन्योन्याश्रित संबंध है। मनुष्य अपनी सुन्दर लगने वाली वस्तुओं से प्रेम करता है, उसे छूना चाहता है, पाना चाहता है। रचनाकार सौन्दर्य का चितेरा होता है। अनुभूत सौन्दर्य को कलात्मक तरीके से रचनाओं में प्रस्तुत करता है। केदारनाथ अग्रवाल सौन्दर्यवादी कलाकार हैं। अपने सौन्दर्य और प्रेम को उन्होंने अपने गीतों में अभिव्यक्त किया है। उनका प्रेम एकनिष्ठ और स्वकीया है। उन्होंने कहीं भी मानसिक तृप्ति के लिए किसी अन्य नारी के प्रेम को चित्रित नहीं किया है। जहाँ कहीं भी वे प्रेम का चित्र उभारते हैं वहाँ केन्द्रविन्दु में उनकी धर्मपत्नी ही होती है। उनके गीतों में प्रेम का एकनिष्ठ और शुद्ध रूप ही दिखाई पड़ता है।

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रेम और प्रेम की अभिव्यक्ति के बारे में 'आत्मगंध' की भूमिका में लिखा है — ''प्रेम का जीवन जीने में सक्रिय योग होना चाहिए लोग अब ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं जहाँ वे किसी को अपना प्रगाढ़ प्रेम नहीं दे पाते। मैं प्रेम की महत्ता को जानता हूँ। इसीलिए प्रगाढ़ प्रेम करते रहने को आवश्यक समझता हूँ। मैं प्रेम को जीवन का मूल्य मानता हूँ।''[54] प्रेम को परम उपलब्धि मानते हुए वे आगे कहते हैं — ''प्रेम मानवीय चेतना की परम उपलब्धि है जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। जो आदमी सृजन-धर्मी है और चेतना को मानवीयता

से सम्प्रेषित करता चलता है वही तो अपने सृजन के बल पर मर कर भी नहीं मरता। वही मृत्यु पर जीवन की जय की घोषणा करता है।''[55] केदारनाथ पत्नी प्रेमी थे। वह उनकी रचना की प्रेरणा स्रोत थी। दिवंगत हो जाने के पश्चात्, वे अपनी पत्नी को अपनी चेतना में सदैव पाते रहते थे। उन्होंने लिखा है — ''इस संसार में ही वर्षो-वर्षों रहना और जीना चाहता हूँ। जैविक जीवन-मात्र नहीं, अपितु सृजनधर्मी-चेतना का जीवन जीना चाहता हूँ। मेरी पत्नी दिवंगत हो चुकी है। फिर भी वह मेरी चेतना में जीवित है और मुझे निरन्तर दिखाई देती हैं। हम दोनों एक दूसरे को जिलाए हुए हैं। वह मुझे द्वन्द्व झेलने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।''[56]

केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में आदर्श और एकनिष्ठ प्रेम का जो नैसर्गिक रूप चित्रित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। लोभी-लम्पटों को उनके गीत जरूर पढ़ने चाहिए। प्रेम संबंधी गीत उन्होंने पत्नी को संबोधित कर लिखे हैं। 'हमने तुमने प्यार किया है' नामक गीत की पंक्तियाँ दर्शनीय हैं —

हमने तुमने प्यार किया है
प्राणवंत हो प्यार किया है
बड़े प्यार से कर्म किया है
देश-काल का मर्म जिया है
बीतें छप्पन साल हमारे
संग-साथ में, प्राण न हारे।[57]

'तुम मेरी' गीत दो शरीर एक प्राण की उक्ति चरितार्थ करती है, जहाँ दोनों का प्रेम एकाकार होकर सिन्धु हो जाता है —

तुम मेरी -
मैं हुआ तुम्हारा
हम दोनों ने तन-मन वारा
रहा न कोई कूल किनारा
सिन्धु हुआ अनुराग हमारा।[58]

अपनी पत्नी के अपने पास होने का अहसास ही केदारनाथ को एक जीवनी शक्ति प्रदान करती है। उनका मानना है कि यह संसार प्यार से ही चलता और फलता है। 'कुछ नहीं होता जहाँ' नामक गीत में कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त हुआ है —

कुछ नहीं होता जहाँ
तुम पास होती हो वहाँ
मैं नहीं होता उदास,
मैं नहीं होता हताश
प्यार से तुम मुझे जीतीं
प्यार से मैं तुम्हें जीता
प्यार से संसार चलता
प्यार से संसार फलता।[59]

केदारनाथ अग्रवाल ने इस नैसर्गिक प्रेम को अचानक ही प्राप्त किया है। वे कहते हैं ब्याह में वे युवती लाने तो गये पर उन्होंने समस्त प्रेम को ही ब्याह कर अपने साथ लाया। 'मैंने प्रेम अचानक पाया' नामक गीत में यह भाव व्यक्त हुआ है-

मैंने प्रेम अचानक पाया
गया ब्याह में युवती लाने,
प्रेम ब्याहकर संग में लाया।।
घर में आया, घूँघट खोला,
आँखों का भ्रम दूर हटाया।
प्रेम-पुलक से प्रेरित होकर
प्रेम-रुप को अंग लगाया।।[60]

अपने प्यारी को देखे बगैर प्रेमी पति का मन सदैव सूना-सूना लगता है। चाहे वह कितना भी सुन्दर दृश्य क्यों न देखे, सुन्दर वस्तुएँ क्यों न देखे उसका मन अपनी अर्धांगिनी को देखे बगैर नहीं भरता, उसकी आँखों की प्यास नहीं बुझती। 'भर-भर लोचन देखूँ प्यारी' नामक गीत में वे लिखते हैं—

भर-भर लोचन देखूँ प्यारी, भर भर लोचन देखूँ।

ऊषा देखूँ, लाल गुलाबी घन का जीवन देखूँ,
ओस-धुले, मधु-कोष-भरे, फूलों का चुम्बन देखूँ,
पर तुमको बिन देखे प्यारी, भर-भर लोचन देखूँ!
भर-भर लोचन देखूँ प्यारी, भर-भर लोचन देखूँ!![61]

मनुष्य की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि सुन्दर लगने और सुन्दर दिखनेवाली वस्तुओं के प्रति उसका मन अधिक आकर्षित हो जाता है। केदारनाथ के प्रेम में एकनिष्ठता का भाव स्पष्ट परिलक्षित है। अपनी पत्नी को संसार की समस्त वस्तुओं से वे सुन्दर देखते हैं और उसी सौन्दर्य के प्रति वे आकर्षित बने रहते हैं। सुन्दरता उनकी अद्भुत जीवनी-शक्ति है। अपनी पत्नी को संसार की समस्त वस्तुओं से सुन्दर बताते हुए 'मेरी प्यारी सबसे सुन्दर' नामक गीत में कहते हैं —

मेरी प्यारी सबसे सुन्दर!
दिन से सुन्दर, निशि से सुन्दर,
सुन्दरतर रवि-शशि, से सुन्दर
मेरी प्यारी सबसे सुन्दर![62]

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल शादी के अवसर पर गठबंधन का रश्म सम्पन्न किये जाने को लेकर आज के मानव को एक बहुत बड़ा संदेश देते हैं कि यह गठबंधन दुपट्टे-चुँदरी का नहीं हैं, यह गठबंधन दो दिलों का गठजोड़ है, जो अटूट है। इस गठजोड़ को जो आजीवन कायम रखेगा वही सच्चा प्रेमी, पति और नैसर्गिक सुख प्राप्त करनेवाला होगा। तभी तो वे 'दुपटे-चुँदरी का गठबंधन' नामक गीत में लिखते हैं —

जिस दिन, जिस क्षण, जिस साइत में
मेरा पाणिग्रहण हुआ।
एक अलौकिक पूर्ण सुन्दरी का
उर में आगमन हुआ।।
दुपटे-चुँदरी का गठबंधन,
मेरा जीवन-वरण हुआ।
प्रथम प्रेम का वह मेरा दिन,

अमर मधुर संस्मरण हुआ।।[63]

प्यार बिना मानव का जीवन अधूरा है, बेकार है। प्यार में वह शक्ति होती है जो संसार की किसी भी वस्तु में नहीं होती। प्रेम के बगैर मनुष्य का जीवन झाड़ी, बेपहिया के गाड़ी और अनाड़ी होता है। इसलिए तो गीतकार 'प्यार न पाता' नामक गीत में कहता है —

प्यार न पाता
तो क्या होता?

x x x

बेपहिये का गाड़ी होता
सबसे बड़ा अनाड़ी होता
गूँगी खड़ी पहाड़ी होता
बँगाले का खाड़ी होता।[64]

अपने प्रेम को अमर बताते हुए प्रेम जनित अनुभव निरंतर जारी रहेगा ऐसा आश्वासन अपनी धर्मपत्नी को देते हुए 'यह जो आलिंगन होता है' नामक गीत में लिखते हैं —

हे मेरी तुम।
यह जो आलिंगन होता है
हुआ करेगा
यह जो प्यार-पुलक खिलता है;
खिला करेगा।[65]

केदारनाथ जीवन को एक गीत मानते हैं। इस गीत में प्रेम का राग जरूरी है। प्रेम के बगैर जीवन जीना सम्भव नहीं। 'इससे मैं जीवित हूँ' गीत में वे लिखते हैं —

साँसों में, सुधियों में, आँखों में, अँगियों में
रुप अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ
छन्दो में, छवियों में, काव्यों में, कवियों में
प्रेम अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ
गाँवों में, गलियों में, फूलों में, कलियों में

गीत अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ।[66]

प्रेम एक ऐसा फल है जो सदैव रस से भरपूर रहता है। इस रसीले फल को चखनेवाला व्यक्ति एक अदभुत नैसर्गिक सुख का अनुभव करता है। जिस व्यक्ति को यह फल निरस-सा लगने लगता है वही अपने जीवन को निरस पाकर निराशा से भर जाता है। केदारनाथ अग्रवाल प्रेम के मीठे फल का स्वाद चख चुके व्यक्ति हैं और उनका मानना है - प्रेम रूपी फल इतना रसीला है कि उतना रस शायद गीत में भी नहीं है। धर्मफल, कर्मफल भी प्रेम फल के आगे फीके हैं। प्रेम फल की मिठास 'है न इतना गीत में रस' में देखा जा सकता है —

धर्म फल फीका बहुत है,
कर्म फल फीका बहुत है,
फिर चखाओ प्राण प्यारी!
प्रेम फल मीठा बहुत है![67]

प्रेम रस का स्वाद बहुत मधुर होता है। यह मधुरता उस समय और बढ़ जाती है जब प्रेम में एकनिष्ठता हो और उसमें वासना का गंध न हो। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में अभिव्यक्त प्रेम एकनिष्ठ और पत्नी प्रेम है, इसलिए प्रेम के रस में पगे प्रेमी गीतकार का मन अपने चारों ओर प्रेम ही प्रेम देखता है। उसके मन में गीत का उद्वेलन हो रहा है। वह गीत में प्रेम को अभिव्यक्त करता हुआ लिखता है —

वायु आज वायु नहीं एक झनकार है।
जाने कौन दूर से बजा रहा सितार है।।
मोह रहा मेरा मन गीत का उभार है।
मेरा नहीं मुझ पर आज स्वाधिकार है।।
मीठे मीठे प्यार की बहार है।[68]

प्रेमिका की एक मुस्कान प्रेमी में जान डाल देती है। निर्जीव को भी सजीव करने की शक्ति उसमें होती है। प्रेमी उसकी मुस्कान के बल पर सारी विपत्तियों का सामना कर लेता है और विपत्ति अंत में हार मान जाती है। कहने का मतलब यह है कि अदम्य

साहस, शक्ति और दृढ़ता प्रदान करती है वह मुस्कान भरी प्रेम। इसीलिए तो प्रेमी 'वह मुस्कान' नामक गीत में कहता है—

वह मुस्कान तुम्हारी है -
जो अतिशय मुझको प्यारी है
मुझको छोड़ नहीं अब उसका कोई भी अधिकारी है
मेरी है वह, मैंने उस पर
सब तन्मयता वारी है
उसके कारन अब तो मुझसे सारी विपदा हारी है।[69]

केदारनाथ पेशे से वकील थे, लेकिन आज के वकीलों की तरह उनका मकसद पैसा कमाना नहीं था। इसलिए वे ज्यादा आमदनी नहीं कर पाते थे। अनेक अभावों के बावजूद उन्होंने अपनी ईमानदारी व वजूद को नहीं छोड़ा। पत्नी भी उनसे बहुत प्रेम करती थी। उनका मानना था कि प्रेम की प्राप्ति अर्थ द्वारा संभव नहीं। ईमानदारी से ही सब कुछ हासिल हो सकता है। प्रेम में छल का कोई स्थान नहीं। तभी तो वे कहते हैं —

हे मेरी तुम।
'गठरी-चोरों' की दुनिया में
मैंने गठरी नहीं चुरायी;
इसीलिए कंगाल हूँ
भुक्खड़ शाहंशाह हूँ,
और तुम्हारा यार हूँ,
तुमसे पाता प्यार हूँ।[70]

प्रेम में एक अद्भुत शक्ति होती है। इसके बल से हिंसक पशुओं पर भी विजय प्राप्त किया जा सकता है। कुंठा और निराशा को मिटाकर जीवन को खुशहाल बनाया जा सकता है। प्रेम एक ऐसी शोकहारी दवा है जिसका उत्पादन किसी फैक्ट्री या लेबरेटरी में नहीं होगा, वह हृदय की उपज है। प्रेम का प्रकाश ही शोक रूपी अंधकार को मिटा सकता है। आज का जग सिर्फ कुंठा और निराशा में डूबा हुआ है, उसे प्रेम

ही शोकहारी दवा के रूप में शोक हरण कर सकता है। गीतकार 'प्यारी तारों का आलोक' नामक गीत में कहता है —

प्यारी तारों का आलोक
हर सकता है तम का शोक।
प्यारी! अपना प्रेमालोक
हर सकता है जग का शोक।[71]

दाम्पत्य जीवन में पति और पत्नी का एक दूसरे के लिए सहयोगी होना, एक दूसरे की भावनाओं, सुख-दुख को समझना और अनुभव करना बहुत जरूरी होता है। सहयोगिता की आवश्यकता वृद्धावस्था में और बढ़ जाती है। केदारनाथ अग्रवाल जबकि पत्नी प्रेमी थे, अतः उन्होंने अपनी पत्नी के प्रति निःस्वार्थ प्रेम और मधुर व्यवहार के माध्यम से दाम्पत्य जीवन को चित्रित करते हैं। उन्हें वृद्धावस्था में भी इस बात की खुशी है कि यौवनावस्था का प्रेम वृद्धावस्था तक ज्यों का त्यों बरकरार है। उसमें रत्ती भी कमी नहीं आई। 'बृद्ध हुए हम' नामक गीत में यह भाव देखा जा सकता है —

हे मेरी तुम!
यही खुशी है प्यार न बदला,
प्रथम प्यार का ज्वार न बदला,
मिलनातुर सहकार न बदला,
मधुदानी व्यवहार न बदला।[72]

केदारनाथ अग्रवाल का एक गीत जो सारे गीतों का सार है, वह है - 'मेरे गीतों को तब पढ़ना'। इसमें उन्होंने बताया है कि उनके गीतों को पढ़कर वही उसका सार मर्म जान सकता है जो अपनी पत्नी को अपने जीवन में महत्व देता हो, जो उसके हित जीता-मरता हो। बहुत बड़ा संदेश आज के लोलुप और स्वार्थी प्रेमी और पतियों को दिया गया है इस गीत के माध्यम से। प्रेम समर्पण चाहता है तानाशाही नहीं। वे कहते हैं —

मेरे गीतों को तब पढ़ना;

बार-बार पढ़कर फिर रटना,
जब प्रेमी बनकर तुम सीखो,
प्यारी के हित जीना-मरना।[73]

प्रकृति और नारी के सौन्दर्य से प्रभावित केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में दोनों को समान स्थान मिला है। प्रकृति भी उतनी ही आकर्षक और प्रेरक होती है जितनी नारी। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है — ''नारी के सौन्दर्य में आदमी के जीवन की सहयोगिनी का सौन्दर्य भी होता है और नर और नारी दोनों ही एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हुए सौन्दर्य को उत्तरोत्तर मानवीय बनाते हैं और दोनों के सहयोग से सृष्टि भी सुन्दर हो जाती है।''[74] केदारनाथ प्रेम को जीवन का मूल्य मानते हैं। प्रेम मानवीय चेतना की एक ऐसी उपलब्धि है जिसके द्वारा मनुष्य मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है।

यहाँ कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्राम्य-जीवन एवं संस्कृति का चित्रण विस्तारपूर्वक हुआ है। ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य को उन्होंने कर्मशील व्यक्तियों के कर्मों के माध्यम से दिखाया है। किसानों को महत्व देते हुए उनके प्रति संवेदना का भाव रखकर गीतों में उनके संघर्षमय जीवन का जीवंत चित्र अंकित किया गया है। जहाँ तक प्रकृति-चित्रण का सवाल है, वहाँ प्रकृति से अदम्य साहस और शक्ति प्राप्त कर काल को भी परास्त करने के लिए प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। प्रकृति के पेड़, नदी, पहाड़, सभी जीवन के आधार हैं। इनकी सुरक्षा मानव की सुरक्षा है। इनके बगैर एक पल के लिए जीवन जीने की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः प्रकृति के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त कर गीतकार हमें भी उनके प्रति संवेदनशील होने का आह्वान करता है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों की सबसे मजबूत कड़ी है प्रेम। प्रेम के स्वरूप का निदर्शन उनके प्रेम-संबंधी गीतों में होता है। वासना और स्वार्थ के पाटों में पीस रहे प्रेम के उद्धारक हैं इनके गीत। इन्होंने वासना की पूर्ति के लिए प्रेम-गीत नहीं लिखे हैं। इनका प्रेम पत्नी प्रेम है, स्वकीया प्रेम है जिसमें एकनिष्ठ प्रेम का स्वस्थ स्वरुप उद्भाषित होता है। उनके प्रेम और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए तो वे लिखते हैं — ''मैं अनन्तकाल

तक अपनी पत्नी को पुकारता जीता रहूँगा और अपना मन सस्नेह खोलता रहूँगा। हम दोनों के न रहने पर भी हम दोनों एक-दूसरे से जीते-जैसे बातें करते रहेंगे और हमारे घर के ये कुटुम्बी पौधे फूल लाते रहेंगे और हमारी, आज जैसी याद, सबको दिलाते रहेंगे।''[75] 'जमुन जल तुम' में 'कैफ़ियत के बाद' में अशोक त्रिपाठी लिखते हैं— ''उनका पत्नी-प्रेम नित-नूतन रूप में स्वस्थ मानसिकता की सृष्टि करता है और कुंठा, बीमारी और अनास्था के स्थान पर आस्था और स्वस्थता का जीवंत उदाहरण बनाकर हमारे सामने उजागर होता है। उनमें पत्नी और प्रिया के प्रेम का द्वैध नहीं है। उनकी पत्नी ही उनकी प्रेयसी भी हैं।''[76] रामविलास शर्मा केदारनाथ अग्रवाल के प्रेम के विषय में लिखते हैं कि उनका प्रेम ''कुछ देर की आतिशबाजी न होकर बरसों तक अपना प्रकाश अमन्द बनाये रहता है। यह बरसों तक साथ रहने वाला प्रेमी का, जीवन-साथी का प्रेम है।''[77]

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक-विवेचन, पृ. सं. 97
2. वही, पृ. सं. 99
3. वही, पृ. सं. 135
4. केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं. 6
5. डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री' एवं डॉ. राम प्रकाश-आधुनिक कवि, पृ. सं. 175
6. विश्वनाथ त्रिपाठी - पेड़ का हाथ, पृ. सं. 17
7. वही, पृ. सं. 18
8. केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 36
9. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 66
10. वही, पृ. सं. 67
11. वही, पृ. सं. 131
12. वही, पृ. सं. 133
13. केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 229
14. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 110
15. वही, पृ. सं. 108
16. वही, पृ. सं. 152
17. केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 80
18. वही, पृ. सं. 88
19. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 26
20. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं.) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 39
21. वही, पृ. सं. 61
22. वही, पृ. सं. 128
23. ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री' एवं राम प्रकाश - आधुनिक कवि, पृ. सं. 177
24. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 99
25. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 117

26. वही, पृ. सं. 135
27. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 28
28. वही, पृ. सं. 55
29. केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखें खुले डैने, पृ. सं. 28
30. केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 168
31. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी-खरी, पृ. सं. 23
32. ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री' एवं राम प्रकाश - आधुनिक कवि, पृ. सं. 178
33. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं.) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 123
34. केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 5
35. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 7
36. केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखें खुले डैने, पृ. सं. 11-12
37. वही, पृ. सं. 12
38. वही, पृ. सं. 13-14
39. केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 46
40. वही, पृ. सं. 79
41. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 81
42. केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 75
43. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 145
44. वही, पृ. सं. 150
45. केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 181
46. वही, पृ. सं. 222-223
47. वही, पृ. सं. 235
48. केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 141
49. वही, पृ. सं. 145
50. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 32
51. वही, पृ. सं. 37

52. केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 149
53. केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, पृ. सं. 10
54. केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 8
55. वही, पृ. सं. 8
56. वही, पृ. सं. 8
57. वही, पृ. सं. 50
58. वही, पृ. सं. 65
59. वही, पृ. सं. 66
60. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 74
61. वही, पृ. सं. 76
62. वही, पृ. सं. 77
63. वही, पृ. सं. 74
64. केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 45
65. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 160
66. केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 140
67. केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 67
68. वही, पृ. सं. 72
69. वही, पृ. सं. 95
70. केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 73
71. केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 42
72. केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 17
73. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 90
74. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 130
75. केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 7
76. केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 10
77. रामविलास शर्मा - प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 94

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय
सर्वहारा वर्ग का जीवन और केदारनाथ अग्रवाल के गीत

क) सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति

ख) जीवन यथार्थ का चित्रण

ग) शोषण एवं उत्पीड़न का विरोध

घ) न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान

ङ) समानाधिकार की चेतना

च) पूँजीवाद का विरोध

छ) रूढ़ियों का विरोध

सर्वहारा वर्ग वह है जो अपना सबकुछ खो चुका है, जिसका सर्वस्व किसी के द्वारा हरण कर लिया गया हो और वह कंगाल हो चुका हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि समाज का वह दरिद्र, निर्धन व्यक्ति या वर्ग जो केवल दूसरों के यहाँ काम करके, मेहनत मजदूरी करके अपना तथा परिवार का गुजारा करता है। यही वर्ग सबसे शोषित और पीड़ित है। लाख पीड़ा सहने के बावजूद वह अपना मुँह खोलकर प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर पाता क्योंकि न तो वह शारीरिक दृष्टि से मजबूत होता है न आर्थिक दृष्टि से। शोषक वर्ग इन्हीं लोगों को अपने सवार्थ सिद्धि का साधन बनाते हैं। सर्वहाराओं को अपने मेहनत और मजदूरी का ही एकमात्र भरोसा होता है पर उन्हें मेहनत की पूरी मजूरी भी मयस्सर नहीं होता। प्रगतिवादियों ने इन्हीं सर्वहाराओं के प्रति अपनी संवेदना एवं सहानुभूति का भाव रखते हुए शोषको का पूरजोर विरोध किया है। सर्वहाराओं को अपना हक प्राप्त करने के लिए उनमें क्रांति की चेतना जगाने की कोशिश किया है। प्रगतिवादी गीतकार केदारनाथ अग्रवाल पेशे से वकील थे, पर उनका मन वकीली में कभी नहीं लगा, क्योंकि कोर्ट कचहरी के हथकंडे वे अच्छी तरह जानते थे और उस अन्याय का वे समर्थन कतई नहीं करता चाहते। उन्होंने खुद लिखा है - ''वकील होते-होते तक मैं मार्क्सवाद के जीवन-दर्शन से अपनी मानसिकता बनाने लगा। मुझे वर्ग-विभाजित समाज की जीवन-पद्धति अरूचिकर लगने लगी।''[1]

उन्हें कचहरी की कार्य प्रणाली में आदमी के रूप में स्वार्थियों की जमात दिखने लगी। यह सब देखकर उनका मन उद्विग्न और बेचैन रहने लगा। इतना ही नही सर्वहारा वर्ग (कृषक-मजदूर) के अभावों, कष्टों और उनपर होने वाले अत्याचारों को भी उन्होंने प्रत्यक्ष आखों से देखा था। अतः अपनी रचनाओं में उन्होंने इनकी स्थितियों का जिक्र करके उनके ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार शोषण आदि के खात्में के लिए प्रयास करना शुरू किया। अशोक त्रिपाठी लिखते हैं उनकी रचनाओं में - ''मेहनत मजदूरी करनेवाले लोगों की आत्मा की पुकार है, उनकी झुंझलाहट हैं, उनकी तिलमिलाहट हैं, उनकी खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की कल्पनाशक्ति हैं, उनकी एका के बल का तूर्यनाद है, स्वार्थी शोषक, सत्तालोलुपों को उनकी फटकार

और ललकार है, उनकी पीर हैं, देश की दरकी हुई छाती की उनके हृदय में खिंची तस्वीर है।''[2] केदारनाथ के गीतों में जीवन का यथार्थ चित्रण भी मिलता है। यह चित्रण तत्कालीन और समकालीन दोनों से संबंधित है। मानवतावादी विचारधारा वाले गीतकार केदारनाथ अपने गीतों में शोषण एवं अत्याचार का विरोध पूरी जोर से करते हैं। इतना ही नहीं न्याय पाने और अपनी अधिकार प्राप्त करने के लिए सर्वहारा वर्ग को संघर्ष के लिए आह्वान भी करते हैं। वे अपने गीतों में समान अधिकार की चेतना भी जागृत करते हुए दिखाई पड़ते हैं। समाज का सबसे बड़ा दानव पूंजीवाद का विरोध तो वे करते ही हैं साथ ही रूढ़ियों में फंसे सर्वहारा को भी यह बता देना चाहते हैं कि रूढ़ियाँ पाँव की बेड़ियाँ हैं जो विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने में बाधा उत्पन्न करती हैं। जीवन में कर्म के द्वारा ही सबकुछ हासिल किया जा सकता है, अंधविश्वास मे पड़कर नहीं। केदारनाथ अग्रवाल ने सर्वहारा के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हुए उनके पक्ष में जो भी अपनी राय व्यक्त की हैं उसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके गीत हैं। उन गीतों मे उन्होंने सर्वहारा वर्ग के लोगों की सुषुप्त चेतना को जागृत कर संघर्ष के लिए आह्वान किया है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विन्दुओं और बातों पर चर्चा की गयी है।

क) सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति

केदारनाथ अग्रवाल को किसान और मजदूरों से ज्यादा हमदर्दी थी। वे अपनी ईमानदारी और कर्मठता से अपने जीवन की गाड़ी को खींचते चले जाते हैं। वे समाज में किसी न किसी द्वारा शोषित होते रहते हैं। अपने गीतों में केदारनाथ ने सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी संवेदना जाहिर करते हुए सहानुभूति का भाव रखा है। डॉ. रामचन्द्र मालवीय से बातचीत में उन्होंने कहा है - ''मुझे अपने जीवन में जितने छोटे और गरीब आदमी मिले, वे उन सभी बड़े व ओहदेदारों व शक्तिसम्पन्न पैसेवालों से ज्यादा ही चरित्रवान और कर्मठ आदमी लगे और वही जीवन जीने के लिए सौ-सौ तकलीफें उठाते हैं और कष्ट पर कष्ट झेलते हैं। फिर भी, आदमी की तरह जीने के लिए वे ललकते और जीवन की आग और आँधी को पकड़ते और मरते-खपते रहते हैं। xxx मैं सामाजिक कार्यकर्ता नहीं रहा हूँ। इसलिए अपनी वाणी को लिपिबद्ध करके

उन तक पहुँचाने में ही अपने आदमी होने की सार्थकता समझता हूँ।''[3] केदारनाथ निराला के व्यक्तित्व और व्यवहार सें काफी प्रभावित थे। उसका नतीजा यह हुआ कि किसान-मजदूर से जुड़े रहने की उत्कंठा[4] में मदद मिली। मानवतावादी दृष्टिकोण होने के वजह से उनका जुड़ाव शोषित-पीड़ित लोगों से ज्यादा था। उनकी सहानुभूति इन दबाये सताये लोगों के प्रति ज्यादा थी। कमलाप्रसाद से बातचीत में वे कहते हैं - ''मैं तो पूरी तरह से जमीन और जिन्दगी से जुड़ा हुआ था। मेरा दृष्टिकोण मानववादी था। इतना जानता था कि आदमी को बेईमान नहीं होना चाहिए, किसी को छलना नहीं चाहिए।''[5] बुन्देलखण्ड में केदारनाथ ने देखा था कि किसानों, खेतिहर मजदूरों की स्थिति कभी अच्छी नहीं रही। वे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूखमरी से हमेशा जूझते रहे और विवश होकर आत्महत्या करते रहे। किसान जीवन की इस अन्तहीन दास्तान को वे अपने गीतों में वर्णित करते रहे और सर्वहारा के प्रति अपनी सहानुभूतिशीलता का परिचय देते रहे। कर्मशील मनुष्य के रूप में किसान और मजदूर के महत्व को केदारनाथ अच्छी तरह जानते थे और इसलिए उन्होंने अपने गीतों में उनको स्थान देकर अपने मानववादी होने का परिचय दिया है। वे स्वीकार करते हैं- ''मैने कर्मशील मनुष्यों की करनी की महत्ता जानी और मैं उसे अपनी रचनाओं में सगर्व, साहस के साथ व्यंजित करने लगा। गरीबी के अभिशाप से तड़पते लोगों की व्यथा मेरी व्यथा बन गई।''[6]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का अध्ययन करने के बाद यह तथ्य सामने उभरकर आता है कि केदारनाथ की सहानुभूति किसान मजदूर के प्रति ज्यादा थी। वे उनका उद्धार करना चाहते थे। गीतों के आधार पर हम उनके इन विचारधारा को चरितार्थ करने का प्रयास करेंगे। केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित 'जो शिलाए तोड़ते हैं', 'पंख और पतवार', 'गुलमेंहदी', 'अनहारी हरियाली', 'खुली आँखे खुले डैने', 'कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह', 'पुष्पदीप', वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, फूल नहीं रंग बोलते है, 'कहें केदार खरी-खरी', बोले बोल अबोल, बम्बई का रक्त स्नान (आल्हा) काव्यसंग्रह के गीतों में सर्वहारा वर्ग की स्थिति का चित्रण और उनके प्रति सहानुभूति का भाव दिखाई पड़ता है।

'भरा ठेला खींचता, हूँ' नामक गीत में केदारनाथ ने ठेले वाले की व्यथा को उनके मुँह से व्यक्त कराया है। एक मोटी रोटी, सूखे चने खाकर भूख मिटानेवाला व्यक्ति पसीने से तर कंकड़ीले पथ पर अकेला ठेला खींचता है, लेकिन उसे इस बात का संतोष है कि वह ईमानदारी से और लगन से पेट की खातिर ठेला खींचता है -

भरा ठेला खींचता हूँ
खड़े सूखे चने चाबे
रोट मोटा एक खा के
कड़ी कंकड़ की सड़क पर बाहुबल से खींचता हूँ
x x x
भरा ठेला खींचता हूँ
कर्म की सच्ची लगन है
पेट का ऐसा जतन है
आदमी हूँ आदमी का भार भारी खींचता हूँ
भरा ठेला खींचता हूँ।[7]

भूख की पीड़ा तो सबको सताती है। अभिजात्य-वर्ग भूख की अनुभूति होते ही उसे तुरंत शमन कर लेते हैं, पर सर्वहारा-वर्ग भूख की पीड़ा का वास्तविक अनुभव करता है। वह चाहते हुए भी उसे शमन नहीं कर पाता, क्योंकि किसानी और मजदूरी पर निर्भर यह वर्ग पेट की भूख को मिटाने के लिए अपने कलेजे के टुकड़े को भी बेचने पर मजबूर हो जाता है। गीतकार ने 'बाप बेटा बेचता है' नामक गीत में एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत किया है कि पढ़ने वाले का कलेजा मुँह तक आ जाता है। अपने बेटे को बिकता देख माँ विलाप करते - करते मूर्च्छित हो जाती है। गीतकार ने अपनी संवेदना ऐसे ही लोगों के प्रति व्यक्त कर हमें भी संवेदनशील होने का आह्वान करता है। मर्मवेधी गीत की पंक्तियाँ दर्शनीय हैं-

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म धीरज, प्राण खोकर

हो रही अनरीति बर्बर राष्ट्र सारा देखता है।
बाप बेटा बेचता है,
माँ अचेतन हो रही है।
मूर्छना में रो रही है,
दाम के निर्मम चरण पर प्रेम माथा टेकता है।[8]

गरीबी की मार झेलती स्त्रियों की स्थिति का जिक्र भी केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में हुआ है। जन्म लेने से लेकर मृत्यु पर्यन्त गरीबी कभी पीछा नहीं छोड़ती। सर्वहारा के जीवन का यही यथार्थ है। 'जहरी' नामक गीत उन स्त्रियों की प्रतिनिधि गीत है जो गरीबी के वजह से अपना जीवन खो देती है। इस गीत में जहरी की स्थिति का चित्रण सहानुभूति पूर्वक गीतकार ने किया है -

पैदा हुई गरीबी में,
पाली गई गरीबी में
व्याही गई गरीबी में,
माता हुई गरीबी में
x x x
खाती रही गरीबी से,
जीती रही गरीबी से,
सब दिन पिसी गरीबी से
सब दिन लड़ी गरीबी से!![9]

कुली सिर्फ स्टेशनों पर बोझ ढोनेवाला कुली नहीं है। वह एक प्रतिनिधि पात्र है जो सर्वहाराओं का प्रतिनिधित्व करता है। कुली वह है जो कहीं भी बोझ ढोता है और लोगों के राह को आसान बना देता है। वह पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए स्वयं बोझ की तले दब जाता है फिर भी मेहनत के मुताबिक मजूरी नहीं प्राप्त कर पाता। 'कुली' नामक गीत में केदारनाथ अग्रवाल ने बोझ ढोने वालों की दशा को चित्रित किया है। यात्रिओं के यात्रा का बोझ हल्का करने वाला कुली पसीने से तर होकर लंबी दूरी तय करता है, खाली पैर कंकड़ीले पथ पर चलता है, मुँह के होने के

बावजूद वह गूँगा बना रहता है और मजूरी नाममात्र का पाता है। ऐसे लोगों के प्रति गीतकार का संवेदनशील होना स्वाभाविक है। इसीलिए तो वह कहता है -

‘जो कुली पीठ पर बोझ लिये चलता है
हाड़ो पर अपने भार लिये चलता है
कंकड़ पत्थर रोड़ों पर पग धरता है
हरदम आगे ही आगे को बढ़ता है।
चलते चलते तलुवे एड़ी घिसता है
रूकने टिकने को जो मरना कहता है
लम्बे पथ की पूरी दूरी हरता है
सूरज की किरनों में तपता चलता है।’[10]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों मे सर्वहारा वर्ग के प्रति हमदर्दी इस कदर है कि दर्द के साथ हमदर्द भी हैं जो धाव को तुरंत भरने की कोशिश करते हैं, उसपर मरहमपट्टी लगाते हैं, यह मरहमपट्टी सहानुभूति की है, संवेदना की है। ‘दर्द और हमदर्द’ नामक गीत में इस भाव को देखा जा सकता है-

जब आये
        साथ-साथ आये, दोनों,
दर्द और हमदर्द,
एक ने मारा छुरा,
दूसरे सहानुभूति से धाव पूरा।[11]

केदारनाथ की दृष्टि में आदमी का बेटा वह है जो कड़ी मेहनत करके ईमानदारी से कमाता है और उस कमाई से अपना पेट पालता है। ये आदमी लोग ही सर्वहारा हैं। मेहनत के अनुकूल मजूरी उनको मयस्सर नहीं होता। ऐसे लोग ही सहानुभूति के पात्र हैं। ’आदमी का बेटा’ नामक गीत की पंक्तियाँ देखा जा सकता है-

आदमी का बेटा
गरमी की धूप मे भाँजता है फड़ुआ।
हड्डी को, देह को तोड़ता है।।

खूब गहराई से धरती को खोदता है।
काँखता है, हाँफता है, मिट्टी को ढोता है।।
गन्दी आबादी के नाले को पाटता है।[12]

सर्वहाराओं की स्थिति सिर्फ अभिजात्य द्वारा शोषित होने के कारण ही नहीं बिगड़ी है। कहीं न कहीं वे अपनी बुरी आदतों से भी अपना सर्वस्व नाश कर लेते हैं। जिन्दगी से उबकर मद्यपान कर अपने दायित्व को भूल जाने वाला चैतू को एक प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित किया गया है 'चैतू' नामक गीत में। गीत की पंक्तियों का भाव दर्शनीय है -

बीबी, बच्चे घर की माया
सब की दुनियादारी तज के
सूरज डूबे, छुट्टी पा के,
जिन्दा रहने से उकता के
चैतू ने बेहद ठर्रा पी,
बेहोशी में मर कर सोया
खून पसीने से जो पाया
वह कड़वे पानी में खोया।[13]

गीतकार ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा किया है कि भले ही दबाये, सताये गये सर्वहारा के प्रति किसी की सहानुभूति रहे न रहे , वे सदैव इनके साथ है और साथ रहेंगे। 'कोई आये या न आये' नामक गीत में यह विचार व्यक्त हुआ है -

अकेला ही जिऊँगा इसी घर में
चेतना मेरी प्रबल है
सत्यदर्शी मैं सबल हूँ,
मैं नहीं अनयन हुआ
अब भी नयन से देखता हूँ
मोद-मंगल रूप रम्या मेदिनी को
संघर्ष-रत श्रमशील जन को।[14]

आजादी के पहले हमारे देश और देशावासियों की जो स्थिति थी वह वाकई प्रतिकूल थी लेकिन आजादी के बाद परिस्थिति तो और भयावह हो गयी। आजादी के पहले के शोषक विदेशी थे। उनकी हमदर्दी हमारे साथ कभी नहीं रही, लेकिन आजादी के बाद के शोषक तो हमारे अपने लोग थे और हैं। इन्ही के इसी शोषण की चक्की में सर्वहारा पिस रहा है। स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसलिए केदारनाथ अग्रवाल ने 1991 ई. में लिखित 'सब कुछ देखा' नामक गीत में सर्वहारा की ज्यों की त्यों बनी स्थिति का जिक्र करते हुए उनके प्रति अपनी संवेदना ज्ञापन किया है। उन्हें स्थिति कहीं भी बदली हुई नजर नहीं आती। इसलिए वे लिखते हैं-

सब कुछ देखा,
फिर - फिर देखा,
जो देखा वह देखा देखा
देखे में कुछ नया न देखा
हेर-फेर का प्रचलन देखा,
दूषण देखा,
शोषण का अपलेपन देखा।[15]

अपने सपने को धूल में मिलाकर बेवश मजदूरी करके जीवन जीने वाली सर्वहारा औरतें आज भी हमारे देश में कम नहीं हैं। सर्वहारा सपने तो देखते हैं पर वे उन्हें साकार नहीं कर पाते। उनका सपना धूल बनकर उड़ जाता है। ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति केदारनाथ के गीतों में हमें दिखाई पड़ता है। 'अपना सपना धूल बनाकर' नामक गीत में ऐसी ही एक औरत के प्रति संवेदना व्यक्त किया गया है जो अनचाहा दुःख के सागर में जीवन जी रही है -

कर से कर
पर की मजदूरी
पग से हर
क्षण-क्षण की दूरी
जीवन जीती है

अनचाहा

दुःख के सागर में

अनथाहा।[16]

केदारनाथ अग्रवाल मानवतावादी विचारधारा के व्यक्ति हैं। वे सर्वहारा के उद्धार के लिए शांति की गीत गाते हैं। पीड़ित और समस्याग्रस्त लोगों में भी वे प्राण का संचार करना चाहते हैं। 'शांति का स्वर' नामक गीत में यही भाव प्रतिफलित हुआ है -

आओ, मेरे स्वर में स्वर दो,

गाओ जग का गीत।

गाँव-गली में भर दो भर दो,

जीवन का संगीत।।

पीले पत्तों की आबादी,

पीड़ा से है म्लान।

आशा के शीतल चन्दन से

दे दो उसको प्रान।।[17]

तेरह वर्ष की अनाथ युवती आँखों में आँसू भरे सात वर्ष से दूसरे के घर बरतन माँजने का काम कर पेट पालने पर मजबूर है। कितने अरमान और सपने उसके चनकाचूर हो गये हैं, इस व्यथा को एक जनवादी रचनाकार ही समझ सकता है। इसीलिए तो वह अपनी अनुभूति को गीतों में पिरोते हुए 'आँख दुखों से आँज रही है' में लिखता है -

बारह बरस व्यथा में बीते

तेरहवें में पाँव घरे हैं।

पीर हृदय में, नीर नयन में,

साँसों में संताप भरे हैं।।

दम्भक ताड़ित और प्रताड़ित

शैशव का अभिशाप लिए हैं।

फूलों के नादान अधर से
शूलों के अपमान पिए हैं।
माता और पिता से वंचित
घर घर बरतन माँज रही है।
सात बरस से साँझ - सकारे
आँख दुखों से आँज रही है।[18]

केदारनाथ का ऐसा मानना है कि साम्य की बात कहने मात्र से समता नहीं स्थापित हो जाती। उसके लिए बुनियादी स्तर पर काम करने की जरूरत पड़ती है। दीन-हीनों के हित के लिए काम करना और उनका साथ देना पड़ेगा। इसीलिए वे 'जीवन का रवि-रूप उजाला' नामक गीत में कहते हैं -

जीवन का शिव-साम्य सँदेश
कौन कहेगा आज
वही कहेगा जो दीनों का
हाथ गहेगा आज।[19]

समस्याग्रस्त लोगों की समस्याओं को वही समझ सकता है जो खुद उन समस्याओं को झेला हो, सर्वहारा-सा जीवन बिताने पर मजबूर हुआ हो। वही व्यक्ति ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हुए संवेदनशील हो सकता है। केदारनाथ के गीतों में वही संवेदना हमें दिखाई पड़ती है क्योंकि वकील होने के बावजूद उनका जीवन अभावग्रस्त रहा है। 'हम हैं मनुष्य' नामक गीत में उनके इस भाव को देखा जा सकता है -

हम हैं मनुष्य
पीड़ित प्यार के पीड़ित मनुष्य
पीड़ित प्यार को देकर
पीड़ित प्यार के पाने वाले मनुष्य
हम हैं मनुष्य
खंडित आत्मा के खंडित मनुष्य

खंडित आत्मा को देकर
खंडित आत्मा को पानेवाले मनुष्य
हम हैं मनुष्य
क्रंदित पुकार को देकर
क्रंदित पुकार के पाने वाले मनुष्य।[20]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अंग्रेजों ने जमींदारी प्रथा को लागू किया था। जमीन का मालिक ये जमींदार ही होते थे, जो पूँजीपति थे। खेती करने के लिए वे लगान पर जमीन देते थे और किसानों से लगान वसूल कर अंग्रेज सरकार को भी देने थे और अपना पेट भी भरते थे। पैदावार हो या न हो किसान कर देने पर मजबूर थे। कुछ किसान तो कर के नाम पर अपना सर्वस्व लुटा देते थे। केदारनाथ अग्रवाल के गीत कुछ ऐसी ही परिस्थिति का वर्णन है। जमींदारों के अत्याचार से किसान परेशान हैं। मौसम की मार और कीड़ों के अत्याचार से उसकी फसल नष्ट हो रही है। सारे अरमान टूट जाते हैं। वह लगान चुकाने के लिए मजबूर हो जाता है और अपनी बपौती सम्पत्ति के नाम पर थोड़ी बची जमीन को भी बेच देता है, उसे कृषक से मजदूर बनने के लिए विवश कर दिया जाता है। किसान जीवन की व्यथा का कोई अंत नहीं। 'कारण-करण' नामक गीत में कुछ ऐसा ही चित्र दिखाई पड़ता है -

गेहूँ में गेरूआ लगा,
घोंधो ने खा लिया चना,
बिल्कुल बिगड़ा, खेल बना
अब आफत से काम पड़ा,
टूटा सुख से भरा घड़ा
दिल को धक्का लगा बड़ा।[21]

सर्वहाराओं की स्थिति दिन पर दिन बद से बदतर होती जा रही है। 'कल और आज' नामक गीत में इस स्थिति का जिक्र बखूबी हुआ है -

कल से आज अधिक कटु दिन है
कल रोटी थी

आज नहीं है

कल रोजी थी

आज नहीं है

रोजी-रोटी

जन-जीवन के लिए कठिन है।[22]

केदारनाथ अग्रवाल सही अर्थों में मानव, शोषित और पीड़ित सर्वहारा को ही मानते हैं। क्योंकि ये किसी को ठगते नहीं खुद ठगे जाते हैं। पूरी ईमानदारी के साथ मेहनत-मजदूरी करके अपना गुजारा करते हैं। इनकी ईमानदारी और कर्मशीलता ही इनकी सुन्दरता है। इसी सुन्दरता के उद्‌बोधक गीतकार हैं केदारनाथ अग्रवाल। अतः ऐसे लोगों के प्रति अपने गीतों में सहानुभूति का भाव रखना और संवेदनशील होना लाजमी है।

गीतकार सर्वहाराओं के साथ उनकी शक्ति बनकर खड़ा है। वह उन्हें मानसिक रूप से सबल बनाना चाहता है ताकि वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकें। वह उन्हें सारे बंधनों से मुक्त कराके सामान्य मनुष्य की तरह जीवन जीने की प्रेरणा देना चाहता है। 'कहें केदार खरी खरी' नामक संग्रह में एक गीत है 'मैं'। इस गीत में गीतकार की पूरी संवेदना सर्वहारा के प्रति है -

गीत हूँ लेकिन किसानों।

मैं तुम्हारी वेदना हूँ।

बंधनों से मुक्त होने की

तुम्हारी चेतना हूँ।[23]

ख) जीवन यथार्थ का चित्रण

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म गुलाम भारत में हुआ था। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर होनेवाले अत्याचार और अन्याय को देखा था, और स्वतंत्र भारत के स्वरूप को भी इन्होंने अच्छी तरह से देखा और पहचाना था। परिस्थितियाँ कभी भी सामान्य जनता के अनुकूल नहीं थी। उन्होंने उन सब हथकंडों को भी देखा था, जिसे

राजनीतिज्ञ, पूँजीपति, मालिक और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोग अपनाते हैं। रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, स्त्रियों की स्थिति को वे अच्छी तरह देख चुके थे। ईमानदारी के पथ पर चलकर कोई अपने लिए बहुत कुछ नहीं कर सकता। उन्होंने सब कुछ देख समझकर और उद्विग्न होकर अपने गीतों में तत्कालीन जीवन यथार्थता को अभिव्यक्त किया है जो आज भी प्रासंगिक हैं। इन सबमें रिश्वत की समस्या और पुलिस के हथकंडे की समस्या सबसे प्रासंगिक है। केदारनाथ अग्रवाल अपने युग के यथार्थ को भली-भांति जानते थे क्योंकि वे अपनी धरती की मिट्टी और देश से जुड़े हुए थे। 'आग का आईना' की भूमिका में वे लिखते हैं - ''मैं अपने देश में अजनबी नहीं हुआ। अजनबी होना आदमी न होने की निशानी है। आदमी न होने का मतलब है अपने आदमियों को न समझना - अपने युग के यथार्थ को न समझना - और विसंगतियों में रह कर आदमी होने से इनकार करना।''[24] वे अपने देश की विसंगतियों से भाग कर कहीं दूसरे देश में जाना पसंद नहीं करते। उनका मानना है कि निश्चय ही देश विसंगतियों को दूर करेगा - और उसे दूर करने में हरेक देशवासी को योग देना होगा।[25]

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य-संग्रहों के अध्ययनोपरांत आत्मगंध, जो शिलाएँ तोड़ते हैं, अपूर्वा, पंख और पतवार, गुलमेंहदी, अनहारी हरियाली, खुली आँखें खुले डैने, कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पुष्पदीप, वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, फूल नहीं रंग बोलते हैं, बोले बोल अबोल, और 'कहें केदार खरी खरी' आदि के गीतों में जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है, हालाँकि केदारनाथ के गीतों में यथार्थ का ही चित्रण ज्यादा हुआ है। साथ ही राजनीतिक जीवन-यथार्थ भी बखूबी चित्रित हुआ है। मंत्रियों की चालबाजियों, करतूतों और जनता की समस्याओं से उदासीनता आदि का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है - 'मंत्री' नामक गीत में मंत्रियों के करतूतों को गीतकार ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है -

''नीचे उसके कौसिल घर में, मंत्री हैं मदछाके।
एक एक से गुनी-धनी हैं एक-एक से बाँके।।
जन जीवन के वह मालिक हैं, वह हैं भाग्य विधाता।

देख देखकर उनकी लीला सिर नीचे झुक जाता''[26]

चुनाव में जीतकर सांसद हो जाने के बाद नेता अपने को भगवान ही समझने लगते हैं। उनकी साँठ गाँठ पूजीपति शोषकों से किस प्रकार हो जाता है इस यथार्थ को व्यंग्यात्मक तरीके से 'दिल्ली के भगवान' नामक गीत में चित्रित किया गया है -

लाल किले में झंडा फहरा, अब दिल्ली है तेरी।
दर्शन पाकर राज्यलक्ष्मी, बन बैठी है चेरी।।
शासन के अधिकारी बनकर, खींच रहे हो डोरी।
भीतर बाहर शैतानों से, करते हो गँठजोरी।।[27]

सरकार चाहे जिस पार्टी की क्यों न हो, जनता की समस्यायें वैसे ही मुँह बाये खड़ी है। उनका भला करनेवाला कोई नहीं है। केदारनाथ के अनुसार यथार्थ में सरकार नाम की चीज अखबारों और सूचनाओं में दिखाई-सुनाई पड़ती है। 'सरकार' नामक गीत में इस लोकजीवन के यथार्थ को देखा जा सकता है -

सरकार है अखबार में,
रेडियो के सूचना-संचार में,
अधिनियम
आदेश
अध्यादेश की भरमार में,
अफसरी आतंक की
तलवार में।[28]

सरकार अफसरों के माध्यम से सारे कामों को अंजाम देती है। वह अफसर के माध्यम से अपना भला सोचती है तो अफसर सरकार के माध्यम से अपना भला सोचता है लेकिन जनता को यह विदित हो जाता है कि सरकार और अफसर के जरिए उसका कोई भला होने वाला नहीं है। यही आज के जीवन का यथार्थ है। सन् 1976 में लिखा गया 'सरकार, अफसर और जनता' नामक गीत आज भी प्रासंगिक है। ऐसी स्थिति में जनता की हालत दर्शनीय है -

जनता का कटता चला जा रहा है गला
सरकार और अफसर की
        संगठित लड़ाई में,
जनतंत्र के ऊपर
        राजतंत्र की चढ़ाई में।[29]

थाने के पुलिस अपनी लालची मनोवृत्ति के कारण आज लोगों का विश्वास खो चुके हैं क्योंकि वे अन्याय और अत्याचार को खत्म करने के बजाय स्वयं उसके पोषक बन जाते हैं। पुलिस के हथकंडे और थाने में चल रहे संत्रास को केदारनाथ के गीतों में बखूबी देखा जा सकता है। 'गाँव में थाने' नामक गीत में पुलिसिया जीवन के यथार्थ को चित्रित किया गया है-

गाँव में थाने
        और थानों में सिपाही हैं
थानों को जियाये
        राजतंत्र से सिपाही हैं
जनता को मिटाये
मार-तंत्र से सिपाही हैं।[30]

'भैरव का भैसा' नामक गीत में केदारनाथ ने कलियुगी थाने और पुलिस का भंडाफोड़ करते हुए पुलिस को भैंसा कहकर संबोधित किया है। कुछ भी अन्याय करके लोग पुलिस को दे दिवा कर बच जाते हैं। इस यथार्थ को प्रस्तुत गीत में देखा जा सकता है -

चोरी करो चढ़ाओ पैसा
पूजो तुम भैरव का भैंसा
भैंसा है थाने का ऐसा
कोई देखा-सुना न जैसा
डाका डालो, कत्ल कराओ
काटो खेत, अनाज चुराओ

थाने में जाओ झुक जाओ

भैंसे को छूकर बच जाओ।[31]

केदारनाथ अग्रवाल बताना चाहते हैं कि रिश्वत हमारे देश की सबसे बड़ी और पुरानी समस्या है। बिना रिश्वत दिये तो कोई बात तक नहीं करता। सरकारी दफ्तरों, थाने या किसी भी कार्यालय में बिना रिश्वत का एक पत्ता भी नहीं खड़कता। रिश्वत के बल पर गलत को सही और सही को गलत करते देर नहीं लगती। केदारनाथ अग्रवाल ने तत्कालीन रिश्वत की समस्या का यथार्थ-चित्रण अपने गीतों में किया है, लेकिन यह समस्या वर्तमान समय की भी एक भयावह समस्या बनी हुई है। सरकार द्वारा विभिन्न कदम उठाये जा रहे हैं इसके समाधान के लिए, लेकिन यह रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। रिश्वतखोर जेल तो भेजे जा रहे हैं पर बेहया रिश्वतखोर रिश्वत लेने कि मानसिकता बदल ही नहीं पा रहे। 'रिश्वत' नामक गीत में इसके व्यापकता की चर्चा करते हुए लिखा है -

क्या आगे, क्या पीछे

क्या ऊपर, क्या नीचे

सभी जगह है किस्मत

राज प्रमुख है रिश्वत।[32]

गीतकार केदारनाथ ने घूस को बेलगाम घोड़ा कहा है, जो सबको रौंदता हुआ दौड़ता चला जाता है। सन् 1969 में लिखा गया 'घूस का घोड़ा' नामक गीत आज भी प्रासंगिक है। यह गीत वर्तमान जीवन के यथार्थ को बेपर्दा कर देता है -

बे लगाम दौड़ता है

घूस का घोड़ा

रौंदने से इसने किसी को नहीं छोड़ा

बेकार हो गया है कानून का कोड़ा

रोक नहीं सकता इसे कोई रोड़ा

दम इसने कब तोड़ा।[33]

महंगाई भी आज के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। आकाश छूती कीमतें आज लोगों को पाताल पहुँचाने का काम कर रहीं है। कृषक-मजदूरों की तो बात दूर वेतनभोगी भी एक सप्ताह तक ही उस मुट्ठी भर वेतन को देख पाते हैं। आठवें दिन से सबकुछ सूना-सा लगने लगता है। 'छोटी सी तनख्वाह हमारी' नामक गीत में महंगाई के यथार्थ को गीतकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

छोटी-सी तनख्वाह हमारी,
मुट्ठी-भर की जैसे चिड़िया,
उड़ जाती है फुर से जल्दी,
वह इतना डरती है हमसे
और हमारे खाली घर से
नहीं सात दिन भी टिकती है।
आठवें दिन से तीस दिनों तक
नहीं सुहाता हमको जीना,
घर-बाहर लगता है सूना।[34]

'कीमतें' नामक गीत भी महंगाई को ही चित्रित करता है -

और से
और का कुल बढ़ा
कीमतों का दल-बादल
पहाड़ पर चढ़ा।[35]

ग्रामीण जीवन का यथार्थ हृदय विदारक है। गाँवों में रहने वाले कुछ लोग अभी भी सारी सुविधाएँ नहीं प्राप्त कर पाये हैं। गाँवों की उन्नति के बगैर देश की उन्नति संभव नहीं। गाँव में रहने वाले लोगों का जीवन बड़ा ही संघर्ष से भरा हुआ होता है। उनकी जिन्दगी में गुलाब की महक नहीं, घूर और गोबर की गंध होती है। 'गाँव में' नामक गीत की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जो इस बात को चरितार्थ करती हैं –

सड़े घूर की, गोबर की

बदबू से दबकर,

महक जिन्दगी के गुलाब की

मर जाती है।[36]

गाँव का विकास ही देश के विकास का सूचक होगा। अतः गाँव और गाँव के लोगों को दबाकर पैरों तले रौंदकर कोई देश आगे नहीं बढ़ सकता। केदारनाथ अग्रवाल पूरे जोर से इस मुद्दे को उठाते हैं और 'गाँव' नामक गीत में पूरे आत्मविश्वास के साथ इस तथ्य को रखते हैं -

गाँव भी वह गाँव क्या जो धूल में सोया हुआ हो
शाप में संताप में दुर्भाग्य में खोया हुआ हो
नाश में नैराश्य में शोकाश्रु से बोया हुआ हो
देश ऐसे गाँव के अस्तित्व से उन्नत न होगा।[37]

आज के लोग दूसरों की गलतियों को ढूढ़ने में ही ज्यादा प्रवृत्त दिखाई देते हैं। अपने भीतर झाँकने के बजाय दूसरों में दिलचस्पी ज्यादा दिखाते हैं। अपने हजार गलतियों को अनदेखी करके दूसरों की एक गलती को ही मुद्दा बना लेते हैं। ऐसे तथाकथित लोग अपने को सभ्य और भद्र बताने की कोशिश करते हैं। इस यथार्थ को केदारनाथ ने अपनें गीत 'सीख' में उजागर किया है। इस माध्यम से उन्होंने उन लोगों को आगाह किया है जो छिद्रान्वेशी प्रकृति के हैं-

आँख में तिनका है सबके।

बुरा मत कुछ इसका मानो।

आँख पहिले अपनी देखों।

आँख औरों पर तब तानो।[38]

हमारे देश में अन्न की भरपूर उत्पादन के बावजूद जनता की भूख मिट नहीं पा रही है। कहीं न कहीं हमारी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में ही ऐसी कमी है जिसके वजह से जनता भूख से मरने के लिए मजबूर है। 'देवतों की नींद' नामक गीत में इस जीवन-यथार्थ को व्यक्त किया गया है-

धूप चाँदी सी चमकती ही रही
धूल मोती सी दमकती ही रही
श्वेत गंगा-धार बहती ही रही
अन्न धरती भी उगलती ही रही
किन्तु जनता की अमानिशि ही रही
भूख से मरती तड़पती ही रही
मृत्यु की करवाल चलती ही रही
देवतों की फौज सोती ही रही।[39]

'घँटा' नामक गीत में केदारनाथ ने जनता की यथार्थ स्थिति को सिंहासन से नीचे उतरकर देखने के लिए नेताओं से आह्वान किया है-

नीचे नीचे नीचे उतरो
सिंहासन से नीचे उतरो
देखो नंगी भूखी रोती
व्याकुल मरती खपतीं जनता।[40]

आम आदमी जब टिकट पाकर चुनाव लड़ने चलता है तब तक वह अपनी जमीन से ही जुड़ा रहता है लेकिन जैसे ही वह जीत जाता है ऐसा लगता है जैसे उसकी आदमीयत ही मर चुकी है। वह हवाई उड़ाने ज्यादा भरने लगता है। उसकी पाँव जमीन पर नहीं पड़ती। 'चुनाव के पहले' नामक गीत में इस राजनीतिक यथार्थ और व्यक्ति की मानसिकता को दिखाया गया है। गीतकार ने ऐसे लोगों को चौपाया कहकर सम्बोधित किया है-

चुनाव के पहले
        आम आदमी रहा वह
पाँव-पाँव चलने का आदी रहा वह
x   x   x
चुनाव के बाद
जीत की कुरसी हुआ वह

आम आदमी के बजाय चौपाया हुआ वह।[41]

गाँव में रहनेवाले कुछ मजदूरों में ऐसी बुरी लत होती है जो उनकी बरबादी का कारण होता है। वह बुरी लत है शराब पीने की। हमारे देश में बहुत ऐसे लोग हैं जो मजदूरी करके प्राप्त मजूरी के पैसे को शराब पीने में ही खर्च कर देते हैं, उन्हें उस समय अपने बीबी बच्चे का तनिक भी ख्याल नहीं रहता। बीबी-बच्चे रातभर उसे देखकर परेशान रहते हैं। चैतू ऐसा ही एक प्रतिनिधि पात्र है जो 'चैतू' नामक गीत में चित्रित है -

बीवी, बच्चे, घर की माया
सब की दुनियादारी तज के,
सूरज डूबे, छुट्टी पा के,
जिन्दा रहने से उकता के,
चैतू ने बेहद ठर्रा पी
बेहोशी में मर के सोया
खून पसीने से जो पाया
वह कड़वे पानी में खोया।[42]

यहाँ केदारनाथ की संवेदना चैतू के प्रति नहीं बल्कि उसके बीवी, बच्चे के प्रति है जो चैतू की करतूतों से परेशान हैं। संसार में अपनी अस्मिता की तलाश के लिए खुली सत्यदर्शी आँखों की आवश्यकता होती है, बन्द आँखों की नहीं। इस यथार्थ को केदारनाथ ने 'खोये आदमी' नामक गीत में उजागर किया है -

खोये आदमी
सोये संसार में
अस्मिता खोजते हैं
प्रकाश की
सत्यदर्शी आँखे
नहीं खोलते हैं।[43]

आज की परिस्थिति में यह कहना बड़ा ही मुश्किल है कि वास्तव में हम आदमी किसे कहें। आदमी तो देखने में सभी लगते हैं, पर क्या वे वास्तव में आदमी कहलाने की योग्यता रखते हैं। क्या उनमें आदमीयत है? आदमी ही आदमी को नष्ट करने पर तुला हुआ है और अपने ही मद में भुला हुआ है। 'आदमी जेब काट रहा है' नामक गीत में इसी यथार्थ का खुलासा हुआ है-

आदमी जेब काट रहा है-
जिसकी जेब कट गई है
वह भी आदमी है
जिसने जेब काटी है
वह भी आदमी है
समझ में नहीं आता
आदमी कौन है?[44]

किसान और मजदूर का जीवन अभावग्रस्त ही रहता है। अभावों को झेलते हुए वह धनिकों के साथ अपनी तुलना कर जीवन की यथार्थता का अनुभव करता है। यह व्यवधान उसे काफी परेशान करती हैं, लेकिन उसके जीवन की कहानी तो सबकी जानी पहचानी है। 'उनको महल-मकानी' की पंक्तियों में देखा जा सकता है-

उनको
महल-मकानी
हमको छप्पर-छानी
उनको
दाम-दुकानी
हमको कौड़ी कानी
सच है
यही कहानी
सबकी जानी-मानी।[45]

‘घर के फूल’ नामक गीत में केदारनाथ अग्रवाल ने देशी लोगों की मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। हमारे यहाँ कें लोगों का रूझान विदेशों और विदेशी वस्तुओं के प्रति ज्यादा है-

घर के फूल
घर में नहीं महकते
घर के बाहर
विदेश में महकते हैं।[46]

ऐसा ही एक और गीत है ‘सही को गलत’ इसमें भी उसी यथार्थ का चित्रण हुआ है जहाँ लोग उलटफेर का खेल खेलते हैं और सही को गलत तथा गलत को सही करते रहते हैं-

सही को गलत
गलत को सही
करते चले जाते हैं लोग
देश को विदेश
विदेश को देश
करते चले जाते हैं लोग।[47]

आज के लोगों में दिखावापन ज्यादा है। उनकी आँखों से निकलनेवाले आँसू घड़ियाली होते हैं। उनका अंतर्मन कभी भी दूसरे के दुख से द्रवित नहीं होता। ‘मरे का मातम’ में इस जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति बखूबी हुई है-

मरे का मातम
शैतान भी मनाता है,
शमशान तक जाता
और आँसू बहाता है,
किन्तु,
दूसरों को मारने से
बाज नहीं आता है।[48]

गरीबों को विरासत में गरीबी ही मिलती है, वह भी घोर गरीबी। ऐसे लोगों के लिए देश की आजादी का कोई मतलब ही नहीं होता। जिसे अपने पेट के लाले पड़े हों, वह और क्या सोच सकता है। 'पैतृक सम्पत्ति' में केदारनाथ ने इसी जीवन-यथार्थ को उजागर किया है-

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा, टूटी खटिया,
कुछ हाथ भूमि - वह भी परती
x x x
बस यही नहीं, जो भूख मिली
सौगुनी बाप से अधिक मिली।
अब पेट खलाये फिरता है।
चौड़ा मुँह बाये फिरता है।
वह क्या जाने आजादी क्या?
आजाद देश की बातें क्या??[49]

ग्रामीण लोग अभाव भरी जिन्दगी बिताते पर मजबूर होते हैं। घर-परिवार चलाने या कृषि-कर्म करने के लिए उन्हें कर्ज भी लेना पड़ता है। महाजन कर्ज देते समय चिकनी-चुपड़ी बातें करके कर्ज का बोझ लाद देता है। बाद में कर्ज चुकता न कर पाने पर वही कर्ज लेनेवालों पर जुल्म ढाता है। इसी यथार्थ को 'गाँव का महाजन' नामक गीत में देखा जा सकता है-

वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,
गौरव के गोबर गनेश-सा मारे आसन,
नारिकेल - से सिर पर बाँधे धर्म-मुरैठा,
ग्राम-बधूटी की गौरी-गोदी पर बैठा,
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले,
जीभ निकाले, बात बनाता करूणा घोले,

व्याज-स्तुति से बाँट रहा है रूपया-पैसा
सदियों पहले से होता आया है ऐसा।[50]

ग) शोषण एवं उत्पीड़न का विरोध

प्रत्येक युग में यथार्थ की दो शक्तियों का द्वन्द्व चलता रहता है- मरणोन्मुख पुरानी शक्तियों और नवीन जीवन्त शक्तियों का। सामाजिक स्तर पर पुरानी शक्तियों में शोषक लोग होते हैं और नवीन शक्तियों में शोषित गरीब किसान मजदूर होते हैं। नवीन जीवन्त शक्तियाँ पुरानी शक्तियों को नष्ट कर नवीन जन-मंगलशाली समाज की स्थापना की कोशिश करती हैं। ऊपरी सतह पर तो पुरानी शक्तियों की विकृतियाँ उतरायी रहती हैं, लेकिन उसके नीचे नवीन शक्तियाँ धीरे-धीरे उन्हें काटती रहती हैं। ये शक्तियाँ व्यक्ति की नहीं, समाज की होती हैं, उनमें पीड़ा और अभाव के साथ ही जिन्दगी का संघर्ष, अडिग विश्वास और भविष्य की सुन्दर आकांक्षा होती है। प्रगतिवादी रचनाकार जन-जीवन मे सौन्दर्य खोजता है। ''वह सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा और आस्था को बल मिले।''[51]

केदारनाथ प्रगतिवादी साहित्य-धारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी संवेदना शोषितों और पीड़ितों के प्रति ज्यादा थी। दूसरी तरफ शोषकों के वे विरोधी थे। इनका मानना हैं- ''ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो समता, न्यायप्रियता और समान अवसर देने की क्षमता रखती हो और आदमी को इसी संसार में द्वंद्व से मुक्त करने के लिए प्रतिबद्ध हो। तभी सच्चा लोकतंत्र होगा, तभी आदमी आदमी को प्यार करेगा, नर-नारी के सम्बन्ध प्रगाढ़ प्रेम से अटूट बनेंगे और समाज तथा देश का कल्याण होगा। न कोई किसी का शोषण करेगा, न कोई किसी का क्रीतदास होगा। लोग जियेंगे और दूसरों को जीने देंगे।''[52]

अशोक त्रिपाठी की दृष्टि में ''जो रचना हमें कष्ट के क्षणों में, निराशा और हताशा के क्षणों में सम्बल प्रदान करे, जिसकी पंक्तियाँ हमारे ओठ गुनगुना उठें, वही

रचना श्रेष्ठ हैं, मूल्यवान है और ऐसी रचना वही होती है जिसका केन्द्र मनुष्य होता है। मनुष्य-जो हल चलाता है, घन चलाता है, रिक्शा खींचता है, इक्का हाँकता है, मशीन चलाता है, ट्रक, बस, ट्रेन चलाता है, ठेला खींचता है, मजूरी करता है, ऑफिस में कलम घिसता है, श्यामपट्ट पर चाक घिसता है, सीमा पर अपना खून बहाता है, दूसरों की भलाई के लिए कुर्बानी देता है, दूसरों की कमाई पर ऐश नहीं करता। श्रेष्ठ रचना वही होती है, जो शोषण की कलई खोलती है, शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है, हमें अपनी पहचान कराती है।[53]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में उपरोक्त सारी विशेषताएँ हमें देखने को मिलती हैं। खास करके उन्होंने ईमानदारी के साथ मेहनत करने वालों को तवज्जो दिया है। वही लोग सही मायने में मानव कहलाने के अधिकारी हैं। अतः जहाँ वे कहीं अन्याय या शोषण का दमन-चक्र देखते हैं, वहीं उसे समूल नष्ट करने के लिए या तो सीधे उसका विरोध करते हैं या उस पर व्यंग्यवाण चलाते हैं। उनके द्वारा रचित गुलमेंहदी, खुली आँखें खुले डैने, कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पुष्पदीप, जो शिलाएँ तोड़ते हैं, फूल नहीं रंग बोलते हैं, बोले-बोल अबोल, कहें केदार खरी खरी, 'वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी' आदि के गीतों में अन्याय और शोषण का विरोध प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

केदारनाथ अग्रवाल गीतों में जीवन विरोधी ताकतों से लोहा लेने का आह्वान करते हैं। ये जीवन विरोधी ताकतें ही राह के रोड़े हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के राह रोके खड़े हैं। 'पत्थर के सिर पर दे मारो अपना लोहा' में शोषण का विरोध दिखाई पड़ता है-

जो केवल जीवन विरोघ है-
मार्ग रोक है
उसपर अपना लोहा मारो
बारम्बार तड़ातड़ मारों,
जिससे वह जल्दी से टूटे।[54]

शोषण का विरोध करते हुए केदारनाथ ने सर्वहाराओं से इस दानव को नष्ट करने के लिए प्रेरित किया है। शोषण रूपी दानव धरती पर अंधकार ही फैलाता है,

जीवन को नरक बना देता है। 'किसान से' नामक गीत में यह भाव पूर्णतः अभिव्यक्त हुआ है-

शोषण के प्रत्येक प्रथा का,
        अँधियर गहन मिटाये जा।
नये जनम का नया उजाला,
        धरती पर बरसाये जा।।[55]

संवेदनशील रचनाकार की संवेदना सदैव शोषित और पीड़ित लोगों के प्रति होती है। वह उन लोगों का शुभचिंतक और सच्चा साथी होता है। शोषण की प्रवृत्ति से वह बौखला जाता है और उसका विरोध करने लगता है। ऐसे ही सहानुभूतिशील रचनाकार हैं केदारनाथ अग्रवाल। उनका मानना है कि जो अनेक कष्टों को झेलकर खड़ा हुआ है, जीवन की धूल चाटकर बड़ा हुआ है, क्या वह कभी मर सकता है? इसी विचारधारा को उन्होंने अपने गीत 'वह जन मारे नहीं मरेगा' में प्रतिफलित किया है -

जो जीवन की आग जलाकर आग बना है,
फौलादी पंजे फैलाये नाग बना है,
जिसने शोषण को तोड़ा, शासन को मोड़ा है,
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा,
        नहीं मरेगा।।[56]

हमारे देश के नेता योजनाओं के पैसे हड़प कर कागजी कामकाज का रिपोर्ट तैयार कर जनता का शोषण करते हैं। जनता की वोट लकेर सत्तासीन नेताओं की यही वास्तविकता है। 'दाल-भात खाता है कौआ' में गीतकार ने इन धनखौआ शोषकों का जिक्र करके परोक्ष रूप से विरोघ तो करता ही है, उनकी कलई भी खोलकर रख देता है-

'दाल-भात खाता है कौआ
मनुष्य को खाता है हौआ

नकटा है नेता धनखौआ
न कटा हो मानो कनकौआ।'[57]

मनुष्य से कहीं बेहतर तो वे कौवे हैं जो शोषण का शिकार तो नहीं होते, कम से कम उनको खाना तो मिल जाता है। चारो ओर शोषण का सामाज्य देखकर रचनाकार उद्विग्न हो जाता है। जहाँ भी उसकी दृष्टि जाती है वहीं उसे शोषक दिखाई पड़ते हैं। 'सब कुछ देखा' गीत में उसने इसी को अभिव्यक्त किया है-

सब कुछ देखा,
फिर-फिर देखा,
जो देखा वह देखा देखा।
देखे में कुछ नया न देखा,
हेर-फेर का प्रचलन देखा,
दूषण देखा
शोषण का अपलेपन
देखा।[58]

जो बलवान होते हैं वे शक्तिहीनों को सदैव दबाते, सताते और शोषण करते रहते हैं। उनसे अपना स्वार्थ-सिद्ध करते रहते हैं। ऐसे शोषकों के प्रति गीतकार के अन्दर आक्रोश की भावना का जन्म लेना अस्वाभाविक नहीं है।

आदिकाल से नारी शोषित और पीड़ित रही है। कभी अपनी सास से, ननद से, पति से या फिर समाज से शोषित होती रही है। उसके दुःख की गाथा अन्तहीन है। ऐसी ही एक नारी जो अपने पति की दृष्टि मे हवस की भूख मिटानेवाली और दर्जनों बच्चे पैदा करनेवाली मशीन सदृश है, का चित्रण 'पति की टेक' नामक गीत में किया गया है। वह अपने पति द्वारा ही शोषित है, जो अपने पति से सिर्फ खाना और कपड़ा पा लेती है। उसका पति कहता है-

खाना ले ले, कपड़ा ले ले,
आने जाने दे यह साँसे,
पूरी कर दे पापी इच्छा

दर्जन बच्चे पैदा कर तू।[59]

स्टेशनों पर बोझ ढोने वाला कुली राही की यात्रा को हलका करता हुआ पसीने से तर, कड़ी धूप में लम्बी दूरी तय करता है, पर वह मेहनत का मजूरी कम पाता है। वह अमीरों के शोषण का बलि होता है। केदारनाथ ने अपनी संवेदना ऐसे ही कामकाजी लोगों के प्रति व्यक्त करते हुए 'कुली' नामक गीत में लिखा है-

श्रमजल में जो डूबा डूबा रहता है
आँखें खोले बेहद अंधा रहता है
मुँह खोले भी बेहद गूँगा रहता है
वह राही की यात्रा हलकी करता है
वह खोटी दुनिया में बरबस बिकता है
कम दामों में-कम आनों में पिसता है
जब तक जीता है तिल तिल कर घिसता है
शोषक के पैरों के नीचे मिटता है।[60]

शोषण हमारे देश और समाज का बहुत बड़ा शत्रु है। न जाने कितने घर इससे तबाह हो जाते हैं। केदारनाथ ने इसे यथार्थ को अपने गीतों में उजागर कर लोगों की मानसिकता बदलना चाहते हैं तथा शोषकों के प्रति आक्रोश का भाव भी पैदा करते हैं। ग्रामीण लोग कर्ज के बोझ से लदे रहते हैं और उनका कर्ज दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही जाता है। इस नासूर को जबतक समाज से खत्म नहीं किया जाता, तबतक देश का विकास संभव नहीं। कर्ज में लिपटे ग्रामीणों की दशा कुछ इस प्रकार है -

सूड़ लपेटे हैं कर्जे की ग्रामींणों को,
मुक्ति अभी तक नहीं मिली है इन दीनों को,
इन दीनों के ऋण का रोकड़-काण्ड बड़ा है,
अब भी किन्तु अछूता शोषण-काण्ड पड़ा है।[61]

हमारे देश के शासकों के हाथों में सत्ता की बागडोर जबसे आयी है तभी से एक नई शोषण नीति का जन्म हुआ है। खुशियाँ जनता के चेहरे से इसतरह गायब हो

गई जैसे गूलर का फूल। देश तो बरबाद हुआ ही। 'हर्ष न आया' नामक गीत में नेता रूपी शोषक की धज्जियाँ उड़ाते हुए उनके प्रति आक्रोश करते हुए गीतकार लिखता है-

हर्ष न आया,
आया तो बस आया,
विषम विषाद
जब से तुम-भुजंग ने शासन पाया
देश हुआ बरबाद।[62]

कथनी और करनी में अंतर का पूर्ण चरितार्थ हुआ है 'लीला के बाद' नामक गीत में। अभिनेता का स्वभाव अभिनय के वजह से मूल पात्र के स्वभाव-सा नहीं हो जाता, क्योंकि वास्तव में रामलीला के राम भी लीला के बाद रावण का रोल अदा करते दिखाई पड़ते हैं। यही लोग समाज में शोषण करते हैं और शोषण को बढ़ावा भी देते हैं-

लीला के बाद
रामलीला के राम
जंगली जनतंत्र में
रावण का रोल अदा करते हैं
दूसरों की सम्पदा हरते हैं
न नय से डरते,
न अनय से बचते हैं
जहाँ देखों वहाँ
एक नई लंका रचते हैं।[63]

व्यवस्था परिवर्तन, शोषण मुक्त समाज की स्थापना और समता के लिए शोषकों का समूल नाश जरूरी है। शोषकों की शोषण-नीति को खत्म करने के लिए सर्वहाराओं में एकता का भाव होना जरूरी है। भुक्तभोगियों को एकजूट होकर ही अपने लिए शोषणमुक्त राह को प्रशस्त बनाना होगा। अतः केदारनाथ अपने गीतों के

माध्यम से शोषकों की मानसिकता तथा उनके शोषण-चक्र से लोगों को अवगत कर देना चाहते हैं ताकि लोग उनका विरोध कर सकें क्योंकि ये शोषक धन के आराधक और साधक हैं, जो लोगों का शोषण कर अपनी गाँठ पूरी करते हैं। इनका समूल नाश जरूरी है -

ठाट-बाट के सुविधा-भोगी
ये साधक-आराधक धन के
निहित स्वार्थ में लीन निरंतर
बने हुए हैं बाधक जन के
केन्द्र-विन्दु पर बैठे-ठहरे
चक्र चलाते हैं शोषण के।[64]

गीतकार लोगों से वैसा गीत गाने का आह्वान करता है जिसे सर्वहारा गाते हैं। जो अपनी मेहनत से घर चलाते हैं और शोषकों के राज सिंहासन को भी हिला देते हैं। 'गाओ साथी' में ऐसा ही शोषण विरोधी गीत गाया गया है-

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं नंगे निर्धन,
पेट खलाये, रीढ़ झुकाये, जो गाते हैं टूटे निर्धन,
बोझा ढोते, राहें टोते, जो गाते हैं रोते निर्धन,
और डिगाते हैं शोषक का दिन-दिन दूना
जो सिंहासन।[65]

शर्म और हया को ताक पर रखकर शोषण करने वाले लोग आँखे मूँदकर अपना काम करते हैं। उनके इस काम का परिणाम दूसरों के लिए कितना घातक सिद्ध हो सकता है इसकी तनिक भी फिक्र उनको नहीं होती। कोई कितनी भी उनकी आलोचना क्यों न करें, इसका कोई असर उनपर नहीं पड़ता। आँख मूँदकर शोषण का राज चलाने वाले को केदारनाथ ने अपने गीतों में खूब लताड़ा है। ऐसे शोषकों को वह बार-बार धिक्कारता है-

आँख मूँद जो राज चलावै

अंधरसट्ट जो काज चलावै
कहे-सुने पर बाज न आवै
सब का चूसै-लाज न लावै
ऐसे अँधरा को धिक्कार।
राम राम है बारम्बार।।[66]

प्रगतिवादी रचनाकर अपने समाज की विकृतियों से परेशान होकर स्वयं संकल्पबद्ध होकर शोषकों का समूल नाश कर देना चाहता है। वह शोषण के साम्राज्य की नींव को डिगा देना चाहता है। गीतकार केदारनाथ ने शोषकों का समूल नाश करके जनवादी सरकार गठन करने के लिए जो आह्वान किया है उसे 'शपथ' नामक गीत में देखा जा सकता है-

नयी शपथ यह प्रथम करेंगे,
शोषक का साम्राज्य हरेंगे,
जनवादी सरकार करेंगे,
निधड़क हम निर्माण करेंगे।[67]

गीतकार को यह पूरा विश्वास है कि चाहे शोषण का दमनचक्र कितना भी क्यों न चले, शोषित परेशान क्यों न हो, अंत समय में जीत सच्चाई और अच्छाई की ही होती है। जनता का शोषण कर उन्हें मिटाया नहीं जा सकता, मिटेंगे तो सिर्फ शासक और शोषक। इसीलिए तो गीतकार ने 'जनता' नामक गीत में लिखा है-

सब देशों में सब राष्ट्रों में
शासक ही शासक मरते हैं
शोषक ही शोषक मरते हैं
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता, मरती है।[68]

घ) न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान

प्रगतिवादी रचनाकार अपने समाज और देश में लोगों के ऊपर होने वाले अन्याय को मूकदर्शक बनकर देख नहीं सकता। वह उन परिस्थितयों को बदलकर साम्यवाद की प्रतिष्ठा करना चाहता है। सर्वहारा को उसके यथार्थ से परिचित करना चाहता है और इस व्यवस्था को बदलने का हर संभव प्रयास भी अपनी रचनाओं के माध्यम से करता है। वह शोषित पीड़ित लोगों का हितैषी बनकर न्याय और अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करने की भी बात करता है। बिना संघर्ष के न्याय की प्राप्ति संभव नहीं।

केदारनाथ प्रगतिवादी होने के कारण अपने गीतों में न्याय और अधिकार की बात कहते हैं। अन्याय का सहन करना भी उनकी दृष्टि में घोर अन्याय है। व्यवस्था-परिवर्तन के लिए संघर्ष अवश्यमभावी है। अशोक त्रिपाठी 'कहें केदार खरी खरी' के 'कैफियत' में लिखते हैं- ''जिस शोषणवादी व्यवस्था के तहत मनुष्य सन् 46 में बेहयायी के साथ जी रहा था, उसी व्यवस्था में आज भी जीवन को उसी बेहयायी के साथ जी रहा है।''[69] आजादी के इतने साल बाद भी सामान्य जनता की स्थिति सुधरी नहीं और ज्यादा उघड़ी है। आगे वे और लिखते हैं ''उनके गीत देश के मेहनत मजूरी करने वाले लोगों की आत्मा की पुकार है, उनकी झुंझलाहट है, उनकी तिलमिलाहट है, उनकी एका के बल का तूर्यनाद हैं, स्वार्थी, शोषक सत्ता लोलुपों को उनकी फटकार और ललकार है, उनकी पीर हैं, देश सी दरकी हुई छाती की उनके हृदय में खिंची तस्वीर है।[70]

केदारनाथ अग्रवाल आदमी की महत्ता के विषय में 'खुली आँखें खुले डैनें' की भूमिका में लिखते हैं - ''मैं आदमी की महत्ता इसमें समझता हूँ कि वह अपनी चेतना को मानव - बोधी बनाता चले, लोक में लीन रहे, स्वयं जग और जीवन से, प्रकृति और परिवेश से, लोक-व्यवहार से द्वन्द और संघर्ष करता रहे, और सत्य से सम्बद्ध होते-होते, भ्रम और मिथ्या का परित्याग करता रहे।''[71]

निश्चय ही वे चाहते थे कि न्याय के लिए संघर्ष जरूरी है। दया की भीख माँगने के बजाय अपने हक को प्राप्त करने के लिए अन्यायी के विरूद्ध जंग छेड़ना

जरूरी है। अशोक त्रिपाठी जो शिलाएँ तोड़ते हैं' के 'आलोचक पाठकों से' शीर्षक भूमिका में केदारनाथ की रचनाओं के विषय में लिखते हैं ''पूरी स्वस्थ सांस्कृतिक विरासत तथा स्थानीयता के इन्द्रधनुषी रंगों से रची-बसी, आदमी के संघर्षमय जीवन का आकुल संगीत हैं, जो युगीन दबावों और उसके अंतर्विरोधों को पूरी विश्वसनीयता के साथ उजागर करती है तथा शोषण की कलई खोलकर उसके विरूद्ध संघर्ष करने को प्रेरित करती है।''[72]

केदारनाथ अग्रवाल की कृतियों का अध्ययन करने के पश्चात, उनके कुछ गीतों में हमें न्याय और अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान मिलता है, जो उनके 'पंख और पतवार 'गुलमेंहदी', 'खुली आँखे खुले डैने', पुष्पदीप, 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं', 'वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', 'कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह' और 'कहें केदार खरी खरी' नामक काव्य-संग्रह में संग्रहित हैं।'

'खुली आँखे खुले डैने' नामक संग्रह में एक गीत है 'मालवा में गीत मेरे गूँज जायें' इस गीत में उन्होंने अपने गीत के माध्यम से मालवा में क्रांति की ज्वाला जलाना चाहा है। यह ज्वाला लोगों को अपने अधिकार दिलाने के लिए जलाने की बात कहते हैं। गीत की पंक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है-

मालवा में गीत मेरे गूँज जाये,
मैं यहाँ पर गीत गाऊँ,
वह वहाँ पर घनघनायें,
मालवा में आग का डंका बजाये।[73]

शोषित पीड़ित और वे लोग-जिनको शोषण का जरिया बनाया जाता है, उन्हें अपने अन्दर विरोध का भाव लाना जरूरी है, अन्यथा वे वैसे ही शोषण की चक्की में पिसे जाते रहेंगे, ऐसा केदारनाथ का मानना है। इसलिए उन्होंने 'मैंने बागी घोड़ा देखा' में लोगों को बागी घोड़े की तरह तेज-तर्रार होने का आह्वान किया है और घोड़े की हरकत को गीत में पिरोया है-

''उछल-कूद करता दहलाता
जोरदार हड़कम्प मचाता

गुस्से की बिजली चमकाता

लप-लप करती देह घुमाता

पट-पट अगली टाँग पटकता''[74]

पशु भी पशुवत जीना नहीं चाहता, फिर आदमी क्यों पशुवत जीवन जीये। उसे अपने अधिकार के लिए लड़ना होगा और प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना होगा।

इंसानों के लिए जीना ही इन्सानों का काम है। उसे परिस्थितियों से लड़कर अपने अनुकूल बनाते हुए असामाजिक तत्वों से टक्कर लेते आगे बढ़ना पड़ेगा। यह बात 'इंकलाबी गीत' में हमें स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। बिना टक्कर लिए या अन्याय से जूझे कोई नव-जीवन की सृष्टि नहीं कर सकता। इसलिए गीतकार कहता है-

जब तक जीना

इंसानों के हित में जीना,

आँधी पीकर आँधी बनना

टक्कर लेते देते चलना,

करना चोटे तड़तड़ करना

पर्वत का सिर मंजन करना,

आशा से नव रचना करना।।[75]

न्याय और अधिवार प्राप्त करने के लिए बन्धन मुक्त होना जरूरी होता है। बंधन से मनुष्य को मुक्ति तभी मिलेगी जब वह संघर्ष या विरोध करेगा। आज की परिस्थिति में किसी का दयावान होना और परदुःखकातर होना नामुमकीन-सा लगता है। अतः ऐसी परिस्थिति में संघर्ष के अलावा कोई रास्ता ही नहीं बचता। 'हथौड़े का गीत' में गीतकार ने हथौड़े की चोट से बंधन की दीवारें तोड़ने की बात कहता है। यह संघर्ष का ही आह्वान है, न्याय और अधिकार पाने के लिए -

मार हथौड़ा

कर कर चोट

लोहू और पसीने से ही

बन्धन की दीवारें तोड़।[76]

शोषित ओर पीड़ित लोग समुद्र की भाँति गंभीर होते हैं। बहुत दुःख और कष्टों को झेलने के बावजूद गंभीरता उनकी टूटनी नहीं। ऐसी मौनता या तो डर से या अपने को अक्षम समझने के वजह से होती होगी। लेकिन गीतकार ने समुद्र उसे कहा है जो अपना धैर्य खो देता है और चोट सहने के वजह से जिसका मौन टूट गया है। 'समुद्र वह है' नामक गीत में गीतकार ने न्याय और अधिकार प्राप्त करने के लिए ऐसे ही समुद्र बनने के लिए जनता से आह्वान किया है-

समुद्र वह है
जिसका धैर्य छूट गया है
दिक्काल में रहे-रहे
समुद्र वह है
जिसका मौन टूट गया है
चोट पर चोट सहे-सहे।[77]

कभी-कभी कोर्ट, कचहरी और मुकदमें से न्याय नहीं मिलता, तो न्याय पाने के लिए अन्य रास्ता अख्तियार करना जरूरी होता है, वह रास्ता है संघर्ष या क्रांति का। ऐसी ही एक भूमिका गीतकार ने तैयार की है 'सूनो खबरिया' नामक गीत में, जहाँ रज्जू नामक एक आदमी मुकदमा लड़कर अपना सर्वस्व खो देता है, फिर भी उसकी जीत नहीं होती है। उसकी हार के बाद लोग संगठित होकर नई जीत की तैयारी करते हैं-

पंचो! सुनो खबरियाः
रज्जू लड़ा मुकदमा
वह हारा जनता सब हारी
हुई जीत की नयी तयारी
बंधी एक में जनता सारी
बजी गाँव में उथल-पुथल की झन-झन-झन-झन थरिया
पंचों! सुनो खबरिया!![78]

समस्याओं से जूझने और उससे निजात पाने के लिए मनोबल का दृढ़ होना बहुत ही जरूरी होता है। जो अडिग रहेगा और जिसका मनोबल दृढ़ होगा उससे समस्यायें टकराकर अपने आप चूर-चूर हो जायेंगी-

यह जो मैं हूँ देवदार की नव तरूणाई
नील रहस्यों तक जाने की दृढ़ ऊँचाई
चट्टानों में जड़े गाड़कर मैंने पाई
जहाँ नहीं जी पाया कोई वहीं जिऊँगा
अडिग रहा हूँ - अडिग रहूँगा - नहीं गिरूँगा
लौट गयी हर आँधी जो आकर टकराई।[79]

'गर्रानाला' नामक गीत में शोषितों को गर्रानाला के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह शोषितों, पीड़ितों का नेता है जो अपने अधिकार के लिए लड़ता है-

काली मिट्टी, काले बादल का बेटा है।
टक्कर पर टक्कर देता, धक्के देता है।।
रोड़ों से वह बेहारे लोहा लेता है।
नंगे, भूखे, काले लोगों का नेता है।।[80]

गुलामी का जीवन सबसे बड़ा अभिशाप है। इस अभिशाप से मुक्ति पाने के लिए क्रांति की चेतना का होना जरूरी है। इसलिए 'करोड़ो का गाना' नामक गीत में न्याय प्राप्ति के लिए संघर्ष का आह्वान किया गया है-

सभी का तन गुलाम है,
सभी का मन गुलाम है,
सभी की मति गुलाम है,
सभी की गति गुलाम है,
गुलामियों के चिन्ह को मिटाये चल,
मिटाये चल, मिटाये चल, मिटाये चल।[81]

'पुकार' नामक गीत में तो प्रत्यक्ष रूप से न्याय और अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान गीतकार ने किया है।

आँधी के झूले पर झूलो
आग बबूला बनकर फूलो।।
कुरबानी करने को झूमो।
लाल सबेरे का मुँह चूमो।।
ऐ इन्सानों, ओस न चाटो।
अपने हाथों पर्वत काटो।।[82]

पर्वत सदृश बाधाओं और समस्याओं को काटकर ही अपने जीवन में कुछ किया जा सकता है। अतः सघर्ष करके ही जीवन को सवारा जा सकता है ऐसा पूर्णविश्वास गीतकार को है।

ङ) समानाधिकार की चेतना

केदारनाथ अग्रवाल की संवेदना शोषित, पीड़ित, असहाय लोगों के प्रति ज्यादा थी। वे जबकि कमासिन गाँव में जन्में थे, वहाँ पर उन्होंने सर्वहाराओं की स्थिति को प्रत्यक्ष आँखों से देखा था। साथ ही जब वे वकीली कर रहे थे तब उन्होंने मुकदमों में न्याय के हथकड़ों को भी प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया था। अतः उनके जीवन पर इसका बहुत ज्यादा असर पड़ा। उन्होंने समाज की इस वर्गभेद की समस्या को मिटाने का एकमात्र उपाय सोचा साम्यवाद की स्थापना, जो कि मार्क्सवाद का सिद्धान्त है। समता से ही शांति स्थापित हो सकती है, यह वे आच्छी तरह जानते थे। अतः अपने गीतों में उन्होंने समान अधिकार की बात कही है। समान अधिकार के लिए उन्होंने अपने गीतों में लोगों की सुषुप्त चेतना को जगाने की कोशिश की है। केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित 'अपूर्वा' पंख और पतवार, 'गुलमेंहदी', खुली आँखे, खुले डैने, कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, जो शिलाएँ तोड़ते हैं, वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, फूल नहीं रंग बोलते हैं, काव्य संग्रहों के गीतों में सम अधिकार की चेतना दिखाई पड़ती है।

'मुट्ठियों में कैद आदमी' गीत में दीवार तोड़ने की बात की गयी है। यह दीवार पूँजीवाद का दीवार है। इस दीवार को तोड़कर ही समता की स्थापना किया

जा सकता है। अतः घूसा बना आदमी समान अधिकार प्राप्त करने के लिए पूँजीवाद के दीवार को ढहाने के लिए तत्पर है-

'मुट्ठियों में कैद आदमी
घूँसा बना है
दीवार तोड़ने के लिए तना है।'[83]

समता सबको समान रूप से जीवित ही रख सकती है। समता में सद्भाव है सद्गुण है। यदि संसार के सभी लोग एक समान हो जायें, न कोई धनी, न कोई गरीब रहे, तो शोषण रूपी दानव का खात्मा अपने आप हो जाएगा। 'दिन-धरती-जनता' नामक गीत में समानाधिकार की चेतना पूर्णतः दिखाई पड़ती है-

जीवित जनता
जोड़ रही है दिन की हड्डी पसली-ममता,
दृढ़ से दृढ़तर बना रहीं है अपनी क्षमता,
न्याय निरूपित
    जिला रही है
    सब की समता।[84]

अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए सर्वहाराओं को संगठित होना अति आवश्यक है। पूँजीपति कभी नहीं चाहते कि ये छोटे लोग एकजुट हों। लेकिन गीतकार आशावादी है कि लोग अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए एक दिन जरूर एकजुट होंगे और देश उनके माफिक बदलेगा। 'रनिया' नामक गीत में उन्होंने लिखा है-

रनिया कहती है जग बदले
जल्दी बदले - जल्दी बदले।
मैं कहता हूँ कभी न बदले
कभी न बदले - कभी न बदले
किन्तु आज मेरे विरोध में
पूरा हिन्दुतान खड़ा है

अब रनिया के दिन आये हैं

जग उसके माफिक बदला है।[85]

यहाँ 'मैं' रनिया का एक देशभाई है जो अमीर है और वह देश का बदलाव नहीं चाहता, लेकिन रनिया की हित में देश के बदलने की पूरी संभावना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है - 'बदला है का अर्थ है बदलनेवाला है, उसके बदलने की जबर्दस्त संभावना है।'[86]

हिम्मत से सिर उठाकर यदि अपने लक्ष्य तक पहुँचने की कोशिश की जाय तो मंजिल दूर नहीं। हिम्मत से ही परवशता को रौंदा जा सकता है क्योंकि परवश होकर जीना बड़ी शर्म की बात है। इस संसार में सबको समान रूप से जीने का अधिकार है। प्रकृति प्रदत्त चीजों पर सबका समान अधिकार है। अतः समाधिकार के लिए तत्पर और सचेत होना ही शांति से जीवन जीना है। 'यही धर्म है' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं जिनमें यही भाव व्यक्त किया गया है -

यही ध्येय है - यही धर्म है!!

मैं हिम्मत से शीश उठाऊँ

परवशता को रौंद भगाऊँ

नत मस्तक जीते रहने में बहुत शर्म है, बहुत शर्म है।[87]

जठराग्नि सभी अग्नियों से दाहक होती है। उसकी ज्वाला कुछ भी कराने को मजबूर करती है। वह शासन को पलटने की भी शक्ति अपने पास रखती है। समान अधिकार की प्राप्ति के लिए तो उसकी और भी आवश्यकता होती है -

'रोटी' नामक गीत में ऐसा ही कुछ भाव व्यक्त है जो समान अधिकार की चेतना जागृत करती है-

जब रोटी पर संकट आया,

तब भूखे ने द्रोह मचाया।

राज पलटकर रोटी लाया

रोटी ने इतिहास बनाया।।[88]

जब चेतना जगती है तब अंतरमन कुछ कर गुजरने की प्रेरणा शरीर को देता है। शरीर में नई स्फूर्ति की अनुभूतिकर मानव अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत और कर्मरत हो जाता है। यही चेतना अन्याय को खत्म कर न्याय और समता की स्थापना करती है।

च) पूँजीवाद का विरोध

ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन के साधनों पर स्वाधिकार हो उसे पूँजीवाद के नाम से जाना जाता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था अपने लाभ के लिए ही चलाया जाता है। इसमें उत्पादन-कर्ता, मील-मालिक, जमींदार, उद्योगपतियों की चलती ज्यादा रहती है। कृषक, मजदूर, उपभोक्ता आदि का शोषण किसी न किसी तरीके से किया जाता है। शोषण की चक्की में पिसती जनता के दिल में रत्तीभर की जगह ऐसे लोगों के लिए नहीं होती। यह पूँजीवादी व्यवस्था समाज में विभाजन लाकर एकता को भंग करने का काम करती है। प्रगतिवादी साहित्य की मूल विशेषता है पूँजीवाद का विरोध। पूँजीवादी व्यवस्था समाज में विकृतियाँ लाकर व्यक्ति को बरबाद करती हैं। 'प्रगतिवादी साहित्य समाज के युगीन संबंधों को छोड़कर हवाई उड़ान भरनेवाले साहित्य को नकली और निर्जीव मानता है। यदि कोई शाश्वत वस्तु है तो यही कि नवीन सामाजिक मानवता सदैव पुरानी और जर्जर दानवी शक्तियों से युद्ध करती है। आज के युग में बुनियादी शक्तियाँ वे हैं जो पूँजीवाद को नष्ट कर समाजवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। इन बुनियादी शक्तियों को पहचानने और उनका समर्थन करनेवाला साहित्य अनिवार्य रूप से किसानों और मजदूरों के संघर्ष को रूपायित कर उसे बल प्रदान करता है तथा पूंजीवादी (और सामन्तवादी) शक्तियों की शोषक, स्वार्थी, स्वकेन्द्रित, जर्जर, विसंगतिमय प्रवृतियों पर चोट करता है।'[89]

केदारनाथ अग्रवाल जबकि प्रगतिवादी गीतकार हैं उनके गीतों में पूंजीवाद का विरोध मिलना स्वाभाविक है। उनके द्वारा रचित 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं, अपूर्वा, पंख और पतवार, गुलमेंहदी, खुली आँखे खुले डैने, कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, वसंत

में प्रसन्न हुई पृथ्वी, आत्मगंध, फूल नहीं रंग बोलते हैं, मार प्यार की थापें, और कहें केदार खरी खरी में संग्रहित गीतों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पूँजीवाद का विरोध मिलता है। केदारनाथ ने लिखा है- ''वकील होने के पहले तक मैंने दुनिया का वह यथार्थ रूप नहीं देखा था, जो मैंने वकील होने का बाद, कचहरी में देखा। मुझे आदमी के इतने विकृत रूप दिखे कि मैं घबड़ा गया और मानव जीवन को ही व्यर्थ समझने लगा। संसार तो मुझे धोखाधड़ी, दाँवपेंच, जाल-फरेब और ठगी का ठौर ही दिखने लगा। उस समय इन सबसे मुक्ति पाने का ध्येय ही मुझे जीवन का ध्येय लगा।''[90] निराला के सम्पर्क में आकर और उनकी काव्य-साधना से प्रेरित होकर तथा डॉ. रामविलास शर्मा की प्रेरणा से मार्क्सवाद का अध्ययन कर केदारनाथ प्रगतिवादी हो गये और अपनी रचनाओं के माध्यम से अन्याय, शोषण, पूँजीवाद आदि का विरोध करने लगे। उनके गीतों में पूँजीवाद के विरोध को प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है -

'सब कुछ देखा' नामक गीत में केदारनाथ ने पूँजीपतियों को तक्षक के रूप में संबोधित किया है, जो फण फैलाये भक्षण करने के लिए तत्पर हैं-

सब कुछ देखा
तुम्हें देखकर
अब अनदेखा देखा
कंचन वर्णी तक्षक देखा
फन फैलाये
भक्षक देखा।[91]

अमीर का बेटा पैदाइशी धनवान होता है मानो वह धरती का कुबेर ही हो। ऐसे स्वरूप वाला जिसके कपड़े तो सुन्दर हैं पर मुँह काला है और जिसके गले में मोतियों की माला पड़ी है। उसके पास संवेदना नहीं है क्योंकि वह तो शोषक है। 'देखो स्वांग अमीरो वाला' की पंक्तियाँ दर्शनीय है-

देखो स्वाँग अमीरों वाला
बेटा भूतल के कुबेर का
पैदाइस से है धन वाला

क्या जाने वह कैसे आता

पैसा खून पसीनेवाला।[92]

खून और पसीना बहाकर कमाने वाला ही पैसा का मोल समझ सकता है, पसीना से कमाया गया धन का महत्व शोषकों को क्या मालूम। उपरोक्त गीत की अंतिम दो पंक्तियों में शोषकों के प्रति विरोध की भावना प्रत्यक्ष है।

मिल मालिक और भूस्वामी जो शोषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं उनके विरूद्ध करोड़ो की संख्या में आम जनता जो शोषित हैं लड़ने के लिए तत्पर हैं। वे अपने ऊपर होनेवाले शोषण का खुलकर विरोध करते हैं और उन्हें मिट्टी में मिला देने के लिए तत्पर हैं। 'काले कर्मठ' नामक गीत की पंक्तियों में वह विरोध हमें देखने को मिलता है-

काले कर्मठ कमठ हाड़ के

महाशक्ति के विप्लवधारी

कई करोड़ो की संख्या में

फौलादी पंजे फैले हैं

मिल मालिक से भूपतियों से

दल के दल दुष्टों दैत्यों से

आर्थिक शोषण के गुण्डों से

फौलादी पंजे लड़ते हैं।[93]

'कमकर' नामक गीत में मजदूरों की स्थिति का जिक्र करके शोषक पूंजीपतियों का पोल खोला गया है। कर्मकारों के मेहनत की पूँजी ही ये लोग गटक जाते हैं और इन काम करनेवालों को मुर्दा बना देते हैं। गीतकार ने उन्हीं शोषकों के शोषण-नीति का विरोध करते हुए लिखा है-

उनके शोषक पूँजीपति हैं,

जो उनकी मेहनत की पूँजी,

अपने बैंकों में धरते हैं

जो उनके पौरूष-प्रतिभा को

जल्दी-जल्दी चर जाते हैं,
मोटे होकर इतराते हैं
और उन्हें मुरदा करते हैं।[94]

पूँजीपतियों की शोषण नीति से उबकर और बौखलाकर प्रगतिवादी रचनाकार उस यथार्थ को व्यक्त करता है जब शोषकों की बरबादी का दिन खुद-ब-खुद नजदीक आ जाता है। प्रगतिवादी गीतकार केदारनाथ ने अपने एक गीत में दिखाया है कि पूँजीपति शोषण करके अपनी गाँठ पूरा तो करते हैं लेकिन उनकी नींव भीतर ही भीतर खिसकती चली जाती है, इससे वे अंजान रहते हैं-

चक्की चलती
दिन की
    हड्‌डी पसली पिसती,
ऋण-ऋण के कण-कण की
उड़ती धूल करकती।
धन की धरती
    शीश महल से
    खड़ी निरखती,
    देख नहीं पाती है अपनी नींव खिसकती।[95]

रनिया सर्वहारा शोषित है। उसका एक देश भाई है जो बहुत अमीर है। वह देश की दशा का सुधार नहीं चाहता, क्योंकि ऐसा होने पर उसका स्वार्थ-सिद्ध नहीं हो पाएगा। इस तरह के पूंजीपतियों की मानसिकता को उजागर करनेवाला गीत है 'रनिया'। गीतकार ने यहाँ पूजीपतियों का पर्दाफाश कर पूँजीवाद का घोर विरोध किया है-

रनिया मेरी देस बहन है,
अति गरीब है- अति गरीब है
मैं, रनिया का देस बन्धु हूँ,
अति अमीर हूँ - अति अमीर हूँ।

रनिया के कर में हँसिया है,
घास काटने में कुशला है।
मेरे हाथों में रूपिया है
मैं सुख सौदागर छलिया हूँ।।[96]

'पूँजीपति और श्रमजीवी' नामक गीत में पूँजीपतियों के कारनामें की कलई खुल जाती है। पूँजीपति अपने बेटे को शोषण करने के तरीके की अच्छी तरह से शिक्षा देता है। दूसरी तरफ श्रमजीवी अपने बेटे को ईमानदारी और मेहनत करना और सहानुभूतिशील होना सीखाता है। इस गीत मे पूँजीवाद का पूरजोर विरोध किया गया है-

पूँजीपति अपने बेटे को
बेहद काला दिल देता है,
गद्दी पर बैठे रहने को,
भारी भरकम तन देता है,
सिरहाने रखकर सोने को
दिन में पैसा ठग लेने को
रोकड़-खाते सब देता है,
गरदन काट कलम देता है,[97]

जनता के प्रतिनिधि नेता भी पूंजीपति ही हैं, क्योंकि वे जनता की वोट से जीतकर पुनः उनका ही शोषण करते हैं। विकास के सारे काम कागजों में सम्पन्न हो जाते हैं और सारे पैसा ठेकेदार, अफसर, इंजीनियर और नेता मिलकर गटक जाते हैं, फिर भी उनका कुछ नहीं होता, मानो वे न कटी हुई पतंग हों, दूसरी तरफ जनता भात के लिए मजबूर है। 'दाल-भात खाता है कौआ' नामक गीत में यह भाव व्यक्त किया गया है। मनुष्य से तो वह कौआ कहीं अच्छा है जिसे कम से कम खाने को दाल-भात तो मिल जाता है। बड़े ही आक्रोश से गीतकार को यह कहना पड़ता है-

दाल-भात खाता है कौआ
मनुष्य को खाता है हौआ

नकटा है नेता धनखौआ
न कटा हो मानो कनखौआ।[98]

पूँजीपतियों के मुँह सुरसा को भाँति विकराल होते हैं। पहाड़ की तरह वे शोषण करने के लिए अडिग खड़े रहते हैं। उनके इस स्वभाव और स्वरूप का उल्लेख कर केदारनाथ ने उनकी शोषण वृत्ति का विरोध किया है। ये ऐसे असामाजिक तत्व हैं जो पूरे समाज को ध्वस्त कर देते हैं। 'हँस रहा है उधर' गीत में पूँजीपति को पहाड़ के रूप में चित्रित किया गया है-

हँस रहा है उधर
धूप में खड़ा पूरा पहाड़
खोलकर मोटे-बड़े ओठ
और चट्टानी जबड़े।[99]

धरती के वास्तविक अधिकारी किसान ही हैं। वही इस धरती से अन्न उगाते हैं और लोगों तक अन्न पहुँचाते हैं। जमीदारों की लूट के वजह से यह धरती लूटेरों की हो गयी है। लेकिन किसान अब विरोध में खड़े हो रहे हैं और अब धरती पर उन्ही का अधिकार है। 'किसानी गाना' नामक गीत में यह भाव और विरोध व्यक्त हुआ है-

जमींदार ने लूट मचाई हर ली धरती।
राजा ने भी लूट मचाई हर ली धरती।।
हमें किया बेधरतीवाला धरली धरती।
डाई और लूटेरं के घर पहुँची धरती।।
जमींदार की नहीं, न राजा की है धरती,
अब है आज हमारी धरती।[100]

समाज के फैले व्यवधान और वर्गभेद को केदारनाथ संसार का अभिशाप मानते हैं न कि विधि का विधान। ईश्वर की संतान तो हम सभी हैं, लेकिन यह सामाजिक कटुता ही है कि एक खाये बिना मर रहा है तो दूसरा खा-खाकर। ये खाकर मरने वाले ही समाज के नासूर हैं। इसका ऑपरेशन करना जरूरी है। अन्यथा जग का

अभिशाप कभी वरदान नहीं बनेगा। 'अभिशाप जग का' गीत में इस बात की सत्यता देखी जा सकती है-

एक जीते
और बोए, ताककर फसलें उगाए,
दूसरा अधरात में काटे उन्हें अपनी बनाएँ
मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ।
एक रोटी
के लिए तड़पे सदा अधपेट खाए,
दूसरा घी दूध शक्कर का मज़ा भरपेट पाए,
मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ।[101]

सेठ, साहुकार, पूँजीपति अपने अथाह घन के बल पर सबकुछ हासिल करने की कोशिश करते हैं। उनका चरित्र भी बहुत गंदा होता है। 'सेठजी' गीत की पंक्तियाँ इस तथ्य को उजागर करती हैं-

सेठजी के पास पूँजी का बड़ा तालाब है
प्यार पाने के लिए दिल सेठ का बेताब है
थैलियों का मुँह खुला है, लौडियों की चाह है
सेठ जी का भद्र जीवन आजकल गुमराह है।[102]

गाँवों और समाज में संत्रास फैलाने वाले पूँजीपति महाजन सिर पर मुरैठा बाँधे बैठा है, वह मीठी बातें बोलकर लोगों को कर्ज दे रहा है ताकि सूद के रूप में अच्छी वसूली हो सके। 'गाँव का महाजन' नामक गीत में ऐसे गोबर-गणेश का उल्लेख गीतकार ने आक्रोश वश किया है-

वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,
गौरव के गोबर गनेश-सा मारे आसन,
नारिकेल-से सिर पर बाँधे धर्म-मुरैठा,
ग्राम-बधूटी की गौरी-गोदी पर बैठा
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले,

जीभ निकाले, बात बनाता करूणा घोले।[103]

पूँजीपतियों की मुनाफाखोरी की नीति के वजह से उनके गोदामों में पड़े अनाज जहाँ एकतरफ सड़ते रहते हैं वहीं समाज का एक ऐसा वर्ग है जो दाने के लिए तरस जाता है। उसके बच्चे भूख की वजह से कालकवलित हो जाते हैं फिर भी गोदामों के ताले खुल नहीं पाते। केदारनाथ द्वारा रचित 'हमारी जिन्दगी' नामक गीत में सर्वहारा का वह प्रलाप है जो इन पूँजीपतियों की शोषण की कलई खोल देती है-

हमारी जिन्दगी के दिन
बड़े संघर्ष के दिन हैं!
न दाना एक मिलता है
खलाये पेट फिरते हैं।
मुनाफाखोर की गोदाम
के ताले न खुलते हैं।[104]

केदारनाथ की संवेदना शोषितों और पीड़ितों के प्रति है। वे उनके लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं अपनी सहानुभूति और संवेदना उनके प्रति जताते हुए 'मैं' नामक गीत में लिखते हैं -

गीत हूँ लेकिन किसानो।
मैं तुम्हारी वेदना हूँ।
बंधनों से मुक्त होने की
तुम्हारी चेतना हूँ।।
चोट पर मैं चोट करने
की तुम्हारी प्रेरणा हूँ।।[105]

छ) रूढ़ियों का विरोध

परम्परा और रुढ़ियाँ कभी कल्याणकारी नहीं होती। उसके आड़ में धर्माचारी और शोषक अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते रहते हैं और जनता अंध भक्ति और अंधविश्वास में अपना सर्वस्व लुटाती रहती है। इसलिए ''प्रगतिवादी चाहता है कि धर्म, समाज और जीवन की सभी रुढ़ियों को समाप्त किया जाये, क्योंकि ये सब पूर्व-व्यवस्थाओं

की ही देन हैं, प्रतिक्रियावादी हैं और श्रमिकों का अहित करती हैं। ईश्वर, भाग्यवाद, धर्म, परम्परागत रीति-रिवाज सब व्यर्थ हैं। ईश्वर बूढ़ा और बेकार हो गया है। धर्म अफीम का नशा है और भाग्य भ्रांति है।''[106]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी साहित्यकार होने के कारण परम्परा और रूढ़ियों का पूरा विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में यह सब ढकोसला है और इससे किसी का कल्याण संभव नहीं। अतः उन्होंने अपने गीतों में इन रूढ़ियों और अंधविश्वासों का पूरजोर खण्डन किया है। 'नये लेखकों की दृष्टि-भ्रम और उसका निराकरण' नामक लेख में केदारनाथ ने लिखा है- ''आदमी आदमी को आदमी नहीं समझता। पत्थर के देवता के सामने गिड़गिड़ाता है। पत्थर गूँगा होता है, अकर्मण्य होता है, इसीलिए आदमी उसके विरुद्ध नहीं होता। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि आदमी अपना उद्धार अपने हाथों से न करे और न ही दूसरे आदमियों से अपना कल्याण करा सके। यह स्थिति अत्यंत घृणास्पद स्थिति है।''[107] केदारनाथ अग्रवाल अपने घर पर जन्म से ही अंधविश्वास के शिकार थे। उन्हें जीवित रखने के लिए टोटका भी किया गया था। अजित पुष्कल से बातचीत में उन्होंने खुद कहा है- ''पहला बच्चा मर जाने के बाद जब मैं पैदा हुआ तो मुझे जिलाने के लिए पड़ाइन दाई को दे दिया गया और फिर उनसे ले लिया गया। इस सिलसिले में मेरा थोड़ा-सा कान भी काटा गया था।''[108]

रूढ़ियों और अंधविश्वासों में फँसी जनता के विषय में केदारनाथ अग्रवाल की राय है- ''जनता अनपढ़ है। उसे पढ़ाना पड़ेगा। रामलीला ने मूढ़ जनता को रूढ़ियों में ही जीने का बल दिया पर रूढ़ियों के तोड़ने का बल तो नहीं दिया।''[109] रूढ़ि और मौलिकता' नामक लेख में केदारनाथ ने लिखा है- ''रूढ़ि और परम्परा का तिरस्कार जरुरी है। परम्परा का तिरस्कार फैशन नहीं है, जैसा कि अज्ञेय ने कहा है, यह तिरस्कार जीवन की माँग है, प्रगतिशील मनुष्य का युग-धर्म है। जो कवि या लेखक अपना जितना अधिक योग इस तिरस्कार में देता है, वह उतना ही अधिक प्रगतिशील होता है। इस तिरस्कार से व्यथित होने का कोई वजह नहीं है। अज्ञेय नाहक परेशान हो उठे हैं। वह यह अच्छी तरह जान लें कि रूढ़ि के न मानने में ही, उसके तोड़ने में

ही, जीवन और जीवन के साहित्य का कल्याण है।''[110] अज्ञेय का एक लेख जो त्रिशंकु में छपा था उसमें अज्ञेय ने परम्परा और रूढ़ि पर कुछ टिप्पणी की है, उसी के जवाब में अग्रवाल ने उपरोक्त पंक्तियाँ कही है।

केदारनाथ अग्रवाल ने नीलकंठ पक्षी को लेकर एक गीत लिखा है, उसमें उन्होंने परम्परा और पुरानी मान्यता का खण्डन किया है। किम्बदन्ती है कि दशहरे में नीलकंठ को देखना शुभ होता है। लेकिन केदारनाथ ने कभी भी इस बात को सत्य नहीं माना है। उन्होंने 'खुली आँखें खुले डैने' में लिखा है- ''नीलकंठ नाम के पक्षी को लेकर मैंने उससे संबंधित इस अवधारणा का खंडन किया है कि वह पूज्य है और शिव का प्रतिरूप है और उसके दर्शन से घर बैठे गंगा-स्नान का पुण्य-लाभ होता है। अंधविश्वास को ध्वंस करना भी, जीवंत जीने की क्रिया है।''[111] 'उड़कर आये' नामक गीत ही नीलकंठ पर लिखित है। इसमें गीतकार ने नीलकंठ से जुड़ी अंधविश्वास का खण्डन करते हुए लिखा है-

हटो, हटो
मैं नहीं चाहता तुम्हें देखना,
तुम्हें देखकर भ्रम में रहना।
तुम क्या संकट काट सकोगे?
शक्ति हीन केवल चिड़िया हो।
विष पीते तो मर ही जाते,
उड़कर यहाँ न आ पाते।[112]

आदमी की मृत्यु बल्ब का फ्यूज होना है। बल्ब का फिलामेण्ट जब एक बार टूट जाता है तो वह दुबारा जुड़ता नहीं, उसी तरह आदमी का मरना भी है। वह पुनर्जन्म नहीं लेता। यहाँ पुनर्जन्म की मान्यता या अंधविश्वास को खारीज करते हुए गीतकार ने लिखा है-

बल्ब का
फ्यूज होना
आदमी का मरना है

न यहाँ रहना है-

न प्रयाण करना है

न लौटकर आना है

न पुनर्जन्म पाना है।[113]

गीतकार का यह मानना है कि आदमी की मृत्यु होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही है। पुनर्जन्म की बात तो काल्पनिक है। गतिशील अंगों का रूक जाना ही मृत्यु को प्राप्त होना है।

पहले किसान फसल की बुआई या कटाई साईत (शुभ मुहुर्त) देखकर करता था। यह भी अंधविश्वास का ही एक हिस्सा है। क्योंकि साईत देखते-देखते किसान के बच्चे भूख से मरने लगते है। जीवन से बड़ा कोई शुभ मुहुर्त नहीं होता, इसलिए गीतकार ने 'कटुई का गीत' में इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है-

काटो काटो काटो करबी

साइत और कुसाइत क्या है

जीवन से बढ़ साइत क्या है।[114]

पत्थर को राह से उठाकर किसी पीपल के नीचे स्थापित कर उसपर जल ढालना, माथा टेकना व्यक्ति की अपनी मानसिक तृप्ति है। यह नियम सबके लिए मान्य होना जरूरी नहीं है। इसलिए केदारनाथ के गीत 'नया इंसान' में परम्परा और रुढ़ि का जोरदार विरोध देखने को मिलता है-

आदमी ने प्रेम से भगवान को पत्थर बनाया

और उसके सामने अभिशप्त हो मस्तक झुकाया

मैं नहीं ऐसे निठुर पाषाण को मस्तक झुकाता।[115]

परम्परा उस कुंड के समान है जिसमें कूदकर लोग बेमौत मर जाते हैं। अतः परम्परा का समर्थन व्यक्ति और समाज के लिए कभी भी हितकारी नहीं होता। 'परम्परा' शीर्षक गीत में परम्परा का पूर्णतः विरोध मिलता है-

परम्परा

एक ठिकाना है

कुंड में कूदकर
जीने का बहाना है
कुंड में जीना
कुंड का पानी पीना
जानते-बूझते
बेमौत मर जाना है।[116]

रूढ़ि को पूर्णतः विरोध करने वाला एक गीत है 'टोटम और टैबू'। इसमें धर्म और नियम की जटिलता को व्यक्त किया गया है और यह बताया गया है कि रूढ़ियाँ हमें पिछड़ाने का एक मुख्य कारण रही हैं-

ऐसा न करो/वैसा न करो,
यह धर्म नहीं/बस धर्म यही,
यह नहीं उचित/यह है समुचित
यह पाप अरे/यह पुण्य अरे
इस टोटम स/इस टैबू से
हम नष्ट हुए/हम भ्रष्ट हुए
दुनिया बिगड़ी/दुनिया पिछड़ी
तम छाया है/गम छाया है।[117]

केदारनाथ अग्रवाल ने रूढ़ि विरोध के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है। यहाँ भी रूढ़ि या परम्परा का विरोध व्यंग्य के जरिये करते हुए दिखाया गया है। 'सस्ता है भगवान' में यह व्यंग्य देखने को मिलता है-

सस्ता है भगवान
भजन से वह मिलता है
सस्ता है ईमान
दान से वह मिलता है।[118]

तीर्थयात्रा पर जानेवाले यात्री के कारनामों को देखकर केदारनाथ उद्विग्न हो जाते हैं। उन्हें ये सब धर्म के बजाय अधर्म करनेवाले ज्यादा लगते हैं। उनके कारनामों

में पाप की बू आती है। तीर्थ यात्रा तो एक बहाना है, मकसद कुछ और ही है। इन यात्रियों के कारनामों को 'चित्रकूट के यात्री' नामक गीत में व्यक्त किया है-

चित्रकूट के बौड़म यात्री
सेतुआ, गुड़ गठरी में बाँधे,
गठरी को लाठी पर साधे,
लाठी को काँधे पर टाँगे,
दिनभर अधरम करने वाले,
परनारी को ठगनेवाले,
परसम्पत्ति को हरनेवाले,
भीषण हत्या करनेवाले
धर्म लूटने के अधिकारी
टोली की टोली में निकले,
जैसे गुड़ के लोभी चींटे,
लम्बी एक कतार बनाके
अपने-अपने बिल से निकले![119]

हम कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में सर्वहारा वर्ग का जीवन पूर्णतः प्रतिफलित हुआ है। इसमें सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति का भाव, जीवन का यथार्थ-चित्रण, शोषित और पीड़ितों की स्थिति का चित्रण करते हुए शोषकों का विरोध, अपने अधिकार और न्याय प्राप्ति के लिए सर्वहारा वर्ग में संघर्ष की चेतना लाने, समानाधिकार की चेतना जगाने, तथा समाज सुधार के लिए पूँजीवाद का विरोध तथा रूढ़ि का विरोध किया गया है। गीतकार की संवेदना किसान, मजदूर तथा शोषित, पीड़ित व्यक्तियों के प्रति सदैव रही है और वे अपने गीतों में उनके उद्धार की कामना करते हुए उनमें एक नई चेतना जगाते रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 10
2) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 10-11
3) नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 128
4) वही, पृ. सं. 61
5) केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 99
6) केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, पृ. सं. 7
7) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 112
8) वही, पृ. सं. 117
9) वही, पृ. सं. 135
10) वही, पृ. सं. 153
11) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 136
12) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 28
13) वही, पृ. सं. 47
14) केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, पृ. सं. 134
15) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 63
16) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 44
17) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 45
18) वही, पृ. सं. 79
19) वही, पृ. सं. 127
20) वही, पृ. सं. 214-215
21) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 23
22) वही, पृ. सं. 131
23) वही, पृ. सं. 87
24) केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं. 6

25) वही. पृ. सं. 6

26) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 58

27) वही. पृ. सं. 61

28) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 111

29) वही. पृ. सं. 113

30) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 61

31) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 119

32) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 116

33) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 177

34) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 178

35) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 120-121

36) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 63

37) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 87

38) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 27

39) वही, पृ. सं. 155

40) वही, पृ. सं. 129

41) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 42

42) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 47

43) केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, पृ. सं. 22

44) वही, पृ. सं. 115

45) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 29

46) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 118

47) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 99

48) वही, पृ. सं. 46

49) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 74

50) वही, पृ. सं. 82

51) नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 624
52) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 7
53) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 10
54) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 132
55) वही, पृ. सं. 161
56) वही, पृ. सं. 131
57) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 23
58) वही, पृ. सं. 63
59) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 42
60) वही, पृ. सं. 153
61) वही, पृ. सं. 82
62) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 34
63) वही, पृ. सं. 112
64) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 193
65) वही, पृ. सं. 133
66) वही, पृ. सं. 121
67) वही, पृ. सं. 47
68) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 130
69) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 10
70) वही, पृ. सं. 10-11
71) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 11
72) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 8
73) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 95
74) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 54
75) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 57
76) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 83

77) वही, पृ. सं. 115

78) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 44

79) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 34

80) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 25

81) वही, पृ. सं. 68

82) वही, पृ. सं. 138

83) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 20

84) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 104

85) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 49

86) रामविलास शर्मा - प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 31

87) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 115

88) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 49

89) नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 624

90) अशोक त्रिपाठी (सं) - संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 382

91) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 71

92) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 93

93) वही, पृ. सं. 128

94) वही, पृ. सं. 156-157

95) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 104

96) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 48

97) वही, पृ. सं. 156

98) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 23

99) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 43

100) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 49

101) वही, पृ. सं. 74

102) वही, पृ. सं. 89-90

103) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 82

104) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 30

105) वही, पृ. सं. 87

106) कृष्णदेव झारी - हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, (भाग-2), पृ. सं. 119

107) केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, पृ. सं. 37

108) नरेन्द्र पुण्डीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 108

109) रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी (सं) - मित्र-संवाद (भाग-2), पृ. सं. 123

110) केदारनाथ अग्रवाल - समय समय पर, पृ. सं. 60

111) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 17

112) वही, पृ. सं. 103-104

113) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 71

114) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 75

115) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 70

116) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 128

117) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 111

118) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 181

119) वही, पृ. सं. 34

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

केदारनाथ अग्रवाल के गीत : गीत रचना के तत्वों की कसौटी पर

क) आत्माभिव्यंजना

ख) प्रभावान्विति

ग) संक्षिप्तता

घ) निर्बन्धता

ङ) संगीतात्मकता

च) भावप्रवणता

गीत में लय और राग का होना अनिवार्य है। अपनी इन्हीं सौन्दर्य के कारण यह एक स्वतंत्र विधा के रूप में आदिकाल से ही कंठहार बना हुआ है। इतना ही नहीं यह मनुष्य की संवेदना और उसकी अनुभूतियों को भी प्रकट करता रहा है। गीत की गूँज तो मानव जीवन के प्रत्येक कर्म-संस्कृति में अनुभव की जाती रही है। हमारे देश में उत्सव और रस्मों की बहुलता है। अतः इन अवसरों पर गाया जानेवाला गीत हृदय की प्रसन्नता को अभिव्यक्त करनेवाला रहा है, तो परिश्रम करनेवाले किसानों और मजदूरों द्वारा गाया जाने वाले गीत उन्हें ऊर्जा प्रदान कर सक्रिय रखनेवाला भी रहा है। गीत से सदैव जनमानस को प्रसन्नता और प्रेरणा मिलता रहा है। इसमें सक्रियता और व्याप्ति है। अपनी सक्रियता से इसने मानव को लोक-चेतना में लीन कराया है। इसकी व्याप्ति कहीं न कहीं सुषुप्तावस्था में हमारे अन्दर है। उर्वरभूमि पाकर वह जाग्रत हो जाता है और ओठों पर थिरकने के साथ-साथ रचने की प्रेरणा भी देता रहा है। यह हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंश है जिसकी व्याप्ति सदैव बनी रहेगी।

गीत जितनी सहजता से आम जनता के मन और जीवन में प्रवेश करते हैं और उनमें अपनी स्थायी जगह बना लेते हैं, उतनी सहजता से मुक्तछंद की कविताएँ जनमन को प्रभावित नहीं कर पाती हैं।[1] डॉ० मैनेजर पाण्डेय गीत के विषय में लिखते हैं - ''गीत कविता है, बल्कि मैं यह कहूँगा कि कविता का आरंभ ही गीत से हुआ है, भारत में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में। इसलिए कविता की दुनिया से गीत को बाहर रखना गलत है।''[2] डॉ० विश्वनाथ अपनी लेख 'समकालीन हिन्दी कविता का मूल्यांकन गीत को शामिल किए बिना अधूरा है' में लिखते हैं - ''गीत भी कविता की एक महत्वपूर्ण विधा है। उसे उपेक्षित करने का अर्थ है कविता की उपेक्षा। चूंकि गीत भी कविता है, इसलिए उसको नकारना किसी भी रूप में उचित नहीं कहा जा सकता।''[3] एक अच्छे गीत के विषय में डॉ० गंगाप्रसाद विमल का कहना है - ''एक अच्छा गीत हमेशा कविता ही है। वह वाङ्मय का सर्वोत्तम हिस्सा है। आज के युग में छंदमुक्त समर्थ कविता और सार्थक गीत दोनों ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। किसी भी दृष्टि से गीत को नकारना हिन्दी कविता के प्रति अविश्वास व्यक्त करना है।''[4] देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की दृष्टि में ''गीत कविता-कानन का सबसे सुन्दर, मोहक और

सुगंधपूर्ण पुष्प है; पहले भी था और आगे भी रहेगा।''[5] आज के कठिन दौर में गीत को कैसा होना चाहिए? इसका जवाब नचिकेता देते हुए लिखते हैं - ''अगर गीत को जिंदा रहना है, विकास की निरंतरता को बरकरार रखना है, इसे समाज सापेक्ष, समय सापेक्ष और युग सापेक्ष होना है तथा सामाजिक परिवर्तनों में सार्थक और सकारात्मक भूमिका निभानी है तो उसे गीत, नवगीत, जनगीत, जनवादी गीत इत्यादि विविध नामों की खेमेबंदी से शीघ्रातिशीघ्र निजात पा लेनी होगी।''[6] डॉ० भारतेन्दु मिश्र के अनुसार ''गीत वस्तु नहीं है, वह तो कवि की चेतना का आम आदमी की चेतना से संवाद है।''[7] गीत के विषय में केदारनाथ अग्रवाल अपने लेख ''गीत अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में'' लिखते हैं - ''गीत भी, कविता की अनेक विधाओं में से एक है। इस विधा में व्यक्त हुई कविता गेय होती है; इसलिए गीत की पहचान उसकी गेयता में निहित होती है; इसलिए गीत तभी गीत है जब वह गेय हो, इसलिए जो कविता गेय नहीं है, वह गीत नहीं है।''[8] अपने गीत के विषय में उनका कहना है - ''मेरे गीत लोक-मानव के हृदय के गीत हैं। न वे गायकी के गीत हैं, न साहित्यिक उपलब्धियों के गीत हैं।''[9]

अच्छे गीत के विषय में नचिकेता लिखते हैं - ''अच्छे गीत वे होते हैं, जिसमें कवि अपनी भाषा में अपने को इस कदर विलीन कर लेता है कि उसकी उपस्थिति का आभास तक नहीं होता और भाषा का अपना स्वर, लय और संगीत गीत की समस्त शिराओं में रक्त की भाँति प्रवाहित होने लगता है और उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँजने लगती है। मतलब कि गीत की भाषिक संवेदनशीलता में सामाजिक संवेदनशीलता की चासनी घुली होती है। और, गीत का भाषिक संरचना एक भाषिक (क्रिस्टल) की नाई अत्यधिक सघन और अकृत्रिम होती है।[10]

गीत के कुछ विशेषताएं और तत्व होते हैं। कुछ विद्वान गीत रचना के तत्वों को विशेषताओं के साथ जोड़ देते हैं। सच्चिदानंद तिवारी 'गीत रचना के तत्वों को गीत की विशेषताएं'[11] मानकर छः तत्वों की बात करते हैं - 1. संगीतात्मकता 2. अध्यांतरिकता तथा भावना की सार्वभौमिकता 3. भावान्विति 4. लघुता 5. उच्चकोटि की गंभीरता 6. स्वाभाविकता।

मंजु गुप्ता के अनुसार 'आधुनिक गीतों के मूलतत्व'[12] हैं - 1. आत्माभिव्यंजना 2. स्वतःप्रेरित भावातिरेक 3. संगीतात्मकता 4. भावान्विति एवं प्रभावैक्य 5. संक्षिप्तता 6. निर्बन्धता। मुंडे-मुंडे-मति भिन्ना के अनुसार देखा जाय तो विद्वानों ने गीत के अलग-अलग तत्वों की चर्चा की हैं लेकिन भावों की दृष्टि से देखा जाए तो उनमें एकरूपता दिखाई पड़ती है। कुल मिलाकर गीत के निम्नलिखित तत्व हैं, जिनके आधार पर केदारनाथ के गीतों का अध्ययन किया जाएगा - 1. आत्माभिव्यंजना 2. प्रभावान्विति 3. संक्षिप्तता 4. निर्बन्धता 5. संगीतात्मकता 6. भावप्रवणता।

क) आत्माभिव्यंजना

आत्माभिव्यंजना गीतिकाव्य के रूप-संगठन की पीठिका है। अपनी प्राणवाहिनी शक्ति तथा स्वाभाविक सृजनशीलता के कारण उसने गीतिकाव्य को जन्म दिया है। गीत में 'मैं' की अभिव्यक्ति अधिक होती है। यह 'मैं' ही गीतकार की आत्माभिव्यंजना है। उस 'मैं' के माध्यम से गीतकार अपनी व्यक्तिगत और आत्मपरक अनुभूतियों को व्यक्त करता है। आदिम-युग के मानव से लेकर अधुनातन मनुष्य तक अपने निजी दुःख-सुख की अभिव्यक्ति रोने-गाने या हँसी-खेल के रूप में करते हैं। चूँकि आदिम समाज की सामूहिक भावनाएँ संगठनात्मक अभेद के कारण इस अर्थ में व्यक्तिनिष्ठ थीं कि उस समय का पूरा समाज ही व्यक्ति के समान एक इकाई था। उत्तरोत्तर समाज में व्यक्तिवाद का विकास होता गया और गीतिकाव्य व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति काव्य के रूप में करने लगा और ऐसे काव्य को गीतिकाव्य से इतर कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती।

गीत में आत्मपरक अनुभूति की अभिव्यक्ति अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक होती है। समाज, प्रकृति, किसी विशेष परिस्थिति में घटनेवाली घटना का प्रभाव ही ऐसी व्यंजना का स्रोत होता है, जो उसके अंतर्मन को गहराई तक छू जाता है। गीत में आने वाले 'आत्म' की अभिव्यंजना ''मात्र रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति नहीं अपितु उसके 'स्व' की तलाश का परिणाम है, जबकि वह अपने को समाज में और समाज को अपने में संदर्भित कर रहा होता है।''[13] नचिकेता लिखते हैं - ''वाकई गीत कविता

के मुकाबले अधिक आत्मपरक और वैयक्तिक होता है। इसमें सामाजिक अनुभव भी वैयक्तिक अनुभव के साँचे में ढलकर व्यक्त होता है। लेकिन यह तत्वतः सामाजिक होता है। अतः गीत के अंतर्जगत का अंतरंग परिचय वही प्राप्त कर सकता है, जो उसकी आत्मपरकता में निहित सामाजिकता और मानवीयता की पुकार के मर्म का स्पर्श पा लेता है।''[14]

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य-संग्रहों में गीतों का उल्लेख मिलता हैं। उनके गीत उनकी सहज अंतर्मन से निकले गीत हैं जो पाठकों के अंतर्मन को उसी तरह से छू जाती है जिस तरह से गीतकार के अतः को छूकर निकली हैं। केदारनाथ को गीत रचना करने की प्रेरणा अपने घर के वातावरण से ही मिली है। डॉ० अशोक लव से बातचीत मे उन्होंने लिखा है - ''मेरे पिताजी को प्राचीन और ब्रज साहित्य से बहुत प्रेम था। उनकी रुचि संगीत में भी थी। घर में पुराने कवियों पद्‌माकर, देव, बिहारी, जयदेव, विद्यापति आदि की किताबें थीं। हमारे पिताजी ने गाँव में पुस्तकालय भी खोल रखा था। उनके पास बैठने-उठने वाले भी रोज आते थे। दरवाजे पर जाजिम बिछ जाती थी। आल्हा वगैरह हुआ करता था। ढोलक-मँजीरा बजते थे। पिताजी हारमोनियम बजाते थे। इन सबका मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि ये चीजें अच्छी हैं।''[15] इन्हीं सब के वजह से केदारनाथ साहित्य की ओर उन्मुख हुए और गीत लिखने लगे। उनके गीतों में आत्माभिव्यंजना तत्व पूरी तरह से दिखाई पड़ता है -

'जमुन जल तुम' में 'यह उजियाली रात' नामक गीत में केदारनाथ ने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से अपनी अनुभूति को समाज की अनुभूति बनाना चाहते हैं --

> यह उजियाली रात आज सिंगार किए जो हँसती आई,
> धवल चाँदनी जग में जिसकी कोमल सेज बिछाती, छाई;
> जिसे देखते ही मैं रीझा, हुआ रूप का लोभी पागल,
> गीत सुनाकर, गाकर मोहा थाम लिया जिसका प्रिय आँचल,"[16]

जीवन जीने और जीवन की सार्थकता के लिए प्यार का होना जरूरी होता है। बिना प्रेम का सब कुछ बेकार है। यह संसार प्रेम के बल पर ही टिका हुआ है। अपनी

इस अनुभूति को सर्वानुभूति में व्याप्त करना चाहते हैं गीतकार केदारनाथ। 'प्यार न पाता' नामक गीत दर्शनीय है -

प्यार न पाता
तो क्या होता?
घास-फूस की झाड़ी होता
बेपेंदे की हाँड़ी होता
x x x
बेपहिये की गाड़ी होता
सबसे बड़ा अनाड़ी होता
गूँगी खड़ी पहाड़ी होता
बंगाले की खाड़ी होता।[17]

शोषण हमारे समाज का बहुत बड़ा दानव है। इसकी चक्की में निरंतर कृषक और मजदूर पिसते रहते हैं। केदारनाथ की सहानुभूति सर्वहाराओं के प्रति है और आक्रोश शोषितों के प्रति। शोषण की नीति कोई नई नहीं है, यह एक चली आ रही सिलसिला है। इस शोषण का वे विरोध करते हुए हमें भी शोषण मुक्त समाज गढ़ने में सहायक होने की बात परोक्ष रूप से करते हैं। अपनी अनुभूति को समाज-सापेक्ष बनाने के लिए 'सब कुछ देखा' नामक गीत में लिखा है -

सब कुछ देखा
फिर-फिर देखा
जो देखा वह देखा देखा।
देखे में कुछ नया न देखा,
हेर-फेर का प्रचलन देखा,
दूषण देखा
शोषण का अपलेपन देखा।[18]

'गठरी चोरों की दुनिया' नामक गीत में गीतकार ने ईमानदारी को सबसे बड़ा अस्त्र बताया है। ईमानदार व्यक्ति परेशान तो होता है पर नेस्तनांबूद नही'। वैसे व्यक्ति

सबके प्यारे होते हैं। अपनी इस अनुभूति को गीतकार ने 'हे मेरी तुम' में संबोधित कर कहा है -

हे मेरी तुम।
'गठरी-चोरों' की दुनिया में
मैंने गठरी नहीं चुरायी;
इसीलिए कंगाल हूँ,
भुक्खड़ शाहंशाह हूँ,
और तुम्हारा यार हूँ,
तुमसे पाता प्यार हूँ।[19]

कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना मनुष्य अपनी मनोबल के कारण करने में सफल हो सकता है। कठिनाई तब तक कठिनाई बनी रहती है जब तक हौसला पस्त रहता है। हौसले के बुलंद हो जाने पर तो पहाड़ सदृश कठिनाई भी पानी सदृश तरल हो जाता है। गीतकार केदारनाथ ने अपनी इसी अनुभव को 'खड़ा चढ़ा मैं' नामक गीत में अभिव्यक्त किया है। यह अभिव्यक्ति काल्पनिक नहीं उनकी स्व की अनुभूति है जिसे लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं-

खड़ा पहाड़ चढ़ा मैं
अपने बल पर।
ऊपर पहुँचा
मैं नीचे से चलकर
पकड़ी ऊँचाई तो आँख उठाई
कठिनाई अब नहीं रहीं कठिनाई।[20]

हमारे जीवन में हाथ का बहुत बड़ा महत्व है। हाथ ही काम को अंजाम देते हैं और हमें कर्मशील बनाये रहते हैं। 'हमारे हाथ' नामक गीत में गीतकार ने अपने हाथ को बहुत बड़ा साथी बताया है जो रूचिर रचनाकार हैं। ये हाथ सिर्फ हाथ नहीं हैं। ये हाथ वे लोग हैं जो रचनाकार की मानसिकता से अपने को जोड़े उसके साथ खड़े हैं और सही अर्थों में वे लोग ही रचनाकार हैं जो अपनी कड़ी मेहनत से कुछ कर

गुजरने की लालसा मन में पाले रहते हैं। अपनी इसी अनुभूति को गीतों में पिरोते हुए गीतकार लिखता है -

जो हमारे साथ हैं
वह
हमारे हाथ हैं,
कर्म के करतार हैं,
रूचिर
रचनाकार हैं।[21]

'मैं नहीं सूरज' नामक गीत में रचनाकार ने यह स्पष्ट किया है कि लघुता से ही प्रभुता की प्राप्ति होती है। उन्होंने अपनी तुलना सूरज से नहीं छोटीसी दीपक से करते हुए बताया है कि वह अपनी छोटीसी प्रयास से ही अन्याय रूपी अंधकार को मिटाने में सक्षम है और वह इसी तरह वह इस संसार में जीवित है। वह अपने अनुभूति को अभिव्यक्त करते हुए लिखता है -

मैं नहीं सूरज
दिया हूँ
नेह की बाती जलाये,
कुछ उजाले से
अंधेरा कुछ मिटाये
आपको अपना बनाये
और अपने को जियाये।[22]

समय बहुत ही बलवान होता है। वह किसी पर दया नहीं करता। आदमी बैठकर थोड़ी देर आराम भी कर ले पर समय-चक्र सदैव गतिशील है। वह कैसे हमारे जीवन को तिल-तिल करके काटता चला जाता है पता ही नहीं चलता। रचनाकार केदारनाथ ने अपने गीत ''समय को पीता हूँ मैं क्षीर की तरह'' में इसी भाव को व्यक्त किया है कि वह समय का सदुपयोग बहुत ही बारीकी से करता है। समय उसके लिए क्षीर और नीर की तरह जीवनदायक है। लेकिन उसे यह अच्छी तरह से विदित है कि

समय उसे चोर की तरह जीता है यानि समय उसके जीवन को तिल-तिल करके काटता चला जा रहा है। अपनी इसी अनुभूति को जनमानस तक पहुँचाना चाहता है कि समय रहते हम यदि कुछ नहीं कर पाये तो बाद में कुछ करना संभव नहीं, क्योंकि समय हमारी प्रतीक्षा कभी नहीं करता। इसलिए वह कहता है -

समय को पीता हूँ मैं क्षीर की तरह
समय पीता है मुझे नीर की तरह
समय को जीता हूँ मैं भोर की तरह
समय जीता है मुझे चोर की तरह।[23]

गीतकार केदारनाथ ने अच्छे गीत लिखे हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके द्वारा रचित 'रोया जहाँ' नामक गीत है, जिसमें उन्होंने गीतों के अक्षय वट उगाने की बातें लिखी हैं। उनके रूदन में ही गान छिपा हुआ है, जो अंतरीक्ष तक गूँज उठे हैं। वे लिखते हैं -

रोया जहाँ
वहाँ पर मैंने गाना गाया,
गीतों का अक्षयवट
अबकी बार उगाया,
अंतरिक्ष तक
गूँज उठीं मेरी स्वर-ध्वनियाँ,
धरा-धूल पर
लगीं नाचने छवि की परियाँ।[24]

मानव जीवन में समस्याओं की कमी नहीं। समस्यायें मनोबल की दृढ़ता से सदैव हारती रही हैं। गीतकार केदारनाथ का जीवन भी अनेक समस्याओं से घिरा रहा है। कभी-कभी हताश और निराश होने के बावजूद उन्होंने अपनी ईमानदारी को कभी नहीं छोड़ा। अपनी मनोबल की तलवार से वे कठिनाइयों पर प्रहार करते रहें हैं और अपनी राह को कंटक रहित बनाने की कोशिश भी करते रहे। इसलिए तो वे अपने गीत ''मैं हूँ आप ही अपनी तलवार'' में लोगों को संदेश देते लिखते हैं-

मैं हूँ आप ही अपनी तलवार

तीक्ष्ण-चमकती - लचकदार

वार-पर-वार करती धुआँधार

दिक्काल चीरती हुई दमदार।[25]

चट्टान में अपनी जड़ें गड़ाकर जीवनरस खींचनेवाला तरूण देवदार की तरह अडिग रहनेवाले रचनाकार केदारनाथ अपनी दृढ़ता से हर आँधी को मात देने की संदेश 'अडिग रहा हूँ - अडिग रहूँगा' नामक गीत के देते हुए आत्मानुभूति को परानुभूति बनाने के लिए कहते हैं-

यह जो मैं हूँ देवदार की नव तरूणाई

नील रहस्यों तक जाने की दृढ़ ऊँचाई

चट्टानों में जड़े गाड़कर मैंने पाई

जहाँ नहीं जी पाया कोई वहीं जिऊँगा,

अडिग रहा हूँ - अडिग रहूँगा - नहीं गिरूँगा

लौट गयी हर आँधी जो आकर टकराई।[26]

केदारनाथ की संवेदना उन किसानों के प्रति है जो इस धरती के प्रत्यक्ष अन्नदाता हैं। उन्हें बंधनों से मुक्त करने की लालसा गीतकार की है। वह उनके चोट पर मरहम बनकर लगना चाहता है। वह प्रेरणादायक वचनों से सांत्वना देकर उन्हें क्रांति करने के लिए उकसाकर उनका सहयोगी बनना चाहता है। इसलिए तो 'मैं' नामक गीत में कहता है -

गीत हूँ लेकिन किसानों

मैं तुम्हारी वेदना हूँ।

बंधनों से मुक्त होने की

तुम्हारी चेतना हूँ।।

चोट पर मैं चोट करने

की तुम्हारी प्रेरणा हूँ

आत्मवंचक प्राणघाती

मैं नहीं अवहेलना हूँ।[27]

एकनिष्ठ पत्नी-प्रेमी केदारनाथ अग्रवाल ने अपने जीवन में प्रेम को बहुत ही उच्च्य स्थान प्रदान किया है। उनका प्रेम स्वकीया प्रेम है। हमेशा उनके आँखों के सामने उनकी पत्नी का चेहरा उद्‌भाषित होता रहता है। उन्होंने यह महसूस किया है कि किसी भी कार्य की सफलता और पूर्णता के लिए जीवन-साथी की उपस्थिति बहुत ही जरूरी है। उसी की उपस्थिति से कोई भी कार्य सफल हो सकता है। वह एक प्रेरणादायिनी शक्ति है। अपनी रचना की सफलता के पीछे उन्होंने अपनी प्यारी का हाथ ही बताया है जो उनकी रचना को मधुर बनाती रही है। 'वही वही वह मेरी प्यारी' नामक गीत में लिखते हैं -

वही वही वह मेरी प्यारी

जो है मन में वेणु बजाती,

मेरा जीवन - मेरे सुख-दुख,

मेरी कविता, मधुर बनाती।[28]

वास्तविक सुख की अनुभूति को प्रत्यक्ष करनेवाले गीतकार केदारनाथ अग्रवाल वचपन से ही अपने गाँव में बहनेवाली केन नदी से ज्यादा प्रभावित थे। उसी के किनारे घंटों बैठकर सुख का अनुभव करते रहते थे। बच्चे गाँव के माहौल में जितनी आजादी से खेलते, दौड़ते हैं उतनी मस्ती शायद शहर के बच्चों को नसीब नहीं होता। गाँव में पलें, बढ़े, खेले केदारनाथ अपनी उसी सुखानुभूति को 'सुख तो मैंने जाना' नामक गीत में व्यक्त करते हैं-

सुख तो मैंने जाना

केन-किनारे उसे देखता,

अरूणोदय के साथ खेलता

दोपहरी की धूप झेलता

सांध्य-स्वर्ण-श्री-दीप लेसता।[29]

'आत्मगंध' में संग्रहित 'वही घर है' नामक गीत में गीतकार ने यह अनुभव किया है कि पहले के आदमी और आज के आदमी में काफी फर्क आ चुका है, उसकी मानसिकता काफी बदल चुकी है। आज न आदमी आदमी बन कर रहा, न घर ही घर बनकर। जो बदलाव आज वह देख रहा है उसे दूसरों से कह रहा है पर जो अनकहा है, जिसे दूसरों से कहने में सिझक उत्पन्न होती है वह कहीं न कहीं रचनाकार को व्यथित करती हैं और वह अनकहा को सहने पर मजबूर हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अनकही बात को लेकर ही परेशान रहता है। यदि बातें कह दी जाय तो मन हलका हो जाता है। मन के भीतर की बात दबे रहने के वजह से व्यथा का कारण बनती हैं। रचनाकार कहता है -

वही घर है

वही मैं हूँ

अब नहीं वह घर रहा

अब नहीं मैं वह रहा

जो हुआ

वह कह रहा

अनकहा सब सह रहा।[30]

इस कर्म प्रधान विश्व में कर्म द्वारा ही सबकुछ हासिल किया जा सकता है। आलसी और निकम्मों के लिए इस संसार में कोई जगह नहीं। 'धोबी गया घाट पर' नामक गीत में कर्मशील होने की प्रेरणा दी गयी है। अकर्मण्य व्यक्ति कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। गीतकार आत्मानुभूति को परानुभूति और सर्वानुभूति बनाना चाहता

है। यहाँ उसने 'मैं' के माध्यम से उन आलसी और निकम्मों को संन्देश देना चाहा है जो बिना कर्म किए सबकुछ हासिल कर लेना चाहता है। ऐसे ही लोग अकर्मण्य बनकर कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। जीते तो हैं पर भरपेट खाकर नहीं सिर्फ ओस चाटकर-

धोबी गया घाट पर,
राही गया बाट पर,
मैं न गया घाट और बाट पर,
बैठा रहा टाट पर,
दोनों हाथ काटकर,
जीता रहा ओस चाट-चाटकर।[31]

(ख) प्रभावान्विति

गीतिकाव्य अत्यंत 'आत्मकेन्द्रिक और अन्वितियुक्त'[32] होने के कारण समग्र प्रभाव का बोधक है। उसकी अभिव्यक्ति सहज, सरल और पूर्ण होती है। उनका प्रभाव भी सीधा और अन्वितिपूर्ण होता है क्योंकि उसमें विषय-वस्तु का बाह्य-वर्णन या घटना विवेचना का अनावश्यक विस्तार नहीं होता। विशेष रूप से छोटे गीत में उच्चकोटि की प्रभविष्णुता एवं प्रभावान्विति होती है। 'गीत में प्रभावान्विति का सीधा-साधा अर्थ गीत में प्रभाव डालने वाले तत्व की स्थापना से है।[33] गीत में गीत का प्रभाव हमेशा बना रहे यह आवश्यक है। प्रभावान्विति के वजह से गीत पाठकों के अस्तित्व को झकझोंर कर रख देते हैं। यह तभी संभव हो सकता है जब 'रचनाकार की अनुभूति मानवीय दुखों, संघर्षों और यातनाओं की कोख से जन्मी हों।''[34] रचनाकार की गहनतम भावुकता एवं अनुभूति या सूक्ष्म संवेदनशीलता, गीत की सम्प्रेषणीयता को अक्षुण्ण बनाये रख सकने में सक्षम हैं। जब तक रचनाकार की मनःस्थिति भाव सागर में डुबती-उतराती नहीं

तब तक वह अपनी अनुभूति को प्रभावशाली नहीं बना पायेगा। जो कि प्रभावान्विति के लिए आवश्यक है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रभावान्विति नामक तत्व निहित है। उनके गीतों में निहित इस तत्व का विश्लेषण आगे किया जा रहा है -

'गठरी चोरों की दुनिया' नामक गीत में गीतकार की अनुभूतियाँ गठरी चोरों के वजह से उत्पन्न होती हैं। अपनी ईमानदारी का वास्ता देते हुए वह पाठकों को भी उसी ईमानदारी के राह पर चलने की प्रेरणा देता है -

हे मेरी तुम!
गठरी चोरों की दुनिया में
मैंने गठरी नहीं चुरायी;
इसीलिए कंगाल हूँ
भुक्खड़ शाहंशाह हूँ
और तुम्हारा यार हूँ;
तुमसे पाता प्यार हूँ।[35]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेले जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसे जीवित रहने के लिए एक साथी की आवश्यकता महसूस होती है। साथी यदि विपरीत लिंगी हो तो उसकी जिजीविषा और बढ़ जाती है। उसके प्रति प्रेम, लगाव और उसका महत्व बाकी चीजों के मुकाबले ज्यादा होती है। जीवन-साथी एक दूसरे के लिए आजीवन संवेदनशील रहते हैं। उनके लिए ईमानदारी और विश्वास का होना बहुत ही जरूरी होता है। पति-पत्नी के साझा सहयोग से ही जीवन-रूपी गाड़ी आगे बढ़ती है। 'जवानी का झूला' नामक गीत में इसी भाव को व्यक्त किया गया है। जिससे गीत का प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहता है -

जवानी का झूला अकेले न झूलो।
मुझे साथ ले लो दुकेले में झूलो।।

हवा हरहराये, छुये, गुदगुदाये,

लहर की तरह हर पहर गुनगुनाये,

हवा के तराने अकेले न पी लो।

मुझे साथ ले लो दुकेले में पी लो।।[36]

वर्तमान समय के प्रासंगिक गीत ही पाठकों को आकर्षित करते हैं। 'स्वधर्म हो गया है वेतन को बचाना' नामक गीत में घूसखोरी का पर्दाफाश किया गया है। आज के जमाने में वेतन के पैसे को बचाने के लिए लोग घूस लेकर ऊपरी आमदनी का जरिया ढूंढ़ लेते हैं -

स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना

ऊपर की आमदनी का पैसा खाना

ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना

तरह और तरकीब से पकड़ में न आना

क्या खूब है जमाना![37]

थाने और पुलिस के करतूतों को सारी दुनिया जानती है। कलाकार उसे ही जब पंक्तिबद्ध कर देता है तब उसका प्रभाव और ज्यादा बढ़ जाता है। गाँव के थानेदार और पुलिस अत्याचार के बल पर लोगों में संत्रास की सृष्टि करते हैं और अपनी रकम मोटी करने के लिए किसी भी हद तक उतर जाते हैं। 'गाँव में थाने' नामक गीत में शासन-व्यवस्था की कलई गीतकार ने खोलकर रख दिया है- -

गाँव मे थाने

और थानों में सिपाही हैं

थानों के जियाये

राजतन्त्र के सिपाही हैं।

जनता को मिटाये

मार-मंत्र से सिपाही हैं।[38]

अफसरों की करतूतों से केदारनाथ भली-भाँति परिचित थे। वे उनके हथकंडे को भली-भाँति जानते थे। किस तरह से ये दूसरों को परेशान करते हैं और सरकार को फायदा दिलाने और अपना गाँठ पूरी करने के लिए तत्पर रहते हैं। 'सरकार, अफसर और जनता' नामक गीत किसी भी व्यक्ति के अन्दर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता -

सरकार सोचती है

अफसर के माध्यम से अपना भला,

अफसर सोचता है

सरकार के माध्यम से अपना भला,

जनता सोचती है

सरकार और अफसर से

हो नहीं सकता भला।[39]

आज के जमाने में सच्चाई के रास्ते पर चलकर कमाने वाले बहुत कम हैं। 'सच का नाच' नामक गीत में इसी सच को गीतकार ने व्यक्त किया है -

सच का नाच

बन्दर नहीं नाच पाते

फिर भी मदारी डमरू बजाते हैं

बन्दर नचाते हैं

झूठे नाच से पैसा कमाते हैं।[40]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रभाव की अन्विति बनी रहती है। 'पुकार' नामक गीत में गीतकार ने जनता से आह्वान किया है कि यदि इस संसार में जीना है तो विरोधी ताकतों का सामना करना पड़ेगा। उनमें पर्वत सदृश कठिनाई का सामना कर आगे बढ़ना पड़ेगा। जीवन की कटु प्यास को स्वयं बुझाना पड़ेगा। इस गीत में जो प्रभाव है वह पाठकों पर बहुत देर तक पड़ा रहता है -

आँधी के झूले पर झूलो।
आग बबूला बनकर फूलो।।
कुरबानी करने को झूमो।
लाल सबेरे का मुँह चूमों।।
ऐ इन्सानों! ओस न चाटो।
अपने हाथों पर्वत काटो।
पय की नदियों को लहराओ।
जीवन की कटु प्यास बुझाओ।।[41]

आजादी के बाद जिस रामराज की कल्पना की गयी थी, वह रावण राज से भी बदतर साबित हुई। गरीब गरीब ही रहे और अमीर अपनी ठाट-बाट में मस्त रहने लगे। उबकर गीतकार ने ऐसे रामराज में आग लगे, ऐसा कहकर आक्रोश व्यक्त किया है। 'आग लगे इस राम-राज में' नामक गीत को देखा जा सकता है -

आग लगे इस राम-राज में
ढोलक मढ़ती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की
खून बहा है राम-राज में
आग लगे इस राम-राज में।[42]

गाँवों में रहने वाली ज्यादातर औरतें दुःख भरी जीवन बिताने के लिए मजबूर हैं। कठिन काम करते हुए, थोड़ा सा अन्न खाकर जिन्दा लाश बनी फिरती हैं। 'गाँव की औरतें' नामक गीत में जिन ग्रामीण औरतों का चित्र प्रस्तुत किया गया है उसमें प्रभाव ज्यादा है -

गाँवों की औरतें

गन्दी कोठरियों में हाँफती

खाँसती, खसोटती रूखे बाल

घिसती हैं जाँता जटिलतर,

गाँवों की ओरतें

सूखा पिसान फाँक-फाँककर

पीठ-पेट एक कर हाड़ तोड़

मरती हैं पत्थर रगड़कर।।[43]

'ओसौनी के गीत' में केदारनाथ ने खेती का काम करके अनाज उगाकर, अन्न बटोरने की जो बात की है वह खेतिहर के साथ-साथ सबके पेट भरने की चेतना है। यहाँ व्यक्तिगत हित की नहीं समष्टि हित की भावना है -

साहत आई साहत आई बहय गजब की बैरा

काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा

दौरी साधौ अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा

ताल ठोंकि कै मारि भगावौ जेते ऐरा गैरा

अन्न बटोरो, रासि लगावौ छुइले परबत चोटी

देश भरे के खेतिहर खावौ पेट पेट भर रोटी

साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा

काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा।[44]

केदारनाथ अग्रवाल एक सचेत रचनाकार हैं, वे सोये हुए नहीं जागृत गीतकार हैं। सजग प्रहरी की भाँति इनकारते, ललकारते लोगों को सचेत करते रहने वाले गीतकार हैं। अपनी आत्मानुभूति को उन्होंने सर्वानुभूति बनाकर गीत में ऐसा प्रभाव डाला है कि पाठक उससे काफी प्रभावित हो जाता है। 'मैं' नामक गीत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

मैं जागता रहूँगा,

इनकारता रहूँगा

हर तार की तड़प से ललकारता रहूँगा।

मैं जागता रहूँगा,

फन मारता रहूँगा,

हर सिंधु की लहर से फुफकारता रहूँगा।[45]

(ग) संक्षिप्तता

गीत का संक्षिप्त या आकार में लघु होना आवश्यक है क्योंकि लंबे गीत न तो ठीक ढंग से गाई जा सकती है और न तो अनुभूति की केन्द्रीयता एवं सघनता को प्रगट कर सकती है। आकार की लघुता गीत के प्रभाव एवं आकर्षण की रक्षा करने के साथ-साथ भावानुभूति को सापेक्ष्य व्यंजना और उच्च कोटि की गरिमा प्रदान करती है। 'संक्षिप्तता गीत की जान है।[46] गीत के आधार निर्माण में क्षणिक अंतःप्रेरणा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बड़े आकार में इस अंतःप्रेरणा को व्यक्त करना संभव नहीं। अंतःप्रेरणा क्षणिक इसलिए होती है क्योंकि, ''मानव का यह स्वाभाविक गुण है कि, उसकी चेतना एक भाव में अधिक देर तक नहीं रह सकती।''[47] मनुष्य का मन चंचल और तीब्रगामी होने के कारण प्रति पल उसके भाव-चेतना में बदलाव होता रहता है। इन्हीं परिवर्तित भावों में से उसी एक से प्रभावित होकर संवेदनशील रचनाकार रचना

की प्रक्रिया शुरू कर देता है। उनके भाव पाठक या श्रोता के भावों को आन्दोलित करते हैं। संक्षिप्त गीत पाठक या श्रोता पर अपना प्रभाव जमाने में सक्षम होते है। अतः ''गीत का संक्षिप्त होना ही उसकी प्रभावान्विति में सहायक होता है।''[48]

गीत में एक ही विचार या अनुभूति की अभिव्यक्ति रहती है। इस अनुभूति को समग्रता में व्यक्त करने के लिए संक्षिप्त आकार की आवश्यकता पड़ती है। गीत संक्षिप्त इसलिए भी होता है, क्योंकि उसका गायन बहुत देर तक संभव नहीं। कम समय में गाया जानेवाला गीत ही श्रोता या पाठक पर अपना प्रभाव बनाये रखता है। लंबे गीत अपना प्रभाव खो देते हैं क्योंकि 'संगीत के अंक में बँधा हुआ तथ्य उतने ही काल तक मन पर प्रभाव डाले रह सकता है, जितने समय तक श्रोता संगीतमय रह सके और तथ्य उचट न जाये। गीत में एक तथ्य के साथ एक निवेदन, एक ही रस, एक ही परिपाटी होती है। उसका प्रयोग एक ही प्रकार का होता है। अतएव वह मन को केवल कुछ समय के लिए ही अपनाए रह सकता है।''[49] अतः गीत का लघु होना ही उपयुक्त है।

ऋगवेद की ऋचाओं से लेकर वर्तमान काल के गीत-काव्य तक में हमें आकारगत संक्षिप्तता का दर्शन मिल जाता है। गीत का बड़ा आकार अनुभूति की सघनता को कम कर, उसके अनुगूंजात्मक प्रभाव को निष्क्रिय-सा कर देता है। गीत कभी-कभी आन्दोलनों और संघर्षों की चेतना जगाने का काम करते हैं। यह मनुष्य के जय-पराजय, आशा-आकांक्षा आदि संवेगों को भी व्यक्त करते हैं। लंबी रचनाएँ भावों को उद्बुद्ध कराने में बाधा उत्पन्न करती हैं। अतः श्रेष्ठ गीत वही है जिसका आकार संक्षिप्त हो।

केदारनाथ अग्रवाल के गीत आकार में छोटे हैं क्योंकि उन्होंने खुद ही स्वीकार किया है ''मैं विस्तारवादी नहीं हूँ।''[50] थोड़े में बहुत कहने की समर्थता केदारनाथ में है। उनके गीत सीधे पाठक या श्रोता के दिलों को छू लेते हैं। भावों की सघनता उनके गीतों में है। उन्होंने अपने गीतों (कविता) के विषय में लिखा है ''देखने में सहज साधारण लगती हैं। न फैशनेबुल हैं न नाटकीय, मंचीय तो वह कतई नहीं हैं।

कहने में जो कहती हैं, थोड़े में कहती हैं, विवेक से कहती हैं। ऐसे ढंग से कहती हैं कि कही बात खुल जाय, पूरी तरह स्पष्ट हो जाय।''[51] केदारनाथ अग्रवाल के गीत 'देखने में छोटे हैं' लेकिन घाव गंभीर करते हैं।' भावों को संप्रेषित करने की क्षमता इन संक्षिप्त गीतों में हैं। 'मुट्ठियों में कैद आदमी' नामक गीत सिर्फ छः पंक्तियों का है लेकिन यह सर्वहारा जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने में सक्षम है -

मुट्ठियों में कैद आदमी
धूँसा बना है
दीवार तोड़ने के लिए तना है
मगर दण्ड की
व्यवस्था से अनमना है
संपुटित उसकी चेतना है।[52]

'गठरी-चोरों की दुनिया' नामक गीत सिर्फ सात पंक्ति का है लेकिन भाव का कही भी विखण्डन नहीं होता। आर्थिक तंगी के बावजूद स्वभाव या चरित्र में किसी भी प्रकार का खोट न होने के वजह से ही दाम्पत्य जीवन का सही निर्वाह करने में सफल हुआ जा सकता है। प्रेम को कोई दौलत से खरीद नहीं सकता। वह तो हृदय से निःसृत होता है, इसी भाव को इस गीत में व्यक्त किया गया है -

हे मेरी तुम!
गठरी चोरों की दुनिया में
मैंने गठरी नहीं चुरायी
इसीलिए कंगाल हूँ
भुक्खड़ शाहंशाह हूँ
और तुम्हारा यार हूँ
तुमसे पाता प्यार हूँ।[53]

संक्षिप्त गीत मारक ज्यादा होते हैं। गीत वहाँ सीधे चोट करते हैं, जहाँ पर खोट है। शासकों के शोषक रूप का पर्दाफाश करने वाला गीत 'हर्ष न आया' सिर्फ पाँच पंक्ति का है, लेकिन भावों का कसाव बहुत ज्यादा है -

हर्ष न आया

आया तो बस आया

विषम विषाद,

जब से तुम-भुजंग ने शासन पाया

देश हुआ बरबाद।।[54]

गुलामी और परतंत्रता बहुत बड़ा अभिशाप है। यह बंधन की ऐसी दीवार है जो कभी व्यक्ति को उन्मुक्त साँस लेने नहीं देती। गीतकार को पूरा भरोसा है कि एक दिन यह दीवार जरूर ढह जायेगी और यह धरती उन्मुक्त हो जाएगी। 'यह जो दीवारें घेरे हैं' नामक गीत जो सिर्फ नौ पंक्ति की है यह भाव व्यक्त हुआ है -

हे मेरी तुम!

यह जो दीवारें घेरे हैं

ढह जायेंगी

यह जो सीमायें रोके हैं,

मिट जायेंगी

यह जो आत्मायें बंदी हैं

खुल जायेंगी

धरती की उन्मुक्त दिशाएँ

मुसकायेंगी।[55]

'जमुन जल तुम' नामक काव्य-संग्रह में संग्रहित बहुत ऐसे गीत हैं जो बहुत ही संक्षिप्त हैं। अपनी संक्षिप्तता के वजह से ये गीत पाठकों को तुरंत कंठस्थ हो जाते हैं।

इतना ही नहीं ये संक्षिप्त गीत अपना प्रभाव पाठकों पर जमाये बगैर नहीं रहते। इस काव्य-संग्रह में 'रजनी का प्रेमी', मेरी रूप कुसुम सुकुमार, उसके अंगों के छूने की ; उषा कंचन वक्ष दिखाओ, फूले हैं फूल, आँख से उठाओ, छूटता है गेह, बाग की बहार, उड़ने को उड़ी, तरूओं की शीतल छाया में, घुमड़कर घिर आये हैं, जब सेमल का पेड़, नामक गीत संक्षिप्त आकार के हैं। जब सेमल का पेड़ नामक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

जब सेमल का पेड़ अकेला

बाट जोहकर थक जाता है

तब बेचारे का हर पत्ता

आहत होकर झर जाता है।

आह! नहीं तुम आ पाती हो

सेमल को अपना पाती हो।[56]

'गुलमेंहदी' काव्य-संग्रह के गीत भी संक्षिप्त हैं। इनमें गर्रानाला, आदमी का बेटा, कोयले, जुताई का गाना, मैंने प्रेम अचानक पाया, मेरी प्यारी सबसे सुन्दर, वह जन मारे नहीं मरेगा, पुकार आदि गीत संक्षिप्त आकार के हैं। कम में ही ज्यादा कहने की ताकत और समता केदारनाथ के गीतों में है। बारह पंक्तियों का गीत ''वह जन मारे नहीं मरेगा'' उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

जो जीवन की आग जलाकर आग बना है,

फौलादी पंजे फैलाये नाग बना है,

जिसने शोषण को तोड़ा, शासन मोड़ा है,

जो युग के रथ का घोड़ा है,

वह जन मारे नहीं मरेगा,

नहीं मरेगा!![57]

केदारनाथ अग्रवाल के गीत में युगीन यथार्थ का चित्रण बखूबी हुआ है। खास करके नारी की स्थिति का जिक्र उनके कुछ गीतों में मिलता है। 'ब्याही-अनब्याही' नामक गीत जो सिर्फ आठ पंक्ति की है, उसमें एक ऐसी स्त्री का जिक्र है जो विवाहित होने के बावजूद अविवाहित जैसा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर है क्योंकि उसके पति ने अपने पति धर्म का पालन ही नहीं किया है। गीत संक्षिप्त हैं पर अर्थ की गंभीरता इन आठ पंक्तियों में इस तरह से भरी हुई है कि वह पतियों के चरित्र को उभारने में सक्षम हैं-

ब्याही

फिर भी अनब्याही है,

पति ने नहीं छुआ,

काम न आयी मान-मनौती

कोई एक दुआ

आँखे भर भर

झर झर मेघ हुआ

देही नेह विदेह हुआ।[58]

गीतकार 'निर्माण का गीत' गाता है ताकि हम अपने कर्मों से कुछ निर्माण करें और धरती को स्वर्ग बनायें। वह सबसे आह्वान करता है कि आओ! हम सब मिलकर अपने लिए एक नई दुनिया बसायें। कम शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता गीतकार में कूट-कूट कर भरी हुई है।

आओ रचना रचाएँ

चारू चातुरी दिखाएँ

ज्ञान, कर्म की भुजाएँ

वर्तमान को झुलाएँ

स्वर्ग भूमि को बनाएँ।[59]

लघुता से ही प्रभुता प्राप्त करने वाले गीतकार केदारनाथ के गीत 'देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर' की उक्ति चरितार्थ करते हैं। उनके गीतों में प्रकृति का सुन्दर और स्वस्थ रूप दिखाई पड़ता है। प्रकृति से अदम्य शक्ति ग्रहण करने वाले इस रचनाकार की संवेदना प्रकृति के पेड़ों से है। 'मानव के अग्रज' नामक पाँच पंक्तियों के गीत में उन्होंने पेड़ को मानव का अग्रज कहा है -

पेड़ नहीं

पृथ्वी के वंशज हैं,

फूल लिये,

फल लिये,

मानव के अग्रज हैं।[60]

आठ पंक्तियों की 'हम उन लहरों के समान हैं' नामक गीत में केदारनाथ ने मानव-जीवन को लहरों के समान बताया है। गीत छोटे होने के बावजूद भावों को खंडित नहीं करते -

हम उन लहरों के समान हैं जो आती हैं,

गोल बाँधकर, नाच-नाचकर जो गाती हैं,

गीतों की धन्वा-ध्वनियों-सी लहराती हैं

सावन के झूलों की पेंगे हो जाती हैं।[61]

गीतकार की कामना यही है कि मनुष्य अपने दुःखो को भुलाकर प्रसन्नचित्त रहे और मुस्कुराते हुए अपने जीवन ज्योति को जगमगाते रहे। यही कामना 'आदमी ज्योति से जगमगाता रहे' शीर्षक गीत में है। अपने संक्षिप्त कलेवर के कारण ही गीत पाठकों के अन्दर इन्द्रिय-संवेदना उत्पन्न करने में सक्षम हैं -

गीत गाता रहे, गुनगुनाता रहे,

गीत से जिन्दगी झनझनाता रहे,
झूम जाता रहे, नाच जाता रहें,
आदमी मोद से मुस्कुराता रहे।
ज्योति पाता रहे, चमचमाता रहे,
ज्योति से जिन्दगी नव बनाता रहे,
तम मिटाता रहे, गम हटाता रहे,
आदमी ज्योति से जगमगाता रहे।[62]

अदम्य साहस के प्रतीक पेड़ सदाबहार अपनी जड़े धरती में गड़ाकर दृढ़ता से खड़ा है, वह आँधियों से लड़कर भी हारा नहीं, और सदैव फूल और फल से लदा ही रहा है। इस गीत में गीतकार ने मनुष्य को ऐसी ही दृढ़ता के साथ जीवन-जीने के लिए प्रेरित किया है। 'सदाबाहर' नामक छः पंक्तियों के गीत को देखा जा सकता है -

जड़े भूमि में हैं गड़ाए खड़ा!
महाबाहुओं का विटप है बड़ा!!
लड़ा आँधियों से हमेशा लड़ा!
न हारा न टूटा न पीला पड़ा!!
नए फूल, फल, पात से है लदा!
जवानी बसन्ती रही है सदा!![63]

(घ) निर्बन्धता

निर्बन्धता का अर्थ है - मुक्त होना। गीत में निर्बन्धता का अर्थ गीत का बंधन मुक्त होना है। किसी कविता के मुक्त होने का मतलब है, शिल्पगत मुक्तता, भावगत नहीं। भाव तो स्वतः मुक्त रहता है चाहे वह किसी भी रूप में रहे। गीत की निर्बन्धता इस बात की द्योतक है कि वह परंपरागत छन्द से मुक्त हो। छन्द का बंधन भावों को

अवरूद्ध कर देते हैं। समय के बदलाव के साथ-साथ यह महसूस किया गया कि भावों की अभिव्यक्ति बंधन मुक्त होकर ही किया जा सकता है। परंपरागत सवैया, धनाक्षरी आदि पद-शैली से मुक्त होना ही निर्बन्धता है। आधुनिक युग में गीत ने अपने लिए एक नवीन 'छन्दमुक्त-छंद' का निर्माण किया, जिसमें प्रत्येक गीत का अपना अलग छन्द निर्मित हो जाता है। गीत पर भाषा, लय, शिल्प, भाव किसी भी स्तर पर बंधन नहीं रहता। इसका मतलब यह कि गीत अनियंत्रित एवं अनिश्चित गुणों का धारक भी नहीं। गीत की लय, भाषा, देश और काल की सीमाओं में नहीं अटती। इसमें इतनी क्षमता होती है कि भाषा की समझ के बिना भी किसी देश या काल का व्यक्ति बिना इसके प्रभाव में आये नहीं रह सकता। वास्तव में गीत की निर्बन्धता गीत की छंद मुक्ति के लिए नहीं, भाव के नवीन छंद निर्धारण से है।[64] गीत पारंपरिक छंद के बंधन से मुक्त होते हैं, जहाँ भावों का उद्वेलन ज्यादा होता है और वे श्रोता-पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल के गीत पारम्परिक छंद के बंधन से मुक्त हैं। उनमें भावों का उद्वेलन ज्यादा है। वे सीधे पाठकों के दिलों को छू लेते हैं और अपना प्रभाव डालने लगते हैं। उनके गीतों में लय है तुक है। उनके गीत छंद-मुक्त छंद है। एक नये स्वरूप में वे एक नया छंद बन जाते हैं। निर्बन्धता के तत्व से पूरित केदारनाथ के गीत दाम्पत्य-प्रेम, प्रकृति, राजनीति, सामाजिक विद्रूपता आदि से संबंधित हैं। कहीं भी भावों का अवरोधन नहीं होता। जो कुछ कहना चाहते हैं वह गीतों में अच्छी तरह से व्यक्त हो जाता है।

प्रेमभाव को व्यक्त करता हुआ 'जब नाचे बिजलिया' नामक गीत पारम्परिक छंद के बंधन से मुक्त एक नया छंद का निर्माण करता है -

जब नाचे बिजलिया बादल में

बरजोरी हृदय के आँचल में

तब तुम आना-तब तुम आना।

जब बोले पपिहरा कानन में,

अनुरागी हृदय के आँगन में

तब तुम आना-तब तुम आना।[65]

यहाँ प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पंचम पंक्ति में तुक में समानता है और तृतीय तथा छठे पंक्ति में तुक है। अतः यह गीत निर्बन्ध है।

आज के जमाने में बेलगाम दौड़ते हुए घूस के घोड़े का उल्लेख करते हुए गीतकार ने इस भ्रष्टाचार से लोगों को रू-ब-रू कराया है। वेतन के पैसे बचाने और नाजायज कमाने के चक्कर में लोग घूस लेने लगे हैं और इसपर कोई लगाम नहीं। यह बात 'स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना' नामक गीत में उल्लिखित है -

बेलगाम दौड़ता है घूस का घोड़ा

रौंदने से इसने किसी को नहीं छोड़ा

बेकार हो गया है कानून का कोड़ा

रोक नहीं सकता इसे कोई रोड़ा

दम इसने कब तोड़ा?[66]

शिक्षितों के और अफसरों के गरूर को चित्रित करनेवाला 'अफसर' नामक गीत चुटीला और व्यंग्य प्रधान है। बंधन रहित छंद की यही खासियत है कि वे भावों को व्यक्त करने में सहज सरल होते हैं -

पढ़ गया

औरों से ज्यादा

बढ़ गया

अफसर हूँ,

इसीलिए ऐसा हूँ,

दूसरो की छाती पर

चढ़ा हुआ बैठा हूँ।[67]

'गाँव में थाने' नामक गीत भी पुलिसिया अत्याचार का बयान करता है -

गाँव में थाने

और थानों में सिपाही हैं

थाने के जियाये

राज-तंत्र के सिपाही हैं

जनता को मिटाये

मार-तंत्र से सिपाही हैं।[68]

किसान जीवन के यथार्थ को चित्रित करता हुआ 'खेत और खेत है' नामक निर्बन्ध गीत किसके अंतर्मन को नहीं छू लेता। खेत खाली पड़े हैं, न हरियाली है न फसल -

खेत और खेत हैं

खाली पड़े-सूने पड़े खेत हैं

तापित पड़े - शापित पड़े खेत हैं

आकुल अकुलाते पड़े खेत हैं

चित्त पड़े खेत हैं

उतान पड़े खेत हैं

हारे पड़े खेत हैं

खेत और खेत है।[69]

दृढ़ता को व्यक्त करता 'अडिग रहा हूँ - अडिग रहूँगा' नामक गीत में छंद का कोई बंधन नहीं हैं फिर भी वह छन्दोबद्ध है। इस छन्द का कोई पारम्परिक नाम तो नहीं है पर यह भाव को उद्वेलित करने और दृढ़ता को बरकरार रखने में सक्षम है -

यह जो मैं हूँ देवदार की नव तरुणाई

नील रहस्यों तक जाने की दृढ़ ऊँचाई

चट्टानों में जड़े गाड़कर मैंने पाई

जहाँ नहीं जी पाया कोई वहीं जिऊँगा,

अडिग रहा हूँ - अडिग रहूँगा - नहीं गिरूँगा,

लौट गयी हर आँधी जो आकर टकराई।[70]

प्रकृति को चित्रित करने वाला 'धूप का गीत' छन्दमुक्त-छन्द में रचित है और संक्षिप्त है। प्रकृति मानवीकरण के रूप में यहाँ चित्रित हुई है -

धूप धरा पर उतरी

जैसे शिव के जटाजूट पर

नभ से गंगा उतरी।

धरती भी कोलाहल करती

तम से ऊपर उभरी।।

धूप धरा पर बिखरी।।[71]

'रोया जहाँ' नामक गीत में गीतकार ने अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप में गीत की ही प्रेरणा पाता है। बन्धन रहित गीत की यही तो खासियत है कि वह अपने हरेक भाव को प्रकट करने में सक्षम है -

रोया जहाँ

वहाँ पर मैंने गाना गाया,

गीतों का अक्षयवट

अबकी बार उगाया,

अंतरिक्ष तक

गूँज उठी मेरी स्वर-ध्वनियाँ,

धरा-धूल पर

लगीं नाचने छवि की परियाँ।[72]

छंदो के अनुशासन से मुक्त गीत अपने भाव-बोध को उजागर करने में सक्षम हैं। स्वतंत्र व्यक्ति की तरह स्वतंत्र रचनाएँ भी पाठकों के हृदय पर अठखेलियाँ करती हैं। 'विधाता से' नामक निर्बन्ध गीत की कुछ पंक्तियों को देखा जा सकता है -

धुएँ की डगर में,

विधाता! न जाओ!

धरा की डगर में

चलो चमचमाओ!!

भयंकर गगन है,

भयावह लगन है,

तुम्हें भी रूदन है,

हमें भी रूदन है,

मगन मस्त चोला,

बनो औ, बनाओ!

दियों की दिवाली

हियों में जलाओ।।[73]

पारंपरिक छन्दों की डगर से फिसलकर गीत नये छन्द में ढल गये से लगते हैं। वे बंधन से मुक्त होकर और भी अर्थ-गांभीर्य हो चुके हैं। गीतकार की चेतना को वे और अधिक संप्रेषित करने लगे हैं। 'गाओ साथी' नामक गीत की दो-चार पंक्तियाँ उदाहरणार्थ देखा जा सकता है-

गाओ साथी! उन गीतों को

जो गाते हैं नंगे निर्धन,

पेट खलाये, रीढ़ झुकाये, जो गाते हैं टूटे निर्धन,

बोझा ढोते, राहें टोते, जो गाते हैं रोते निर्धन,

और डिगाते हैं, शोषक का दिन-दिन-दूना जो सिंहासन।[74]

छन्द मुक्त छांदस गीत का स्वरूप 'इससे मैं जीवित हूँ' नामक गीत मैं दिखाई पड़ता है। गीत तुकात्मकता तो है पर पारंपरिक छन्द के बंधन से मुक्त हैं। संक्षेप में ही गीतकार के भावों को व्यक्त करने में ये सक्षम हैं -

साँसों में, सुधियों में, आँखों में, अंगियों में,

रूप अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ

छन्दों में, छवियों में, काव्यों में, कवियों में

प्रेम अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ

गावों में, गलियों में, फूलों में, कलियों में,

गीत अभी जीवित है इससे मैं जीवित हूँ।[75]

(ङ) संगीतात्मकता

रूप-संगठन की दृष्टि से स्वरबद्धता गीतिकाव्य का अनिवार्य धर्म है। इसी से उसके शब्द-चयन या छंद-योजना का निर्धारण होता है। वैसे कुछ गीतियाँ ऐसी भी हैं जो स्वर-बद्ध नहीं होतीं फिर भी उनमें एक आंतरिक लय वर्तमान रहती है। वस्तुतः यही आंतरिक गीतात्मकता गीतिकाव्य की निजी पहचान है जो उसे अन्य काव्य-रूपों से अलग और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

संगीत के बिना गीत की और गीत के बिना संगीत की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। संगीत ही गीत को गेयता प्रदान करता है। 'गीत की पहचान उसकी गेयता में निहित होती है, इसलिए गीत तभी गीत है जब वह गेय हो।'[76] गेय होने का

मतलब है, उसमें गान के तत्व हों और वह गायी जा सके। इसलिए 'गेयता, और कुछ नहीं, गीत की गतिमयता है। गीत की यह गतिमयता जब स्वरों के भराव से एक सुनियोजित क्रमबद्धता पा लेती है, तब संगीतात्मक हो जाती है'।[77] संगीतात्मक हो जाने का मतलब है कि गीत को उसका सुनियोजित प्रवाह मिल गया है और वह गाया जा सकता है। कोई भी, कभी भी, उसे गाये तो उसे उसी प्रवाह से गाना होगा। उस प्रवाह की दिशा निर्धारित होती है। निर्धारित दिशा से उच्चरित होकर ही गीत ग्रहणीय होता है और ग्रहण करने वाले पर अपना प्रभाव डालता है। लेकिन 'गीत मात्र-संगीत की अभिव्यक्ति या इकाई नहीं होता। जो गीत मात्र-संगीत की अभिव्यक्ति या इकाई होता है, वह काव्य का गीत नहीं होता; वह तो मात्र-ध्वनियों का नियोजित प्रवाह होता है। काव्य के गीत और संगीत के गीत का यह स्पष्ट अन्तर कभी अवहेलित करने योग्य नहीं है'।[78]

'संगीतात्मकता काव्य के गीत की लय को अधिक स्वर-मुखर बनाती है और अपने सूक्ष्म अमूर्तन से कथ्य को अधिक स्पंदनशील कर देती है।'[79] गीत अपने जिस रूप और अर्थ में आज गीत स्वीकार किया जाता है, अपने उस रूप और अर्थ में वह पहले स्वीकार नहीं किया जाता था। कारण यह था कि पहले कभी वह सम्भावनाएँ उत्पन्न नहीं हुई थीं, जो सम्भावनाएँ आज उत्पन्न हो चुकी हैं और गीत को अपने अनुरूप गढ़ रही हैं। गीत भी अपने रूप और अर्थ के लिए परिवेश पर उतना ही निर्भर होता है, जितना आदमी और आदमी के कर्म और भाव और विचार, परिवेश पर निर्भर होते हैं। संगीत, गीत की आत्मा में रचा बसा है। यह भी कहा जा सकता है कि छंद, लय और संगीत ही वे तत्व हैं जो गीत और कविता को गद्य से अलग करते हैं। 'गीत रचना में ध्वनियों का सर्वाधिक महत्व होता है, उसका नाद-सौन्दर्य, भाव संकुलता और धर्म विस्तार बहुत दूर तक रचनाकारों की संगीत-चेतना, छंद-योजना और लय-संहति पर निर्भर है।'[80] डॉ० शंम्भूनाथ सिंह के विचार में - ''वस्तुतः गेयता ही ऐसी कड़ी है जो आधुनिक अर्धसभ्य एवं अशिक्षित मानव से जोड़ती है। लोक-काव्य अधिकांश गेय होता है, जब-जब काव्य आधुनिकता के दबाव के कारण सामान्य लोक-

जीवन से दूर पड़ जाता है, तब क्रांतिकारी दूरदर्शी कवि लोक-काव्य में अनेक तत्वों को अपनाकर शिष्ट काव्य को लोकजीवन से जोड़ते हैं। इस प्रक्रिया में गेयता तो आ ही जाती है साथ ही परंपरागत गीत पद्धति का बहुत कुछ नवीनीकरण भी हो जाता है।''[81] गेयता के लिए 'लय' को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। गीत का छांदसिक होना भी गीत की संगीतात्मकता के अनुकूल होता है। बिना संगीतात्मकता के गीत का प्रभाव बरकरार नहीं रह पाता।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में संगीतात्मक तत्व पूर्णतः दिखाई पड़ता है। उनके गीत गेय हैं, छन्द-मुक्त छंद हैं, और लयात्मक तथा तुकात्मक हैं। 'जमुन जल तुम' काव्य-संग्रह में संग्रहित ''मीठे मीठे प्यार की बहार है'' नामक गीत संगीतात्मकता, तुक और लय से भरपूर है। इस गीत की कड़ियाँ दर्शनीय हैं -

मीठे मीठे प्यार की बहार है।
चांदनी के आज रूप-रश्मि का सिंगार है।
फूली हर एक डाल फूल से अपार है।
फूल में सुगंध है मरंद है निखार है।
फूल की सुगंध में वसंत का विहार है।।
मीठे मीठे प्यार की बहार है।[82]

प्रेम संबंधी गीत 'ये दो प्राण' अपने तुक, लय और संगीतात्मकता के लिए बेजोड़ हैं। संगीतात्मक होने के लिए जिन विशेषताओं की जरूरत होती है वह सब इस गीत में विद्यमान है-

ये दो प्राण! पहाड़ी देखो; कितना है मधु-प्यार!
सदियों से अब तक करती हैं आलिंगन अभिसार!
निर्झर इसके, झरने उसके, गाते गाते गीत,
स्वर-सम्मेलन में हिलमिलकर, कर लेते हैं प्रीत!

प्यारी-प्यारी कलियाँ इसकी, उसके फूल किशोर

गंध-अंध हो अनिलांचल में, होते प्रेम-विभोग![83]

'मेरी प्यारी सबसे सुन्दर' नामक गीत संगीतात्मकता के तत्व से पूरित है -

मेरी प्यारी सबसे सुन्दर

दिन से सुन्दर, निशि, से सुन्दर

सुन्दरतर रवि-शशि से सुन्दर

मेरी प्यारी सबसे सुन्दर![84]

'नेताशाही से' नामक गीत में पंक्तियों में अंत में तुकबन्दी है, लय है और पारम्परिक छन्द से मुक्त छन्दोबद्धता है। पुनरूक्ति के माध्यम से व्यक्त पंक्तियों में संगीतात्मकता का तत्व ज्यादा स्पष्ट है। गीत में यति, गति और लय है जो इसकी एक बेजोड़ कड़ी है-

राज करो जी! राज करो जी! दिल्ली के दरबार में।

शान धरो जी! शान धरो जी! अपनी शक्ति कटार में।।

वार करो जी! वार करो जी! अपनी जयजयकार में।

खून करो जी! खून करो जी! नेताशाही प्यार में।।[85]

संगीतात्मकता के गुण से भरपूर गीत है 'ओसौनी का गीत'। इस गीत से ऐरों-गैरों को ताल ठोंककर भगाने की बात कही गयी है। गीत में प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ हैं। पंक्तियों के अंत में तुक है, साथ ही ओसाते समय टोकड़ी से गिरे अनाज में भी एक झंझनाहट की मधुर ध्वनि हैं-

साइत आइ साइत आई बहय गजब की बैरा

काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा

दौरी साधो अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा

ताल ठोंकि के मारि भगावौ जेते ऐरा गैरा।[86]

गीतों में केदारनाथ अग्रवाल का गीत 'बसन्ती हवा' काफी लोकप्रिय है। इसमें प्रकृति का मानवीकरण चित्रण तो है ही, साथ ही लयात्मकता का गुण भी है -

हवा हूँ, हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ।

वही हाँ, वही जो युगों से गगन को

बिना कष्ट-भ्रम के सम्भाले हुए है,

हवा हूँ, हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ।[87]

'माँझी न बजाओ बंशी' नामक गीत के संगीतात्मकता को तथा उसकी लय, सुर को सुनकर कोई भी व्यक्ति उस गीत के तरफ आकर्षित हो जाता है। यह गीत केदारनाथ के गीतों में श्रेष्ठ है -

माँझी! न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता

मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता

जल का जहाज कैसे पल-पल डोलता

माँझी! न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता।[88]

'धीरे उठाओ मेरी पालकी' नामक गीत भी केदारनाथ के अन्य गीतों के मुकाबले काफी सरस तथा भाव-संवेद्य है। पंक्तियों के अंत में तुकबन्दी की छटा है। कुल मिलाकर इस गीत में गीत का प्रमुख तत्व संगीतात्मकता का दर्शन होता है -

धीरे उठाओ मेरी पालकी

मैं हूँ सुहागिन गोपाल की

बेला है फूलों के माल की

फूलों के माल की-

घीरे उठाओ मेरी पालकी।[89]

'आदमी ज्योति से जगमगाता रहे' नामक गीत में संगीत तत्व की उपस्थिति देखी जा सकती हैं। सिर्फ आठ पंक्तियों की यह गीत किसके मन पर अपना छाप नहीं छोड़ जाती -

गीत गाता रहे, गुनगुनाता रहे,
गीत से जिन्दगी झनझनाता रहे,
झूम जाता रहे, नाच जाता रहे,
आदमी मोद से मुस्कुराता रहे।
ज्योति पाता रहे, चमचमाता रहे,
ज्योति से जिन्दगी नव बनाता रहे,
तम मिटाता रहे, गम हटाता रहे,
आदमी ज्योति से जगमगाता रहे।[90]

(च) भावप्रवणता

गीत एक सहज साध्य काव्य-विधा है। उसमें किसी प्रकार के श्रम की विवशता नहीं होती। उसका संबंध हृदय के तीब्रावेगों से होता है और वह नितान्त सहजता के साथ अभिव्यक्त होता है। भावावेग की तीव्रता को अभिव्यक्त होने से रोकना गीतकार के लिए असंभव होता है। वह अनुभूति को कलात्मक रूप देने का भी विवेक रखता है। उसका यह विवेक रचना के क्षणों में सहजक्रिया[91] के रूप में कार्य करता है, क्योंकि निजी तौर पर गीति का शिल्प स्वतः उद्भूत होता है।

भावप्रवणता का संबंध भी गीत के विषय-वस्तु से होता है। आत्मानुभूति की भावमयी प्रस्तुति ही गीत की भावप्रवणता है। गीत में 'भाव' तत्व भी प्रधान होता है क्योंकि गीत में भावात्मक संस्पर्श को ही लयात्मक वाणी दी जाती है। मनुष्य के विचार ही मंथन एवं चिंतन के साथ भाव में बदलने लगता है जो एक उन्माद का रूप

लेता है। गीत में भावप्रवणता तीव्र भावोन्माद में हुए बिना नहीं आ सकती। गीतकार की सहज अंतःप्रेरणा जितनी तीव्र होगी भाव उतना ही गहन होगा, भावप्रवणता उतनी ही व्यापक होगी। भावों की गहनता ही आत्मानुभूति के भावावेशमयी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति का कारक है। ''इस अंतःप्रेरणा में इस प्रकार की अस्वाभाविक एवं अनियंत्रित गति होती है कि उसमें आनेवाले विचार को शब्द पूरी तरह बाँध नहीं पाते। कवि को यथाक्रम लिखना कठिन हो जाता है, बीच में शब्द छूटते जाते हैं, कवि अपनी तन्मयता में आगे बढ़ता जाता है।''[92] यह तन्मयता ही गीत को भावात्मक रूप से मजबूत बनाती है। बिना तन्मय हुए गीत को भावप्रवण नहीं बनाया जा सकता। गीत बिना भावप्रवणता के प्रभावशाली नहीं बन सकता। गीत की सार्थकता तीव्र, गहन और सत्य-युक्त भावाभिव्यक्ति में ही है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में भावप्रवणता का तत्व भी मौजूद है। एक भावुक एवं प्रगतिवादी रचनाकार होने के नाते उनके गीतों में भाव की द्रवणशीलता बहुत अधिक है। अपने गहन अनुभव के निचोड़ से निःसृत गीत में उन्होंने भावों का जैसा संयोजन शब्दों में किया है वह काफी सराहनीय है। शासन के बदलने से देश का कोई बदलाव नहीं हुआ, समस्यायें वही बरकरार रही हैं। धरती का भार कम होने के बजाय और दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इसी अनुभूति को उन्होंने 'वृद्ध हुए हम' नामक गीत में अभिव्यक्त किया है -

हे मेरी तुम

वृद्ध हुए हम

        क्रुद्ध हुए हम

डंकमार संसार न बदला

प्राणहीन पतझार न बदला,

बदला शासन, देश न बदला,

राजतंत्र का भेष न बदला,

भाव-बोध-उन्मेष न बदला,

हाड़-तोड़ भू-भार न बदला![93]

बेटी की विदाई के क्षण को गीतकार ने अपने गीत में निबद्ध किया है। अनुभूति की सधनता भाव को द्रवित कर गीत की सृष्टि करती है। विदाई के बेला में बेटी के विलाप से पत्थर भी पिघलते हुए नजर आते हैं और उसकी विरह से समस्त प्रकृति एवं वातावरण शोकग्रस्त हो गया सा लगता है। 'छूटता है गेह'' नामक गीत की पंक्तियों में भावप्रवणता दिखाई पड़ती है -

छूटता है गेह गोरी जा रही है

वेदना अब आँसुओं से गा रही है

कंठ से उमड़ी ह्रदय पर छा रही है

मायके की याद मन भरमा रही है

छूटता है मेरु, गंगा जा रही है

पत्थरों का भी ह्रदय पिघला रही है

पादपों को भेंटती अकुला रही है

गीत मिलनातुर विकल अब गा रही है।[94]

गीतकार की संवेदना उन औरतों के प्रति ज्यादा है जो अपने पति से प्रताड़ित हैं और उनपर आश्रित हैं। जो कुछ भी रूखा सूखा मिलता है उसे खाकर जीवन बसर करती हैं। जीवित होने के बावजूद जिन्दगी का आनन्द नहीं उठा पातीं। 'घर की घुटन में पड़ी औरतें' नामक गीत की पंक्तियाँ देखी जा सकती है -

घर की घुटन में पड़ी औरतें

जिन्दगी काटती हैं

मर्द की मुहब्बत में मिला,

काल का काला नमक चाटती है,

जीती जरुर हैं

जीना नहीं जानती

मात खाती

मात देना नहीं जानती।[95]

'मैं' नामक गीत में गीतकार ने किसानों के प्रति संवेदना का भाव रखते हुए उन्हें शोषण मुक्त कराने के लिए चेतना जागृत करना चाहता है, क्योंकि शोषण के दानव को उन्होंने प्रत्यक्ष आँखों से देखा भी है और उन परिस्थितियों को महसूस भी किया है। भाव, संवेदनशीलता के वजह से द्रवित होकर प्रवाहमान हो सका है-

गीत हूँ लेकिन किसानो!

मैं तुम्हारी वेदना हूँ।

बंधनों से मुक्त होने की

तुम्हारी चेतना हूँ।।

चोट पर मैं चोट करने

की तुम्हारी प्रेरणा हूँ।

आत्मवंचक प्राणघाती

मैं नहीं अवहेलना हूँ।।[96]

केदारनाथ अग्रवाल के गीत में प्रकृति की जीवन्त चित्रण मिलता है। भावों का प्रवाह उनके गीतों में है। 'कोयले' नामक गीत में कोयले के माध्यम से अत्याचार रूपी अंधकार को मिटाकर जीवंत अंगार बनने की प्रेरणा देते हुए गीतकार ने कहा है-

जल उठे हैं तन वदन से

क्रोध में शिव के नयन से।

खा गये निशि का अँधेरा,

हो गया खूनी सबेरा।

जग उठे मुरदे बेचारे;

बन गये जीवित अँगारे।

रो रहे थे मुँह छिपाये

आज खूनी रंग लाये![97]

ठेले खींचने वाले मजदूर की व्यथा से संवेदनशील गीतकार प्रभावित और व्यथित होकर उनके यथार्थ स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है 'भरा ठेला खींचता हूँ' नामक गीत में। गीतकार की व्यथा ऐसे लोगों के जीवन को देखकर ज्यादा उजागर होती है। भाव द्रवित होकर इस तरह कुरेदते हैं कि गीत की कड़ियाँ अपने-आप जुड़ जाती हैं -

भरा ठेला खींचता हूँ

खड़े सूखे चने चाबे

रोट मोटा एक खा के

कड़ी कंकड़ की सड़क पर बाहुबल से खींचता हूँ,

भरा ठेला खींचता हूँ

हाथ में गट्टे पड़े हैं

पाँव में ठट्टे पड़े हैं

और इस पर तर पसीने से अकेला खींचता हूँ।[98]

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीत 'पाँव न पकड़ो' में शान से जीने की प्रेरणा दी है। पाँव पकड़कर या गिड़गिड़ाकर कोई भी शोषकों से सहानुभूति नहीं पा सकता। अतः जीवन जीने के लिए यथार्थ की धरातल की जरूरत होती है -

पाँव न पकड़ो

इनके-उनके

कंचन के सिर-काँधे जिनके,

पाँव नहीं हैं जिनके अपने

झूठे होते जिनके सपने।[99]

सर्वहारा जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करनेवाला गीत है 'उनको महल-मकानी'। इसमें सर्वहारा और पूँजीपति के स्थिति को दिखाया गया है, साथ ही सर्वहाराओं के मनोभाव को भी चित्रित किया गया है -

उनको

महल-मकानी

हमको छप्पर-छानी

उनको

दाम-दुकानी

हमको कौड़ी कानी

सच है

यही कहानी

सबकी जानी-मानी।[100]

केदारनाथ अग्रवाल को अपने देश, अपनी धरती और मिट्टी से बड़ा प्रेम था। वे मिट्टी में रचे-बसे रचनाकार हैं। अपने देश के प्रति गहरी आस्था और संवेदना उनके मन में है। मृत्यु के बाद भी वे अपने देश से जुदा नहीं हो सकते, ऐसा उनका विश्वास है। ''मर जाऊँगा तब भी ...'' नामक गीत में उन्होंने भाव विह्वल हो यह व्यक्त किया है कि वे अपने देश को सोना से चमकाएँगे। गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मर जाऊँगा तब भी तुमसे दूर नहीं मैं हो पाऊँगा
मेरे देश, तुम्हारी छाती की मिट्टी मैं हो जाऊँगा
मिट्टी की नाभी से निकला मैं ब्रह्मा होकर आऊँगा
गेहूँ की मुट्ठी बाँधे मैं खेतों-खेतों छा जाऊँगा
और तुम्हारी अनुकम्पा से पक कर सोना हो जाऊँगा
मेरे देश, तुम्हारी शोभा मैं सोना से चमकाऊँगा।[101]

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने स्वयं को सूरज के प्रकाश के साथ तुलना किया है। जिस प्रकार सूरज स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को भी प्रकाश देता है उसी प्रकार वे अपने जीवन तथा कर्मों से स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को भी एक नई दिशा, नई राह दिखाना चाहते हैं। रचनाकार का जीवन देश और समाज के लिए समर्पित होना चाहिए। रचनाओं से समाज की भलाई होनी चाहिए, तभी उसकी सार्थकता सिद्ध हो सकती है। 'प्रकाश का सूरज' नामक गीत ऐसे ही भावों को प्रवाहित करता है -

मैं हूँ
आग का
प्रकाश का सूरज
स्वयं को प्रकाशित करता
सबको प्रकाशित करता
रोज-रोज उगता
रोज-रोज डूबता
सुबह हुई तो उदय हुआ
शाम हुई तो अस्त हुआ।[102]

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीत 'पेट की फरियाद' में उस यथार्थ का उल्लेख किया है जहाँ लोग पेट की आग से परेशान होकर अपना ईमान और ज़मीर बेचने पर मजबूर हो जाते हैं। अंतरात्मा के स्वीकार न करने पर भी ऐसे ठोस कदम उठाना आदमी की मजबूरी बन जाती है-

मैं नहीं अब तक किसी भी दिन बिका हूँ
किन्तु अब बाजार बिकने जा रहा हूँ!
काव्य का ईमान पत्थर मारता है,
पेट की फरियाद सुनने जा रहा हूँ!![103]

भारतीय वाङ्मय में वैदिक युग से आज तक गीतिकाव्य का निर्विच्छिन्न विकास होता चला आ रहा है। साहित्य का समाजशास्त्र बताता है कि गेयता आदिम मनुष्य की प्रकृति की देन है। हर्षोल्लास के क्षणों में आदिम मनुष्य गाता रहा है और पीड़ा के क्षणों में भी गाकर ही अपनी वेदना प्रकट करता रहा है। सभ्यता के बढ़ते चरणों के साथ मनुष्य की कला-चेतना का भी विकास हुआ। उसने संगीत की शक्ति को पहचाना, उसका पृथक रूप से विकास किया। धीरे-धीरे समय के बदलाव के साथ-साथ रचना में भी परिवर्तन होने लगा। आदिकाल से लेकर प्रायः छायावाद काल तक पारंपरिक छन्द में गीत लिखे जाते रहे हैं। लेकिन छायावाद के बाद के काल में निराला ने छन्द के बंधन से गीत (कविता) को मुक्त किया। परवर्ती साहित्यकार उसका समर्थन कर रचना करने के लिए अग्रसर हुए। अपने भावों, और विचारों को गीतों के माध्यम से व्यक्त करने लगे। ये गीत पाठकों को ज्यादा ग्रहणीय हुए। गेयता के वजह से गीत में संगीतात्मकता का तत्व निहित हुआ और पाठकों को वे गीत अपनी तरफ आकर्षित करने लगे। विद्वानों ने गीत के छः तत्व या विशेषताओं की चर्चा की है, ये विशेषताएँ हैं आत्माभिव्यंजना, भावप्रवणता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, प्रभावान्विति, निर्बन्धता। ये छः तत्व ही गीत के प्राण हैं। इनकी अनुपस्थिति में गीत, गीत कहलाने में सक्षम नहीं होगा।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी गीतकार हैं। उनके काव्य-संग्रहों में गीत भी हैं। उन गीतों का अध्ययन करने पर गीत के छः तत्व स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। संगीतात्मकता और संक्षिप्तता उनके गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। अनुभूति की अभिव्यक्ति भी बेजोड़ है। गीतों को पढ़ने पर लगता है कि गीतकार की आत्मानुभूति परानुभूति और सर्वानुभूति बन गयी है। इसके अलावा भाव की द्रवणशीलता भी उनके गीतों मे स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनके गीत पाठकों और श्रोता पर प्रभाव डाले बगैर नहीं रहते। गीत में जो संवेदना गीतिकार ने दिखाई है वही संवेदना पाठकों के अन्दर भी जागृत हो जाता है। वे गीतों में इस तरह से उसकी प्रस्तुति करते हैं कि उसकी छाप हृदय पर अंकित हुए बगैर नहीं रहता। जहाँ तक निर्बन्धता का सवाल है वहाँ गीतकार ने गीतों में एक नये छन्द का निर्माण किया है जो पारंपरिक छन्द के बंधन से मुक्त हैं। मुक्त होने के बावजूद वे अपने अर्थ-गांभीर्य को छोड़ते नहीं। तुकबंदी और लयात्मकता तो इनके गीतों में है ही। अतः कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल एक अच्छे गीतकार हैं और उनकी पहचान हिन्दी साहित्य में एक गीतकार के रूप में बने, यही इस शोध का उद्देश्य भी है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1) राधेश्याम बंधु (सं.) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं.30

2) वही, पृ. सं. 32

3) वही, पृ. सं. 33

4) वही, पृ. सं. 40

5) वही, पृ. सं. 47

6) वही, पृ. सं. 99

7) वही, पृ. सं. 151

8) केदारनाथ अग्रवाल - विचार बोध, पृ. सं. 41

9) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 8

10) राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 96

11) अनुसंधान, जुलाई, 2013, पृ. सं. 71

12) डॉ. मंजु गुप्ता - आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्पविधान, पृ. सं. 11

13) अनुसंधान, जुलाई, 2013, पृ. सं. 72

14) राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 95

15) नेरन्द्र पुण्डरीक (सं.)- केदारनाथ अग्रवाल : मेरे साक्षात्कार, पृ. सं. 130

16) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 46

17) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 45

18) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 63

19) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 72

20) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. 55

21) वही, पृ. सं. 39

22) केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, पृ.सं. 120

23) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 103

24) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ.सं. 92

25) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 198

26) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 34

27) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 87

28) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 89

29) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 66

30) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 85

31) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 96

32) डॉ. उमाशंकर तिवारी - आधुनिक गीतिकाव्य, पृ. सं. 32

33) अनुसंधान, जुलाई - 2013, पृ. सं. 74

34) वही, पृ. सं. 75

35) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 73

36) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 80

37) केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं 81

38) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं 61

39) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 113

40) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 99

41) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 138

42) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 81

43) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 77

44) वही, पृ. सं. 108

45) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 53

46) राधेश्याम बंधु (सं.) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 34

47) शंभुनाथ सिंह - छायावाद युग, पृ. सं. 192

48) अनुसंधान, जुलाई, 2013, पृ. सं. 74

49) वही, पृ. सं. 74

50) नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 51

51) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 9

52) वही, पृ. सं. 20

53) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 73

54) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 34

55) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 164

56) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 79

57) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 131

58) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़े की देह, पृ. सं. 186

59) वही, पृ. सं. 234

60) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 35

61) वही, पृ. सं. 92

62) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 81

63) वही, पृ. सं. 76

64) अनुसंधान, जुलाई - 2013, पृ. सं. 75

65) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 77

66) केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं. 81

67) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 72

68) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 61

69) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 178

70) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 34

71) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 32

72) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 92

73) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 147

74) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 133

75) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 140

76) केदारनाथ अग्रवाल - विचार बोध, पृ. सं. 41

77) वही, पृ. सं. 41

78) वही, पृ. सं. 41

79) वही, पृ. सं. 42

80) अनुसंधान, जुलाई, 2013 पृ. सं. 73

81) राधेश्याम बंधु (सं.) - नवगीत और उसका युगबोध, पृ. सं. 111

82) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 72

83) वही, पृ. सं. 68

84) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 17

85) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 53

86) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 108

87) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 20

88) वही, पृ. सं. 25

89) वही, पृ. सं. 26

90) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 81

91) डॉ. उमाशंकर तिवारी - आधुनिक गीतिकाव्य, पृ. सं. 32

92) अनुसंधान, जुलाई, 2013 पृ. सं. 73

93) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 17

94) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 85

95) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ.सं. 158

96) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 87

97) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 61

98) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 112

99) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 53

100) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 29

101) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 103

102) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 99

103) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 135

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

केदारनाथ अग्रवाल के गीत : भाषा तथा शिल्प विधान

क) भाषा का स्वरूप

ख) अलंकार योजना

ग) प्रतीक विधान

घ) बिम्ब विधान

ङ) मिथकों का प्रयोग

भाषा ही किसी भी रचना को प्रकाश में लाती है। अनुभूतियाँ भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती हैं और यही अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होकर रचना का रूप ले लेती हैं। रचनाकार भाषा के द्वारा ही कल्पना का रंग चढ़ाकर अपने विचारों को मूर्त-रूप देकर पाठक के सामने लाता है। भाव, भाषा एवं शिल्प के माध्यम से ही कला के रूप में परिणत हो जाता है। अलंकार तो रचना के लिए श्रृंगार का काम करता है। वह तो सौन्दर्यवर्धक प्रसाधन है। संयमित सौन्दर्य ही पाठक को आकर्षित करता है और रचनाएँ भाव एवं कला दोनों के दोले पर चढ़कर पाठकों की कंठहार बन जाती हैं। रचनाकार अपनी भाषा को सामर्थवान बनाने के लिए बिम्ब, प्रतीक आदि की सहायता लेता है। प्रतीक किसी भाव, विचार या वस्तु के चित्रांकन रूप में संकेत प्रस्तुत करने का माध्यम होता है, जो वास्तविक स्थिति परिस्थिति का परिज्ञान कराने वाला चिह्न मात्र होता है। बिम्ब किसी भाव, विचार या वस्तु का सिर्फ चित्रांकन ही नहीं करता, बल्कि उसे वास्तविक स्थिति परिस्थिति के रूप में दृश्यवत् उपस्थित कर उसे इंद्रिय संवेद्य भी बना देता है। ''मिथक स्वयं में साहित्य की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मानव-मन की भावाभिव्यक्ति इतिहास एवं समाजशास्त्रीय आयामों को छूते हुए स्वयं लोक-विश्वास एवं पवित्रतावादी दृष्टिकोण को केन्द्रित करके नवीन अर्थों को उद्‌घाटित करती है।[1] प्रगतिवादी गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में शब्दों को बड़े ही बारीकी से जाँच-परखकर रखा है। उनके शब्द भावों को वहन करने और अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। कहीं-कहीं भाषा की अनगढ़ता भी दिखाई पड़ती है। खास करके 'वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी' काव्य-संग्रह के गीतों में। कलात्मकता के विषय में केदारनाथ का मानना है- ''कलात्मकता कोई अजनबी और आरोपित गुण-धर्म नहीं है कि उसे परित्याग कर दिया जाये। वही तो कृति को विकृत होने से बचाती है। वही तो सूक्ष्म संवेदनों को रूप और आकार देती है। वही तो भावनाओं और विकारों को सुन्दर सजीव स्थापत्य देती है। वही तो असम्बद्ध वस्तुनिष्ठता को मानवीय चेतना से गत्यात्मक बनाती है और जड़ता का संहार करती है।''[2] कलात्मकता का विरोध आत्मनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता का विरोध होता है। इन दोनों का विरोध मानव-

जाति की निरन्तर विकसित हो रही प्रगतिशीलता का विरोध है। हाँ, उसी कलात्मकता का विरोध किया जा सकता है जो रूढ़ि हो चुकी है और विकासोन्मुख नहीं है।[3]

रचनाकार के लिए अनुभूति की स्पष्टता[4] बहुत जरूरी है। जहाँ स्पष्ट अनुभूति स्पष्ट माध्यम पा लेती है वही रचना सुबोध, सुगम और सरस हो जाती है। शैली के विषय में केदारनाथ स्पष्ट कहते हैं — ''जहाँ तक शैली का प्रश्न है वह कई बातों से बनती बिगड़ती है। यदि वह बोझिल शब्दों का अखाड़ा लगाती है तो दंगल देखने का मजा आता है। यदि वह 'बतकही' करती हैं तो कमरे में चाय पीने का या किसी 'कॉफी हाउस' में टीका-टिप्पणी का मजा देती है। यदि वह 'बबुआइन' बन कर नये के सिंगार में रूप को चटक कर चलती है तो अपहरण किये जाने की शंका पैदा करती है। यदि वह तथ्यों और भावों की तालिका भेंट करती है तो वह अपनी नहीं, किसी अर्थशास्त्री का जामा पहनती है। यदि वह चित्रमत्ता अधिक और विचार या भाव कम अपनाती है तो गद्दी से उतारे हुए, परन्तु फिर भी ताम-झाम से जीने वाले, नरेशों की रखैलों का चीर-हरण कर दूसरों का कलेजा चीरती है। यदि वह कवि के मन की 'गुंजार' बनकर अपनी गेयता को ही प्रधानता देती है तो वह स्वरपात से समाज के निर्माण की निष्फल कामना करती है।''[5] मौलिक और वास्तविक रचना भाव-संवेद्य और सम्प्रेषणीय होती है क्योंकि वह विवरण-मात्र, बिम्बन-मात्र, आलोचना-मात्र, जीवन-दर्शन-मात्र, संस्पर्शी-मात्र, नीतिपरक-मात्र प्रवचन या उपदेश नहीं होती।[6]

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी साहित्य के प्रगतिवादी धारा के एक प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। उन्होंने प्रगतिवादी गीतों की जो रचना की है वे उनके प्रकाशित काव्य-ग्रंथों में सन्निहित हैं। उनके गीतों के भाषा का स्वरूप, गीतों में प्रयुक्त अलंकार, प्रतीक, बिम्ब और मिथकों का प्रयोग किस रूप में हुआ है उसका सम्यक विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

क) भाषा का स्वरूप

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के नाते उसे आपस में सर्वदा विचार-विनिमय करना पड़ता है। कभी वह शब्दों या वाक्यों द्वारा अपने आपको प्रकट करता है तो कभी संकेत द्वारा उसका काम चल जाता है। भाषा विचार-विनिमय का एक सशक्त माध्यम है। इसी के द्वारा हम अपने विचार दूसरों तक तथा दूसरों के विचार स्वयं ग्रहण करते हैं। अपने व्यापकतम रूप से तो 'भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।'[7] भाषा की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं : 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष' धातु से बना है जिसका अर्थ है- 'बोलना' या कहना।' अर्थात् 'भाषा वह है जिसे बोला जाय। स्वीट के अनुसार ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।[8] ब्लॉक तथा ट्रेगर - A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society group cooperates.[9] आ० देवेन्द्रनाथ शर्मा- ''उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।''[10] डॉ० भोलानाथ तिवारी- ''भाषा मानव-उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं। लेखक, कवि या वक्ता रूप में अपने अनुभवों एवं भावों आदि को व्यक्त करते हैं तथा अपने वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के संबंध में जाने-अनजाने जानकारी देते हैं।''[11] मनुष्य ने सामाजिक विकास के साथ-साथ भाषा का भी विकास किया है। इतिहास की लम्बी यात्रा में भाषा मानवीय सम्बन्ध और संवाद का माध्यम बनी है, वह मनुष्य की चेतना की गतिविधियों का भी माध्यम बनी है। मनुष्य की दुनिया में ही भाषा अर्थवान बनती है।[12]

सामान्यतः भाषा वैचारिक और संवेद्य होती है। वैचारिक भाषा विचार की वाहिका और संवेद्य भाषा संवेदना या अनुभव की वाहिका होती है। संवेदना को वहन करने वाली भाषा में लयात्मकता और सहजता होती है। इस प्रकार की भाषा मस्तिष्क की उपज नहीं होती, वह अंतःकरण स्वतः स्फूर्त होती है। इसमें व्याकरण के

नियमों के बजाय लय होता है। लय ही ध्वनियों और शब्दों को गतिशील करती है। शब्दों और वर्णों का उच्चारण एक नियमित गति से होने के कारण उसमें आकर्षण की क्षमता उत्पन्न हो जाता है। और वह पाठकों पर अधिक प्रभाव डालनेवाला होता है। लय के वजह से ही पाठक पढ़ते समय शब्दों को दुहराता है और शब्दों का उच्चारण करते समय उस पर ठहरता है। केदारनाथ अग्रवाल की भाषा भाव-संवेद्य है जो उनके अंतःकरण से स्वतःस्फूर्त होने के कारण पाठकों के लिए दूरूह नहीं है। समाज भाषा की जन्मभूमि है और कर्मभूमि[13] भी। यहीं से नये शब्द पैदा होते हैं, पुराने शब्दों में नया अर्थ भरता है और उन्हें नया जीवन मिलता है। समाज ही भाषा की शक्ति का मुख्य स्त्रोत है और समाज के कर्ममय जीवन में भाषा की क्रियाशीलता सार्थकता पाती है। केदारनाथ अग्रवाल की धारणा भाषा और हिन्दी भाषा के विषय में स्पष्ट है। वे कहते हैं- ''जब तक यथार्थ से भाषा न जोड़ेगें, वह आम आदमी की भाषा नहीं बन सकती। उस भाषा को जीवन में जाना पड़ेगा। हिन्दी भाषा साहस की भाषा है। आदर्श की भाषा है। नैतिकता लिए हुए है। चरित्र की भाषा है। यह मिमियाने वालों की, बकरी की भाषा नहीं है। भिखारियों की भाषा नहीं है।''[14]

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी साहित्य के एक सफल गीतकार हैं। उनके गीत भाव-संवेद्य हैं। सामाजिक यथार्थ को खोलने में उनके गीत सक्षम हैं। उनकी भाषा सहज-सरल और प्रसंगानुकूल है। भाव को पाठकों तक संप्रेषित करने में उनकी भाषा सफल है। उनके गीत लम्बे-लम्बे सामासिक पदों से मुक्त हैं। अनपढ़ साधारण ग्रामीण लोक भी उनके गीतों को सुनकर आनन्दविभोर हो जाते हैं और उनमें अपनी ही छवि को देखते तथा अपनी दशा का अनुभव करते हैं। सन् 1991 ई. के 6 अप्रैल को लिखे 'चारु चरित्री' में भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं -

चारु चरित्री,
चित्रित भाषा,
मानवबोधी व्यंजक हो-
संज्ञानी प्रतिबिम्बन वाली

अनुरागी,

अनुरंजक हो,

वस्तुपरक विवरण-बोधी भी

कुंठित काय

कठोर न हो,

परिमल पूरित

आत्मपरक हो,

झंझा

और झकोर

न हो।[15]

अर्थात् शब्द कठिन न हों, आत्मपरक और चित्रात्मक हों। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में प्रयुक्त शब्दों को बारीकी से जाँच-परख करके ही रखा है। काट-छाँट करके और तराश करके ही प्रस्तुत किया है। अशोक त्रिपाठी कैफियत में लिखते हैं - ''मुक्तिबोध की ही तरह केदारजी ने भी एक-एक शब्द तथा एक-एक पंक्ति को कई बार जाँचा-परखा है, तौला है, रचना-कर्म के दौरान कई-कई बार बदला है; काटा-छाँटा है तब कहीं जाकर तराशे रूप में प्रस्तुत किया। ऐसी समर्पित निष्ठा, बहुत कम कवियों में देखने को मिलती है।''[16] 'आग का आईना' की भूमिका में केदारनाथ लिखते हैं - ''हरेक इकाई मूर्त जगत की असम्बद्धता में सम्बद्धता स्थापित करती है। यह सम्बद्धता मैंने आत्मपरक होकर अन्दर ही अन्दर अपने को मथ कर, तनाव की स्थिति में गुमसुम होकर, अपने को विवेक से जोड़कर, क्रमशः उबरकर, रचना-प्रक्रिया के दौर से गुजर कर, पाये हुए को कथ्य और शिल्प में ढाल कर, भाषा इकाई बना कर स्थापित की है।''[17] केदारनाथ अग्रवाल के गीत शब्दों से शिल्प से अनुशासित हैं।[18] उनके गीत के शब्द समझने, सोचने और सुधरने के लिए विवश करते हैं। भाषा इतनी सहज और सरल है कि अर्थ निकालने के लिए माथा-पच्ची करने या शब्दकोश से शब्दों के अर्थ लेने की जरूरत नहीं पड़ती। भाषा के शब्द सम्प्रेषणीय हैं। केदारनाथ अग्रवाल अपने गीतों में लम्बे-लम्बे सामासिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। तद्‌भव

और देशी शब्दों की बहुलता है, साथ ही उनकी भाषा में देशी माटी की सोंधी गंध है जो पाठकों के अंतर में सीधे प्रवेश कर जाते हैं-

यह मैदानी हवा
चाल चलती इठलाती
फेन-फूल-पत्तों-सी आती
और उड़ाकर
अपने साथ मुझे ले जाती
वहाँ जहाँ रंगों में बोरी
नदी किनारे
खड़ी हुई है मेरी गोरी
बाँहु पसारे
साँझ सकारे।[19]

गीतों के सहज-सरल शब्द बिना किसी लाग-लपेट के अर्थ को खोल कर रख देते हैं। जीवन यथार्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों से भरी पंक्तियों के अर्थ की पारदर्शिता स्पष्ट है -

स्वार्थ सिद्ध होता है उनका
वैभव-विलास की अराधना में
आजन्म जीते हैं जो
छल-छद्म की साधना में।[20]

स्वाभिमानी होकर जीने की प्रेरणा देने वाला गीत 'पाँव न पकड़ो' अपने शब्दों की सहजता और सम्प्रेषणीयता के वजह से ही पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित करता है —

पाँव पकड़ो
इनके-उनके
कंचन के सिर-काँधे जिसके,

पाँव नहीं हैं जिनके अपने,

झूठे होते जिनके सपने।[21]

सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करनेवाला 'मिल मालिक' नामक गीत अपने सहज-सरल शब्दों के माध्यम से ही भावों को संवेद्य बनाता है। अनपढ़ व्यक्ति भी इन गीतों को सुनकर सौ-प्रतिशत अर्थ समझ जाता है। भाषा की सहजता और भावों की सम्प्रेषणीयता केदारनाथ के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है —

मिल मालिक का बड़ा पेट है

बड़े पेट में बड़ी भूख है

बड़ी भूख में बड़ा जोर है

बड़े जोर में जुलुम घोर है![22]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में 'बसन्ती हवा' नामक गीत काफी लोकप्रिय है। यह अपनी सहजता और गेयता के कारण लोगों का कंठहार बनी हुआ है। सहज-सरल भाषा में लिखित यह गीत किसका मन नहीं मोह लेता-

हवा हूँ, हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ।

वही हाँ, वही जो युगों से गगन को

बिन कष्ट-श्रम के सम्हाले हुए है;

हवा हूँ, हवा मैं बसन्ती हवा हूँ।[23]

ग्रामीण जीवन सौन्दर्य को सहज रूप में चित्रित करनेवाला 'ओसौनी का गीत' में देशज शब्दों तथा बुन्देली के शब्दों की बहुलता है। कम पढ़े लिखे लोग भी सहज और सरल शब्दों के वजह से अर्थ को अच्छी तरह से समझ जाते हैं और गीत उनके कंठहार बन जाते हैं-

साइत आई साइत आई बहय जगब की बैरा

काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा

दौरी साधो अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा

ताल ठोकि कै मारि भगावौ जेते ऐरा-गैरा

अन्न बटोरौ, रासि लगावौ छुइले परबत चोटी
देस भरे के खेतिहर खावौ पेट पेट भर रोटी
साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा।।[24]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में भाषा की चित्रमयता पूर्णतः दिखाई पड़ता है। भाषा भावों के साथ हमारे आँखों के सामने एक चित्र उपस्थित कर देता है। हम उन शब्दों को पढ़ते समय अपने आँखों के सामने उन तमाम दृश्यों को प्रत्यक्ष करते हैं जो शब्दों में वर्णित हैं। भाषा की यह चित्रमयता पाठकों को आनन्दविभोर कर देती है। गीतों के इस चित्रमयी भाषा का अवलोकन 'जो यह उदास-सा नीम' नामक गीत में किया जा सकता हैं जो नीम की उदासी को व्यक्त करता है—

यह उदास-सा नीम खड़ा है मन को बिलकुल डाले,
डाल-डाल की बाँह बिछी है, सोते निर्मम छाले।
नहीं झूमता एवर-ग्रीन ले लाल कुसुम के प्याले,
खड़ा हुआ है जैसे तैसे अपनी साँस सम्हाले।[25]

'धूप का गीत' नामक गीत में चित्रमयी भाषा का दर्शन होता है, ऐसा लगता है जैसे धूप गगन से धीरे-धीरे धरती पर उतर रही हो जैसे कि शिव की जटा पर आकाश से गंगा उतर रही हो और धरती पर आकर अपनी साम्राज्य का विस्तार कर अंधकार को मार भगाई हो। यहाँ गीतकार ने प्रकृति का मानवीकरण चित्रण करते हुए लिखा है -

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी।
धरती भी कोलाहल करती
तम से ऊपर ऊभरी!!
धूप धरा पर बिखरी।।[26]

'आज नदी बिलकुल उदास थी' नामक गीत में भी भाषा की चित्रमयता का दर्शन किया जा सकता है। उदास स्त्री के रूप में चित्रित नदी का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

'आज नदी बिलकुल उदास थी,
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था।[27]

यहा नदी को उदास युवती के रूप में दिखाया गया है। गीत को पढ़ते ही हमारे आँखों के सामने एक युवती का चित्र उभरता है जो स्वच्छ पानी में सोई हुई सी लगती है और उस पानी में सफेद बादल की छाया पड़ी हुई है। यह भाषा की ही विशेषता है जो इस तरह के चित्र उभारने में सक्षम हैं।

मुहावरे

विशेष अर्थ की प्रतीति करने वाले वाक्यांश मुहावरा हैं। अरबी भाषा में इसे मुहावरः कहा जाता है। इसका शब्दार्थ नहीं अवबोधक अर्थ ग्रहण किया जाता है। मुहावरे भाषा की समृद्धि और सभ्यता के विकास के मापक हैं। इनकी अधिकता अथवा न्यूनता से भाषा के बोलनेवालों के श्रम, सामाजिक संबंध, औद्योगिक स्थिति, भाषा निर्माण की शक्ति, सांस्कृतिक योग्यता, अध्ययन, मनन और आमोदक भाव, सबका एक साथ पता चलता है।

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रसंगवश अपने गीतों में मुहावरे का प्रयोग किया है। हालाँकि मुहावरे ज्यादा संख्या में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। फिर भी इसके प्रयोग से भाषा जानदार हुई है।

'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' नामक काव्य-संग्रह के 'सीख' नामक गीत में मुहावरे का ज्यादातर प्रयोग हुआ है —

i) लाल पीली होती आँखें

धूल मत आँखों में फेंको।

आँख पर बिठलाओ सबको,

आँख पर बैठ आँख सेंको।[28]

ii) आँख में तिनका है सबके।[29]

iii) आँख उनकी चढ़ती सर पर।[30]

iv) आँख में हो चरबी छाई।[31]

v) आँख का तारा है वह तो।[32]

'देश की राजनीति' नामक गीत में मुहावरे को देखा जा सकता है। मुहावरे का प्रयोग भाव को ज्यादा संप्रेषणीय बनाता है-

न आग है,

न पानी

देश की राजनीति

बिना आग-पानी के

खिचड़ी पकाती है

जनता हवा खाती है।[33]

'मेरा आदर्श' नामक गीत में भी एक मुहावरे का प्रयोग मिलता है—

इस पुराने भार से मिलकर,

बाग-बाग होता हूँ।[34]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग बहुतायत हुआ है। कुछ शब्द अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं-

तत्सम शब्द- निशि, अतिशय, अभिमंत्रित, शोषित, सरिता, विधु, उच्छवास, परिमल (जमुन जल तुम), नवल, अम्बर, तमोमय, नीड़,

कुसुम, पदरज (जो शिलाएँ तोड़ते हैं), पूर्णमासी, निस्संग, देदीष्यमान, पारदर्शी, कौमार्य, निर्धूम (पंख और पतवार) निरर्थक, दुर्बल, धृष्ट, द्वन्द्व, रुदन (गुलमेंहदी) नवल, कंचन, पर्णकुटी, भस्मीभूत, अभ्यर्थना, विश्वम्भरा (वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी), विषम, विषाद, भुजंग, मेदिनी, हर्ष, तम (बोले बोल अबोल), नभ, प्रणय, कुंठित (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह), सौरभ, निर्मल, दिवास्वप्न, श्वेत, अमन्द (फूल नहीं रंग बोलते हैं), आलिंगन, विधि, आत्मवंचक, गर्जन (कहें केदार खरी खरी), अनुत्तरित, दिक्, दिगम्बरी (आग का आईना), आक्रीड़न, उत्तोलन (हे मेरी तुम), महिधर, दनुज, आर्द्र (अपूर्वा)।

तद्भव शब्द- चाउर, चिउटी (हे मेरी तुम), कपार (जमुन जल तुम), नखत (अपूर्वा), मजूर, मदरासी, कारी, कातिक (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह), मुरदा (जो शिलाएँ तोड़ते हैं), पियारा, हिरदय, मुरदा, दरिद (कहें केदार खरी, खरी)।

देशज शब्द- ठठरियाये जबरजंग (हे मेरी तुम), छैल चिकनिये, छप्पर, छानी (जो शिलाएँ तोड़ते हैं), अपलेपन (खुली आँखें खुले डैने), चुलबुल, हुड़दंग, गभुआर, लपलपाये, हथियाये (अपूर्वा), हरहराते (आत्मगंध) लपलप, गोलमगोल, चरमसकर (कहें केदार खरी खरी), दगैल, ठगैत, खंजड़ी, छौक, हुड़दंग, हड़बड़ी, गड़बड़ (पंख और पतवार), हुरियाये (गुलमेंहदी)।

भोजपुरी शब्द- चाउर (हे मेरी तुम), साइत, ओसावै (जो शिलाएँ तोड़ते हैं) विला जाना, सर कर (पंख और पतवार), टोयाकरना (गुलमेंहदी), अइहैं (कहें केदार खरी खरी) साइत-कुसाइत (फूल नहीं रंग बोलते हैं), बातास (पंख और पतवार)।

बांग्ला शब्द- बातास (पंख और पतवार), नारिकेल (फूल नहीं रंग बोलते हैं)।

विदेशी शब्द-

विदेशी शब्दों में अरबी फारसी[35] और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग केदारनाथ ने अपने गीतों में किया है। नुक्ते वाले शब्दों में कहीं तो नुक्ता मिलता है और कहीं नहीं। संपादक ने काव्य-संग्रहों को प्रकाशित करने में कुछ फेर बदल किया है। इस बात को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है — ''मैंने एक धृष्टता की है कि ऐसे शब्दों (नुक्ता वाले) का हिन्दीकरण कर दिया है अर्थात् नुक्ता हटा दिया है। तर्क यह है कि हिन्दी भाषा-भाषी अपनी आम बोलचाल में ऐसे शब्दों का जो रूप उच्चरित करते हैं वह नुक्ताहीन उच्चारण ही होता है। कहाँ नुक्ता होगा, कहाँ नहीं होगा, इसका निर्णय करने के लिए लिपि का ज्ञान आवश्यक है; और इस ज्ञान का लगभग पूर्णतः अभाव-सा है। ऐसे में अक्सर 'शुद्धता' के चक्कर में नुक्ते के प्रयोग को लिखने और बोलने, दोनों में भूल होती रहती है। इसी तर्क से अरबी-फारसी के नुक्ते वाले शब्दों को नुक्ताहीन करके उनका हिन्दीकरण किया गया है।''[36]

फारसी शब्द- बेजान, अलाव, दमखम (हे मेरी तुम), सफरी (जमुन जल तुम), गजब, यारौ, आजाद, फिकर (जो शिलाएँ तोड़ते हैं), तस्कर, सलाम, लिबास (अपूर्वा), ईमान, सूरत, औरतनुमा, निगाह, बुत, जवान (पंख और पतवार), परचम, आजादी, नफाखोर, बेहद (गुलमेंहदी), आमदनी, तरकीब, दम, जमाना, नाजायज (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह), तनख्वाह, फरियाद, मातम, जालिम, जनाब, ईमान, हैवान, अखबार (वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी), मस्तमौला, बावली, मुसाफिर, गुलदस्ता, आजाद, अजब (फूल नहीं रंग बोलते हैं), शान-शौकत (बोले बोल अबोल), शमशान, शैतान, मातम, बाज (पुष्पदीप)।

अंग्रेजी शब्द- इमरजेंसी (हे मेरी तुम), डिप्टी, एवर-ग्रीन (गुलमेंहदी), पेरिस प्लास्टर, डॉक्टर (वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी), फ्यूज, रोल (बोले बोल अबोल)।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में भाषा के विविध शब्द-रूपों का दर्शन होता है। ये सारे शब्द गीतकार के भावों को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त कराने में सहायक हुए हैं। साथ ही ये गीतकार के भाषा संबंधी जानकारी को भी उजागर करते हैं। उनके गीतों की भाषा काफी सहज-सरल और भाव-संवेद्य है। तत्कालीन एवं वर्तमान परिस्थितियों और मानव मानसिकता को उभारकर रखने में उनके विविध शब्द सहायक एवं सक्षम हैं।

ख) अलंकार योजना

अलंकार का सुप्रसिद्ध अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार स्वर्ण आदि के आभूषणों से शरीर की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार जिन उपकरणों से काव्य में सुन्दरता आती है उन्हें (उसी सादृश्य से) अलंकार कहते हैं।[37] 'अलंकार' शब्द की करण-परक व्युत्पत्ति है- 'अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः।'[38] अर्थात् जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है। अथवा, 'अलंकरोति इति अलंकारः'[39] जो अलंकृत करता है। 'अलंकार' शब्द की भाव परक व्युत्पत्ति है- 'अलंकृतिः अलंकारः'[40] अर्थात् 'अलंकरण' (शोभा, सौन्दर्य, सजावट) अलंकार है। अलंकार का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। चाहे वह गद्य हो, चाहे पद्यकाव्य - दोनों ही में अलंकारों का प्रचूर मात्रा में प्रयोग होता है। अलंकारों का प्रयोग नितान्त स्वाभाविक है। किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का उपयोग होता है।[41]

अलंकार वाणी के विभूषण हैं। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से सम्पन्न हो जाती है। अतः अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति है। अलंकार कथन की ललित भंगिमा है। जिस उक्ति में कोई बाँकपन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है। अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आ० भामह

ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में अलंकार को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।''[42] आ० दण्डी के अनुसार- ''काव्यशोभाकारानधर्मानलंकारान् प्रचक्षते।''[43] अर्थात् काव्य का शोभाकारक धर्म अलंकार है। वामन ने अलंकार को सहायक के रूप में माना है। उन्होंने अलंकार को सौन्दर्य प्रतिष्ठापक कहा है- 'सौन्दर्यमलंकार'[44] अर्थात् सौन्दर्य ही अलंकार है और काव्य अलंकार से ग्राह्य होता है- 'काव्य ग्राह्यमलंकारात्।'[45] जयदेव ने अलंकार का समर्थन करते हुए लिखा है-

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती,
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।।[46]

अर्थात् जो विद्वान अलंकार से हीन शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं वे अग्नि को भी अनुष्ण क्यों नहीं मानते।

अतः कुल मिलाकर देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि अलंकार काव्य के शोभाकारक धर्म हैं। स्त्री के सौन्दर्य वृद्धि के लिए जिसप्रकार अलंकार (आभूषणों) की आवश्यकता होती है उसी प्रकार काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि के लिए अलंकार नितान्त जरुरी है।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी गीतकार हैं उनके गीत तत्कालीन एवं वर्तमान परिस्थिति में प्रासंगिक हैं। एक मीठा व्यंग्य उनके गीतों में है। उनका साध्य अलंकार नहीं है। वे उसे एक साधन के रूप में लेकर रचना करते हैं। कहीं भी उन्होंने शब्दों का खिलवाड़ नहीं किया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है- ''मेरी सौन्दर्य-प्रियता शाब्दिक-अलंकारिक क्रीड़ा-कौतुकी स्वभाव की नहीं होती, मानवीय स्वभाव की अभिव्यक्ति की होती हैं।''[47] केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में मानवीय संवेदना तथा प्रकृति के साथ तादात्म्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इनके गीतों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकार का प्रयोग हुआ है। लेकिन इनका लक्ष्य अलंकारों का निरूपण करना नहीं रहा है। इनके अलंकार सायास गीतों में नहीं आये हुए हैं।

उन्होंने अलंकारों का अनायास प्रसंगानुकूल या आवश्यकतानुसार संयमित प्रयोग किया है।

शब्दालंकार में अनुप्रास, यमक तथा अर्थालंकार में उपमा, पुनरुक्ति, रुपक, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग केदारनाथ के गीतों में मिलता है।

गीतों में शब्दालंकारों का प्रयोग

अनुप्रास- जिस अलंकार में वर्णों या व्यंजनों की किसी प्रकार समानता होती है वह अनुप्रास है।[48] अनुप्रास के पाँच भेद हैं- (1) छेक (2) वृत्ति (3) श्रुति (4) अन्त्य (5) लाट। इन पाँचों में से छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अलंकार का प्रयोग केदारनाथ के गीतों में मिलता है।

छेकानुप्रास- जहाँ पर अनेक व्यंजनों या वर्णों की एक बार समता हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है।[49] केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में छेकानुप्रास का प्रयोग देखा जा सकता है-

> हे मेरी तुम।
> काल कलूटा बड़ा क्रूर है।
> उसका चाकू और क्रूर है-
> उससे ज्यादा।
> लेकिन अपना प्रेम प्रबल है।
> हम जीतेंगे काल क्रूर को।[50]

i) सागर सरिता और सरोवर (जमुन जल तुम) पृ.25

ii) वर वसंत ऋतु की शोभा से, वन में भी शोभा छाई। (जो शिलाएँ तोड़ते हैं) पृ.38

iii) घिरी घहरती मौत बरसती

मुझको नहीं परस पाती (अपूर्वा, पृ.40)

iv) यथावत कायम है

कल का वही मायल सूरज आज भी

डूबने के लिए आज भी। (पंख और पतवार, पृ.98)

v) रोड़ो से वह बेहारे लोहा लेता है। (गुलमेंहदी, पृ.25)

vi) आपको अपना बनाये

और अपने को जिलाये। (अनहारी हरियाली, पृ.120)

vii) अब नारी है नर के साथ

करनी करते उसके हाथ। (खुली आँखें खुले डैने, पृ.87)

viii) प्रकृति-पुरुष सब साथ नहाए,

नहा-नहाकर अति हरसाए। (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ.200)

ix) काव्य-कला की सृष्टि बनाया

मानव ने जिसको अपनाया। (पुष्पदीप, पृ.94)

x) हमें विराट विश्व का विधान चाहिए। (वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ.35)

xi) धूप धरा पर उतरी

जैसे शिव के जटाजूट पर

नभ से गंगा उतरी। (फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ.32)

वृत्यानुप्रास- जहाँ पर एक ही वर्ण या अनेक वर्णों की क्रमानुसार अनेक बार आवृत्ति या समता हो वहाँ वृत्यानुप्रास होता है।[51] केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में वृत्यानुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है-

i) काटो काटो काटो करबी

साइत और कुसाइत क्या है

जीवन से बढ़ साइत क्या है। (कटुई के गीत)[52]

ii) कातिक तक तुम ताके रहना, नींद न लेना

फल पाने की अभिलाषा को दिल में सेना। (ज्वार और जीवन)[53]

iii) आगे, आगे, आगे, आगे सर्राता है।
खोए, सोए मैदानों को थर्राता है।।
आओ, आओ, आओ, आओ, अर्राता है।
जीतो, जीतो, जीतो, जीतो नर्राता है।। (गर्रानाला)[54]

iv) पहला पानी गिरा गगन से
उमँड़ा आतुर प्यार,
हवा हुई, ठंढे दिमाग के जैसे खुले विचार।
भीगी भूमि-भवानी, भीगी समय-सिंह की देह,
भीगा अनभीगे अंगों की
अमराई की नेह।(पहला पानी)[55]

v) घिरी घहरती मौत बरसती
मुझको नहीं परस पाती,
बूँद-बूँद वह टूट-टूटकर टप-टप-टप-टप झर जाती।
मैं चलता, डग भरते चलता,
कीचड़-काँच कुचलते चलता।(मुझसे नहीं मरा जाता)[56]

vi) साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा
दौरी साधौ अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा
ताल ठोंकि कै मारि भगावौ जेते ऐरा गैरा।(ओसौनी की गीत)[57]

vii) फूलो, फूलो, फूलो, फूल!
महके अनिल सुरभि से भरकर,
सागर-सरिता और सरोवर;
थल महके, महके वर-अम्बर,
दश-दिशि महके महर-महरकर(फूलो, फूलो, फूलो, फूल)[58]

viii) हे मेरी तुम।

कागज के गज गजब बढ़े

<u>घम-घम घमके</u>

भीड़ रौंदते

इनके पाँव कढ़े;

ऊपर अफसर चंट चढ़े-

दण्ड-दमन के पाठ पढ़े।(कागज के गज गजब बढ़े)[59]

अन्त्यानुप्रास- छन्द के अंतिम चरण में स्वर-व्यंजन की समता अन्त्यानुप्रास कहलाती है।[60] केदारनाथ के गीतों में अन्त्यानुप्रास की छटा भी दिखाई देती है।

i) आगे, आगे, आगे, आगे, <u>सर्राता</u> है।

खोए, सोए मैदानों को <u>थर्राता</u> है।।

आओ, आओ, आओ, आओ, <u>अर्राता</u> है।

जीतो, जीतो, जीतो, जीतो <u>नर्राता</u> है।(गर्रानाला)[61]

ii) दाल-भात खाता है <u>कौआ</u>

मनुष्य को खाता है <u>हौआ</u>

नकटा है नेता <u>धनखौआ</u>

न कटा हो मानो <u>कनकौआ</u>।(दाल-भात खाता है कौआ)[62]

यमक- जहाँ पर शब्द की अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृति होती है, वहाँ पर यमक अलंकार माना जाता है।[63]

i) <u>बीना बिना</u> तार के न बीना है

प्यार पिये बीना ही प्रबीना है

प्यार <u>बिना बीना</u> प्रानहीना है

<u>बीना बिना</u> प्यार बनी दीना है(बीना बिना तार के)[64]

ii) दाल-भात खाता है कौआ

मनुष्य को खाता है हौआ

नकटा है नेता धनखौआ

न कटा हो मानो कनकौआ।(दाल-भात खाता है कौआ)[65]

गीतों में अर्थालंकारों का प्रयोग

उपमा- उपमा का अर्थ है (उप) समीप से (मा) तौलना (देखना) अर्थात् एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उनकी समानता प्रतिपादित करना।[66]

i) हे मेरी तुम।

यह दिन

गोरा चिट्ठा,

उजला जैसे बछड़ा,

पुष्ट धूप में

निखरा; (यह दिन गोरा चिट्ठा)[67]

ii) कल्पलता सी सुधर सलोनी,

कामधेनु सी नारी है,

अमृत सी चिर जीवन दायिनी,

प्राणों से भी प्यारी है।(कल्पना सी सुधर सलोनी)[68]

iii) माँ! दीप शिखा क्यों इतनी

पल-पल थर-थर कँपती है?

यह गोदी के बच्चे सी

लघु है फिर क्यों डरती है?(दीप-शिखा)[69]

iv) ओ छोटी-सी छाया-सी।

ओ प्यारी-सी माया-सी।

ओ आमों की मुँहबोली।

तेरी है मीठी बोली।(कोयल)[70]

v) श्वेत केश की तरह
भूमि पर पड़ी नदी
बूढ़ी नहीं जवान है
मेघ और पृथ्वी की
यह सन्तान है।(नदी2)[71]

vi) माँझी! न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता
माँझी! न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता है जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन-बन टूटता।(माँझी न बजाओ बंशी)[72]

रूपक- उपमेय में उपमान का निषेध रहित आरोप रूपक है।[73]

i) काजल ओढ़े <u>बादल के हाथी</u> पर चढ़कर
इस छाया के महामार्ग के आर-पार में
मेरा जीवन अन्न न पाकर खो जाता है।(छिंगुली की छाया)[74]

ii) जल उठूँ मैं जल उठूँ ऐसा कहाँ वरदान पाऊँ?
प्रेम है इतना हृदय में
नेह का नीरज रचाऊँ
<u>देह की दीपक</u> शिखा को
युग युगान्तर तक जलाऊँ।(जल उठूँ मैं)[75]

iii) मूर्च्छना का मोह सुधि-सा शीघ्र मिटता जा रहा है।
<u>चेतना का हंस</u> हँसता और बढ़ता आ रहा है।(गमनागमन)[76]

iv) न चलाओ
दम्भ की दराँती
मेरे सीने पर

हर्ष के हरे पेड़ जहाँ हँसते हैं
फूल-फूल हुए महकते हैं।(न चलाओ दंभ की दराँती)[77]

v) सोने से सपने के तरु पर
दुख की चिड़िया आती है;
तब पलकों के दल में छिपकर
साँझ समय सो जाती है।(सफलता की सुघर सलोनी)[78]

पुनरुक्ति- शब्दों या वाक्यों की पुनः आवृति ही पुनरुक्ति है।

i) हे मेरी तुम
खेल-खेल में खेल न जीते,
जीवन के दिन रीते बीते,
हारे बाजी लगातार हम,
अपनी गोट नहीं पक पाई,
मात मुहब्बत ने भी खाई।(सब चलता है लोकतंत्र में)[79]

ii) फूलो, फूलो, फूलो, फूल!
गोले गोले इकटक लोचन-
भोले भोले बाल बदन बन
कोमल-कोमल नवल-नवल बन,
विकसित, सुरभित, सरस, सरल बन(फूलो, फूलो, फूलो, फूल)[80]

iii) देख देख यह दृश्य मनोरम
छैलचिकनिये चले ठुमकते,
अपनी अपनी मधुर घेटियाँ
बजा रहे हैं खुश हो होकर;(फागुन का दृश्य)[81]

iv) रूप-सिंधु की
लहरें उठतीं,
खुल-खुल जाते अंग,

परस-परस

घुल-मिल जाते हैं

उनके मेरे अंग।(पहला पानी)[82]

v) मेरे खेत में हल चलता है,

नाहर बैल जुंआ कँधियाये,

ऊँचे-ऊँचे श्रृंग उठाए,

धौलागिरि से हैं मन भाये।(जुताई का गाना)[83]

vi) गदगद-गदगद

गिरा दौंगरा,

पानी-पानी हुआ धरातल,

कल-कल

छल-छल

लहरा आँचल।(अम्बर का छाया मेघालय)[84]

vii) बह रही नदी की तेज धार

जल बार-बार करता प्रहार

उद्धत तरंग से दुर्निवार

कट रहा खड़ा ऊँचा कगार(नदी की तेज धार)[85]

viii) हास-हर्ष-हुलास की यह हरी जाया

फूल-फूल से, रूप-रस से भरी काया

पात-पात प्रकाश-दीपित प्रकृति नामा

वात-वास-विलास-जीवित सुरति श्यामा।(वन की प्रकृति वामा)[86]

उत्प्रेक्षा- जहाँ पर उपमेय या प्रस्तुत की उत्कृष्ट उपमान या अप्रस्तुत के रूप में सम्भावना या कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।[87]

i) दाल-भात खाता है कौआ

मनुष्य को खाता है हौआ

नकटा है नेता धनखौआ

न कटा हो मानो कनकौआ।(दाल-भात खाता है कौआ)[88]

ii) हरे-हरे-पत्तों से मिलकर,

तरू मानो जलधार बहाकर,

सटकर, गुथकर, एक अंग कर

तुम्हे बिछा लें निज निज उर पर।(फूलो फूलो फूलो फूल)[89]

विरोधाभास- जहाँ पर किसी पदार्थ, गुण या क्रिया में विरोध दिखलाई पड़े (वास्तव में विरोध न हो), वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।[90]

i) हे मेरी तुम!

मैंने देखा,

बिना बोल के

बोले लाल गुलाब।(मैंने देखा)[91]

ii) मर कर भी जो मरे नहीं

वह अमर हो गये।

जी कर भी जो जिये नहीं

वह कहर हो गये।(अमर और कहर)[92]

iii) कैद होकर भी

नहीं मैं कैद हूँ।(कैद होकर भी)[93]

विभावना- जहाँ पर किसी रूप में कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाय, वहाँ पर विभावना अलंकार होता है।[94]

i) घर के बाहर

धूप धधकती

बिना आग के धरती-जलती।(सिर के ऊपर)[95]

मानवीकरण

जहाँ प्रकृति को मानव के रूप में क्रिया-कलाप करता हुआ दिखाया जाता है, वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में जहाँ भी प्रकृति का चित्रण हुआ है वहाँ मानवीकरण अलंकार की सुन्दर छटा दिखाई पड़ती है-

i) आज नदी बिलकुल उदास थी,
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था।(आज नदी बिलकुल उदास थी)[96]

ii) यह मैदानी हवा
चाल चलती इठलाती
फेन-फूल पत्तों-सी आती
और उड़ाकर
अपने साथ मुझे ले जाती
वहाँ जहाँ रंगों में बोरी
नदी किनारे
खड़ी हुई है मेरी गोरी
बाँह पसारे
साँझ सकारे।(मैदानी हवा)[97]

iii) समय का सूरज हँस रहा है
जहाँ भी जो भी अंधकार है
उसे डँस रहा है
प्रकाश का
फन फैलाये
प्रोज्ज्वल बनाये।(समय का सूरज)[98]

iv) हँस रहा है उधर

धूप मे खड़ा पूरा पहाड़

खोलकर मोटे-बड़े ओठ

और चट्टानी जबड़े।(हँस रहा है उधर)[99]

v) ऊपर

गर्जन-तर्जन करते,

मेघ मंडलाकार घहरते,

क्षण-क्षण

कोप-कटाक्ष तड़ित से,

भयाक्रांत

अम्बर को करते।(ऊपर, गर्जन-तर्जन करते)[100]

vi) चिरजीवी यह पवन प्रकम्पित, पूर्ण अगोचर

    यौवन के उद्दाम वेग से उन्मद होकर,

मदपायी की तरह चाल चल रहा निरन्तर,

    अवनी की आकुल अलकों से उलझ उलझकर

साँसे लेता हुआ; सृष्टि को साँसे देता,

अगम अजानी-ऊँचाई गिरि की पा लेता।(चिरजीवी यह पवन प्रकम्पित)[101]

vii) दिन ने नदी को

    नदी ने दिन को-

        प्यार किया।

दोनों ने

एक दूसरे को जिया,

    एक दूसरे को

जी भरकर पिया।(दिन, नदी और आदमी)[102]

viii) पेड़ महोदय

कलियाँ खोलो,

कुछ तो हमसे

हँसकर बोलो।(पेड़ महोदय)[103]

ix) कोमल दूब हरी धरती पर

विद्युत की शोभा से सजकर

नाच रही युवती पुरवैया।[104](पुरवैया)

x) पेड़ खड़ा

पत्ते गिरते हैं

गिरते पत्ते उड़ते रहते

उड़ते पत्ते

वृद्ध पेड़ के

अनुभव कहते

कहते पत्ते मिटते रहते।(पेड़ खड़ा)[105]

xi) यह उजियाली रात आज सिंगार किए जो हँसती आई,

धवल चाँदनी जग में जिसकी कोमल सेज बिछाती, छाई;

जिसे देखते ही मैं रीझा, हुआ रूप का लोभी पागल,

गीत सुनाकर, गाकर मोहा थाम लिया जिसका प्रिय आँचल।

(यह उजियाली रात)[106]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी धारा के एक सशक्त गीतकार हैं उनके गीतों में अलंकारो (शब्दालंकार और अर्थालंकार) का प्रयोग मिलता है। ये अलंकार सायास नहीं प्रयुक्त हुए हैं। उन्होंने रीतिकालीन कवियों की भाँति अलंकारों के चित्रण पर बल नहीं दिया है। उनके भावों को उद्वेलित करने में ये अलंकार सहायक जरूर हुए हैं। गीतों के श्रृंगार करने में इन अलंकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने अपने गीतों में खास करके प्रकृति-चित्रण वाले गीतों में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग

करते हुए प्रकृति का मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है। गीतों के ये अलंकार उबाऊ नहीं हैं बल्कि भाव-संवेद्य और आनन्दप्रदायक हैं।

ग) प्रतीक विधान

प्रतीक- अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।[107] यह प्रतीक-पद्धति सामान्य जीवन और व्यापक व्यवहार-क्षेत्र में भी प्रयुक्त होती है। सन् 1870 और 1885 ई० के बीच कला और साहित्य के क्षेत्र में प्रतीकवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ।[108] इसके परिणाम स्वरूप कवियों और चित्रकारों ने बाह्य जगत और जीवन का यथातथ्य चित्रण छोड़कर प्रतीकात्मक सन्दर्भों तथा अलंकरणों के द्वारा अपनी कल्पना के स्वप्निल आदर्शों को व्यक्त करना प्रारम्भ किया। सन् 1886 ई० में कवि 'जीन मोरेआस' ने 'फिगारो' नामक पत्र में प्रतीकवाद का एक घोषणा-पत्र प्रकाशित कराया जिसमें उसने यह कहा कि प्रतीकवाद ही एक ऐसा शब्द है जो कला में सर्जनात्मक प्रवृत्ति को भली-भाँति व्यक्त करता है। सन् 1891 ई० में अलबर्ट ओरिएट ने प्रकाशित एक लेख में प्रतीकवाद को स्पष्ट किया।[109]

प्रतीक में कोई वस्तु (शब्द चिह्न) अपने से भिन्न दूसरी वस्तु का संकेत करता है।[110] जैसे इस संकेत के अलावा उसकी अपनी निजी सार्थकता भी बनी रहती है। प्रतीक प्रयोग की प्रेरणा दो वस्तुओं के साफ अनुभूति में निहित है। यदि दो वस्तुएँ इतनी समान प्रतीत होती है कि प्रत्येक दृष्टि से एक दूसरी के समतुल्य लगे तो एक को दूसरी का स्थापन्न किया जा सकता है। प्रतीक काव्यात्मक आवेग और नियंत्रण के द्वन्द्व की कलात्मक परिणति है। प्रतीक युक्त रचना में अर्थ, सतह पर नहीं होता वरन् उसे संरचना के गहन तल से प्राप्त करना होता है। तल पर एक अर्थ ज्ञान होता है, इस अर्थ से दूसरे अर्थ तक पहुँचना होता है। यह दूसरा अर्थ ही कवि का अभिप्रेत

अर्थ होता है। अतः प्रतीक प्रयोग में प्रतीक के लिए आवश्यक है कि वे अन्यार्थ की प्रतीति कराने में सक्षम हों।[111]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रतीक का प्रयोग मिलता है। ये प्रतीक बौद्धिक एवं संवेगात्मक हैं। बौद्धिक प्रतीक, विचारों एवं संवेगों की मिश्रित उद्‌भावना करते हैं तथा संवेगात्मक प्रतीक भावों की अंतरंगता को प्रकट करते हैं।[112] सौन्दर्य की दृष्टि से प्रतीकों का महत्व गीत के लिए अपरिहार्य है। प्रतीकों में व्यंजना शक्ति निहित होती है; फलस्वरूप प्रतीकों का अर्थ-भावन व्यंग्यार्थ है। प्रतीक शब्द ही सौन्दर्य की सर्जना करते हैं और भाव, वस्तु और अभिव्यक्ति को कलात्मकता का जामा पहनाते हैं। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्राकृतिक प्रतीक ही ज्यादा देखने को मिलते हैं। यहाँ उन प्रतीकों को गीतों में देखा जा सकता है।

'न बुझी आग की गाँठ' नामक गीत में 'सूरज' को प्राकृतिक प्रतीक के रूप में लिया गया है-

न बुझी
आग की गाँठ है
सूरज;
हरेक को दे रहा रोशनी-
हरेक के लिए जल रहा-
ढल रहा-
रोज सुबह निकल रहा-
देश और काल को बदल रहा।[113]

यहाँ पर 'सूरज' को कर्मशील व्यक्ति के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने को दूसरों की भलाई के लिए उत्सर्ग किये हुए है।

'ताकत के तुरंग और घुड़सवार' नामक गीत में प्रयुक्त 'तुरंग' और 'घुड़सवार' दोनों ही जीवन व्यापार संबंधी प्रतीकात्मक हैं-

ताकत के तुरंग
अस्तबल में
बंधे घास खाते हैं।
उनके घुड़सवार
सराय में टिके सुसताते हैं;[114]

यहाँ 'तुरंग' किसान या शोषितों के प्रतीक हैं और घुड़सवार मालिक तथा शोषकों के प्रतीक के रूप में चित्रित हैं।

'गर्रा नाला' नामक गीत में 'काली मिट्टी' का प्राकृतिक प्रतीकात्मकता दर्शनीय है-

काली मिट्‌टी, काले बादल का बेटा है।
टक्कर पर टक्कर देता, धक्के देता है।।
रोड़ो से वह बेहारे लोहा लेता है।
नंगे, भूखे, काले लोगों का नेता है।[115]

यहाँ 'काली मिट्‌टी' अदम्य साहसी किसान का प्रतीक है जो खुद व्यवस्था परिवर्तन के लिए प्रयासरत है और दूसरों को भी उसी कार्य में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

छोटे हाथ
सबेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं।
करनी करने को उत्सुक हो,
धूप हवा में हिल उठते हैं।[116]

यहाँ 'छोटे हाथ' 'कृषक' और 'मजदूरों' के प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है, जो सिर्फ कर्म करने के लिए उठे हुए और तत्पर रहते हैं।

'सब कुछ देखा' नामक गीत में भी 'झोपड़ी' और 'महल' को प्रतीक के रूप में लिया गया है-

अपलेपन का पीड़न देखा,
झोपड़ियों को रोते देखा,
अठमहलों को हँसते देखा,
जाली मालामाली देखी,
कंगाली बदहाली देखी,[117]

यहाँ 'झोपड़ी' सर्वहारा के प्रतीक के रूप में और 'अठमहल' 'अभिजात्य वर्ग' के प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है।

हर्ष न आया,
आया तो बस आया
विषम विषाद
जब से तुम-भुजंग ने शासन पाया
देश हुआ बरबाद।[118]

यहाँ 'भुजंग' शब्द प्रतीकात्मक है। भुजंग देशी शासकों, नेताओं का प्रतीक है, जिन्होंने अपने कुशासन से देश को बर्बाद किया है। यह व्यंगात्मक प्रतीक है। सर्प तो दूध पिलाने वाले को भी नहीं छोड़ता। वह उनपर अपने विष का प्रभाव डालता ही है। यही स्थिति शासकों की है जो अपने स्वार्थ के लिए किसी का भी शोषण कर सकते हैं। अतः यहाँ 'भुजंग' शब्द सठीक प्रतीक के रूप में व्यवहृत हुआ है।

'सिसकती चिड़िया' नामक गीत में एक चिड़िया है जो प्रतीक के रूप में चित्रित है-

अब भी है कोई चिड़िया जो सिसक रही है
नील गगन के पंखों में
नील सिन्धु के पानी में

मैं उस चिड़िया की सिसकन से सिहर रहा हूँ
वह चिड़िया मानव का आकुल अमर हृदय है।[119]

यहाँ 'चिड़िया' 'मानव का आकुल अंतर' है जो स्वयं दुःखी है और सिसक रही है। यह चिड़िया एक और गीत में है-

एक बड़ी सी नीली चिड़िया
पंख पसारे, नील गगन से दूर है
उड़ने से मजबूर है
गहरी नीली आँख बड़ी सी, पलकें खोले
मुँदने से मजबूर है,
आँसू से भरपूर है।[120]

यहाँ 'चिड़िया' 'मानवीय करुणा' के प्रतीक के रूप में चित्रित है।

'दिये को दबोच नहीं सका अँधेरा' नामक गीत में 'दीप' शब्द प्रतीकात्मक है। यह 'अदम्य साहस' का प्रतीक है। जो किसी भी घेराबन्दी में नहीं आता। अंधकार को मिटाने का व्रती दीप खुद जलकर दूसरों को प्रकाश देता है। अंधकार की एक भी नहीं चलती, तब तक सूरज निकल आता है-

रात भर डाले रहा घेरा
दिये को
दबोच नहीं सका अँधेरा
जलते-जलते हो गया सवेरा।[121]

'भैंस' नामक गीत में भैंस 'स्वार्थी' और 'शोषको' का प्रतीक है जो संसार रूपी तालाब में चैन से आराम फरमा रही है-

चैन से है भैंस सर में
नीर चंचल गुदगुदा है
मस्त चोले गुदगुदा है

नाम चिन्ता का नहीं है एक भी सर की लहर में।[122]

'घूरे की घास' नामक गीत में भी प्रतीक देखने को मिलता है-

घूरे की घास
काला भैंसा खा जाता है,
जैसे असमय डस जाता है
नीचों को ऊँचों का व्याल।[123]

यहाँ 'घूरे का घास' सर्वहारा का प्रतीक और 'भैंसा' शोषकों के प्रतीक के रूप में चित्रित है। 'कौवा और कबूतर' नामक गीत में 'कौवा' और 'कबूतर' को प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। 'कौवा' 'शोषक और पूँजीपति' का प्रतीक है तो कबूतर 'शोषितों' का प्रतीक है-

कौआ जो काँव-काँव करता है
न मारा जाता है - न मरता है
जैसे वह अजर-अमर दानव है।
लेकिन जो गुटरगूँ कबूतर है
मार भी खाता और मरता है
जैसे वह क्षणभंगुर मानव है।[124]

कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में प्रतीक का जो प्रयोग किया है वे प्रतीक ज्यादातर प्राकृतिक प्रतीक हैं। कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक प्रतीक भी व्यवहार में लाये गये हैं। शोषकों पर यह व्यंग्य किया गया है। अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए एवं भाव को संवेद्य बनाने में इन प्रतीकों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

घ) बिम्ब-विधान

'बिम्ब' शब्द बहुत व्यापक है। काव्य के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग मुख्यतः मनोविज्ञान में होता है। मनोविज्ञान में 'इंद्रिय सम्वेदना की अनुपस्थिति में ऐन्द्रिय

अनुभव के पुनर्जागरण'[125] को बिम्ब नाम से पुकारा जाता है। काव्य-बिम्ब और मनोविज्ञान में निरूपित बिम्ब के अर्थों में पर्याप्त अन्तर है। मनोविज्ञान में मनोगत बिम्ब का ही अध्ययन किया जाता है। यद्यपि काव्य-बिम्ब का आधार भी यह मानसिक बिम्ब ही होता है तथापि काव्य में उन बिम्बों का अध्ययन किया जाता है जो कवि के मनोदेश से निकलकर कलात्मक शब्दों का आधार लेकर निश्चित रूप ग्रहण कर लेते हैं। बिम्ब अंग्रेजी के 'image' शब्द का हिन्दी रुपान्तर है और उसका अर्थ है किसी पदार्थ को मूर्त-रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना, मानसी प्रतिकृति उतारना। बिम्ब एक प्रकार का शब्द-चित्र[126] है।

बिम्ब का सामान्य अर्थ मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति[127] है। बिम्ब चेतन स्मृतियाँ[128] हैं जो विचारों की मौलिक उत्तेजता के अभाव में विगत विचारों को सम्पूर्ण रूप में अथवा आंशिक रूप में प्रस्तुत करती हैं। बिम्ब का निर्माण ऐसी चयन-प्रक्रिया है जो ध्वनि, गति और प्रकृति के प्रभावों से जीवन्त होकर भावक की विचार और संवेदन-तंत्रियों को झंकृत कर देता है; मनोवेगों को उद्वेलित कर देता है। बिम्ब शिल्प की वह विधि है जिससे कवि के अमूर्त और नियंत्रित आवेग अभिव्यक्ति पाकर संतुष्ट हो जाते हैं।

बिम्ब : पाश्चात्य दृष्टि

बिम्ब की परिभाषा के सम्बन्ध में सभी पाश्चात्य विद्वान पूर्णतः एकमत नहीं हैं। विभिन्न विद्वानों ने बिम्ब के भिन्न-भिन्न पक्षों पर विशेष बल दिया है- किसी ने ऐन्द्रियता पर, किसी ने भाव पर, किसी ने तुलना पर, किसी ने संदर्भ पर और किसी ने संयोजन पर। अतः युग-चेतना और काव्य-चेतना के परिवर्तन के साथ ही बिम्ब संबंधी धारणा में भी परिवर्तन हुआ। ब्लिस पेरी ने बिम्ब को केवल शब्द नहीं माना है, उसे इन्द्रिय संवेदना के उत्तेजक तत्व[129] माना है। बिम्बवाद के प्रबल समर्थक और उसे अपनी सशक्त आलोचना द्वारा साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने वाले एजरा पाउण्ड ने मार्च 1913 में 'पोइट्री' नामक पत्रिका में एक लेख में बिम्ब के सम्बंध में लिखा है-

''बिम्ब वह है जो काल की तात्कालिकता में बौद्धिक भावात्मक संसृष्टि उपस्थित कर देता है।''[130] वर्डसवर्थ के अनुसार समस्त काव्य मानव और प्रकृति का बिम्ब[131] है। स्टेफेन जे ब्राउन के अनुसार बिम्ब किसी अन्य प्रकार के भावों या विचारों के लिए लाया गया ऐन्द्रिय गुणों के सम्पन्न वह वस्तु-विधान है जो शब्दों या लोकोक्तियों में प्रकट होता है। बिम्ब मुख्य वस्तु का क्षणिक स्थानापन्न है जो सादृश्यता में भी प्रकट हो सकता है और उसके बिना भी।[132]

फोगल के अनुसार- Poetic imagery is to be defined broadly as analogy or comparison, having special force and identity from the particularly aesthetic and concentrative form of poetry.[133] (काव्य-बिम्ब, मोटे रूप में, उपमा या तुलना है जिसमें विशेष शक्ति होती है और जिसका तादात्म्य विशेष सौन्दर्यपरक एवं संकेद्रित काव्य-रूप से होता है)।

बिम्ब : भारतीय दृष्टि

भारतीय काव्यशास्त्र का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है और उसमें बिम्ब का स्पष्ट उल्लेख एवं विवेचन नहीं किया गया है; तथापि उसमें बिम्ब विषयक और बिम्ब की निकटवर्ती काव्य-दृष्टि अवश्य मिलती है। आ० शुक्ल ने काव्य में बिम्ब स्थापना को प्रधान वस्तु माना है। उन्होंने लिखा है- ''काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्ब ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का हो सकता है तथा वस्तुओं के रूप एवं आसपास की परिस्थितियों का व्यौरा जितना स्पष्ट या स्फुट होगा उतना ही पूर्ण बिम्ब ग्रहण होगा और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जाएगा।''[134] केदारनाथ सिंह के अनुसार- ''काव्यगत बिम्ब वह शब्द-चित्र है जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित है।''[135] केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में बिम्बों का प्रयोग यथास्थान यथासंभव हुआ है। उनके गीतों में प्रायः सभी इन्द्रियग्राह्य बिम्ब मिल जाते हैं और गीतों में ऐन्द्रिय संवेदना का स्फुरण हुआ है।

ऐन्द्रियता[136] या संवेदना[137] के आधार पर केदारनाथ अग्रवाल के गीतों के बिम्बों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) दृश्य बिम्ब

(ii) श्रव्य बिम्ब

(iii) स्पृश्य बिम्ब

(iv) घ्राण बिम्ब

(v) आस्वाद्य बिम्ब

(i) **दृश्य बिम्ब-** सौन्दर्य का घनिष्ट संबंध दृष्टि से है। इसलिए दृष्टि से सम्बद्ध सौन्दर्य को बिम्बों के रूप में प्रस्तुत करते समय चाक्षुष-बिम्बों का आधिक्य स्वाभाविक है। दृश्य बिम्बों में चित्रात्मकता अधिक रहती है। इसमें किसी वस्तु के रूप, रंग, गति, आकार तथा दृष्टिगोचर कायिक, सात्विक चेष्टाएँ आदि चित्रित किये जाते हैं। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में दृश्य या चाक्षुष बिम्बों में उनकी गहरी संवेदना, अनुभूति की तीव्रता तथा अपरिसीम एवं गहन सूक्ष्म दृष्टि है। पेड़ों के सिर पर चढ़ती धूप का बिम्ब गीतकार ने प्रस्तुत किया है-

रसिक-सिरोमणि
रंग-बराती
मगन, गगन में
लहक उठे।
दीप-दान के नये सितारे
झलमल-झलमल
झलक उठे।[138]

'घुमड़कर घिर आये हैं' नामक गीत में गीतकार ने आकाश में घिरे बादल और वन में पंख खोल नृत्य करते मोर का दृश्य बिम्ब उपस्थित किया है-

घुमड़कर घिर आये हैं
घन गगन में,

मोर नाचते
पंख खोलकर वन में
तुम भी तो हो
नाचो मेरे मन में।[139]

'ज्वार और जीवन' नामक गीत में गीतकार ने प्रकृति के मनोरम दृश्य का बिम्ब प्रस्तुत किया है-

ज्वार खड़ी खेतों में ऊँची लहराती है
लम्बे पत्तों की तलवारें चमकाती है
कहती है मेरे यौवन को बढ़ने देना
वीर जुझारु हरियाली से सजने देना
इससे पहले मुझे न छूना।।[140]

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में जहाँ प्रकृति का सुरम्य दृश्य प्रस्तुत किया है वहाँ पर प्रकृति का सुन्दर दृश्य-बिम्ब का दर्शन होता है। सूर्योदय के दृश्य को गीतकार ने 'फागुन का दृश्य' नामक गीत में बहुत ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है-

'पूर्व दिशा ने खेली होली
लाल गुलाल अबीर उड़ाया
मार-मार केसर पिचकारी
सराबोर कर दिया प्रकृति को।[141]

'देहाती लड़की' नामक गीत में ग्रामीण जीवन यथार्थ का बिम्ब गीतकार ने प्रस्तुत किया है-

चुलबुल पनघट के ऊपर चढ़
नौजवान देहाती लड़की
हाव भाव की चिकनी सिल पर

रपटी ऐसी, घोती उधरी
नहीं नेवासी कोरी गागर
टुकड़े-टुकड़े होकर टूटी,
गहरे अंध पताल कुएँ में
उसकी पूरी देह डूबी।[142]

यहाँ एक देहाती लड़की का दृश्य प्रस्तुत है जो गगरी लेकर पानी भरने पनघट पर जाती है। अपने चुलबुलेपन के कारण कुएँ में फिसलकर गिर जाती है। चंचल लड़की का यह बिम्ब निश्चय ही पाठक को संवेदनशील करता है।

'सदाबहार' नामक गीत का दृश्य बिम्ब मानवीकरण के रूप में चित्रित है-

जड़े भूमि में हैं गड़ाए खड़ा।
महाबाहुओं का विटप है बड़ा!!
लड़ा आँधियों से, हमेशा लड़ा।
न हारा, न टूटा, न पीला पड़ा!!
नए फूल, फल, पात से है लदा।
जवानी वसन्ती रही है सदा!![143]

ताजमहल को गीतकार ने कभी न मुरझाने वाला श्वेत कमल कहा है जो नक्षत्रों की छवि से भी निर्मल और चाँदनी से भी उज्ज्वल है। ताजमहल का यह बिम्ब गीतकार ने प्रस्तुत किया है-

शिल्प-कला की संवेदन-छवि ताजमहल है,
कभी नहीं मुरझाने वाला श्वेत कमल है
निर्मल नक्षत्रों की छवि से भी निर्मल है,
चन्द्रोदय लगता इसके आगे घूमिल है।[144]

'केन किनारे' नामक गीत में गीतकार ने केन नदी के मनोरम दृश्य को प्रस्तुत किया है। ये बिम्ब भाव-संवेद्य और आस्वाद्य दोनों हैं-

केन किनारे

पल्थी मारे

पत्थर बैठा गुमसुम!

सूरज पत्थर

सेंक रहा है गुमसुम!

साँप हवा में

झूम रहा है गुमसुम!

सहमा राही

ताक रहा है गुमसुम![145]

धूप का मानवीकरण चित्रण करने के लिए गीतकार केदारनाथ ने बिम्ब का सहारा लिया है। ये बिम्ब एक मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करते हैं-

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने

मैके में अभी बेटी की तरह मगन है

फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है

जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं।[146]

केदारनाथ अग्रवाल की अंतश्चेतना प्राकृतिक चित्रों में भी एक अनुरागपूर्ण व्यक्तित्व का आरोप कर लेती है। उनके चाक्षुष बिम्ब यथार्थ से संयोजित होने के कारण अनुभूति, भावना का सूक्ष्म संवेदना से दृश्य-स्पर्शी बन पड़े हैं।

(ii) श्रव्य-बिम्ब

श्रव्य-बिम्बों का आधार हमारी श्रुति-संवेदना[147] तथा उस पर आधारित ध्वनियाँ हैं। श्रव्य-बिम्ब भाव को संवेद्य बनाते हैं और उनका मानव हृदय पर विशेष प्रभाव रहता है। ऐन्द्रिय-सम्वेदनाओं में चाक्षुष-सम्वेदना का धरातल अधिक स्थूल है; जिसकी अपेक्षा श्रुति-संवेदना सूक्ष्म अनुभूति पर आधारित है। ध्वनियाँ गहरी अनुभूति जागृत

कर हृदय में झंकार उत्पन्न करती हैं। अतः रचनाकार ऐन्द्रिय-प्रेषणीयता को बढ़ाने के लिए श्रुति-मधुर ध्वनियों का समावेश करते हैं। रचनाकार सदा ही करधनी की झंकार, वीन, मृदंग, मंजीर, तूर्य, सारंगी आदि वाद्ययंत्र, वस्त्राभूषणों की ध्वनियाँ, पक्षी का कलरव, नदी की कलकल ध्वनियों के सहारे श्रुति-संवेदना को जागृत कर अपनी रचना को प्रेषणीय बनाता है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में श्रव्य-बिम्ब का प्रयोग हुआ है और ये बिम्ब श्रुति-संवेदना को जागृत करने में सक्षम हैं। 'छूटता है गेह' नामक गीत में विरह और प्रेम के विभिन्न रूप को कन्या की विदाई बेला के रूप में देखा जा सकता है। अपने मायके के छूटने की व्यथा और पति से मिलने की आतुरता को विरह-गीत के रूप में गा रही है। यह गीत पाठकों के अन्दर श्रव्य-संवेदना उत्पन्न करता है -

छूटता है गेह गोरी जा रही है
वेदना अब आँसुओं से गा रही है
कंठ से उमड़ी हृदय पर छा रही है
मायके की याद मन भरमा रही है
छूटता है मेरू, गंगा जा रही है
पत्थरों का भी हृदय पिघला रही है
पादपों को भेंटती अकुला रही है
गीत मिलनातुर विकल अब गा रही है।[148]

'दोपहरी में नौका विहार' नामक गीत में नाव चलाते हुए नाविक का दृश्य प्रस्तुत है साथ ही मौज-मस्ती से गीत गाते-गुनगुनाते हुए उनके भावों को श्रव्य-बिम्ब के रूप में गीतकार ने सम्प्रेषित किया है-

धीरे-धीरे मजे-मजे से रूकते औ सुसताते,
चुल्लू दो चुल्लू पानी पी मुँह को तरल बनाते,
आर-पार सब ओर ताकते आँखों को बहलाते,
पल-पल सूरज की गरमी में गोरे गात तपाते,

हाथों को मल-मलकर, रह-रह दुख-संताप मिटाते,
फिर भी मौज मनाते, गाते, गुन-गुन गीत सुनाते,
खेते रहने की धुन में ही बढ़े चले थे जाते।[149]

'पुरवैया' में पुरवैया के बहने और छम-छम नाचने का दृश्य तथा बूँदों के बरसने में घूँघर का मादक मीठा स्वर श्रव्य-संवेदना को उजागर करता है-

बजते हैं बूँदों के घूँघर
होता है मादक मीठा स्वर
करती है छम छम पुरवैया।।
कोमल दूब हरी धरती पर!![150]

'सबेरे की आग' नामक गीत में प्रातःकाल के सूर्योदय का दृश्य दिखाने के बजाय श्रव्य-संवेदना को उजागर किया गया है। चिड़ियों का चहकना, कोयल का कूकना, किरणों का बिखरना, लोगों के कामों में लगने की तत्परता का श्रव्य-बिम्ब यहाँ प्रस्तुत है-

सूरज के साथ में
सबेरे की आग है
पूरब में पैदा हुआ जीवन का राग है
पंखों के उड़ने का अम्बर में नाद है
कोयल की बोली से झरता प्रमाद है
किरनों के मेले में गाता प्रकाश है
बीना-सा बजता हुआ
मौसम का
श्वास है।[151]

'फागुन' नामक गीत में फागुन महीने के मनोरम ध्वनियों को श्रव्य-संवेदना के रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति भी इस महीने में रंगीन और मदमत्त दिखाई पड़ती है। भाव-संवेद्य श्रवण-बिम्ब का निदर्शन यहाँ प्रस्तुत है-

आमों के बागों में झाझों की झनझन में
ढोलक की बोली में वंशी की मीड़ों में
कोयल की तानों के यानों में उड़ने के
दिन आये फागुन के![152]

श्रमजीवी का सच्चा साथी घंटा चौबीसी घंटे पूरे स्वर से टन्नाता है। यहाँ घंटा के स्वर के माध्यम से गीतकार ने श्रव्य-संवेदना को सम्प्रेषित किया है। श्रमजीवी भी पुष्ट शरीर वाले हैं और इधर घंटा भी पुष्ट धातु का बना हुआ है, यहाँ दोनों में समानता है। दोनों व्यवस्था परिवर्तन के लिए मुखर हैं- इसी मुखरता में श्रव्य-बिम्ब की छटा है-

श्रमजीवी का सच्चा साथी
पुष्ट धातु का तगड़ा घंटा
साँझ सबेरे चौबिस घंटे
घन्नाता है टन्नाता है
मूढ़ अचेतन मानवता के
स्वामी के सर के ऊपर ही
गला फाड़कर पूरे स्वर से
घनन घनन घन चिल्लाता है।[153]

'पृथ्वी' नामक गीत में श्रव्य-बिम्ब के सौन्दर्य की छटा दर्शनीय है-

पृथ्वी है-
या कि खिले फूलों को गोद लिए माता है,
मोर, जिसे मुग्ध देख, नाच-नाच जाता है,
विहगों का दल विशेष पहरों तक गाता है,
और पवन पेड़ों के पत्तों से तालियाँ बजाता है।[154]

उक्त पंक्तियों में प्राकृतिक-सौन्दर्य के माध्यम से श्रव्य-बिम्ब को संप्रेषणीय बनाया गया है।

'जुताई का गाना' नामक गीत में श्रव्य-बिम्ब का सुन्दर निदर्शन हुआ है-

मेरे खेत में हल चलता है,
फाड़ कलेजा गड़ जाता है,
तड़-तड़ धरती तड़काता है,
राह बनाता बढ़ जाता है।[155]

उपरोक्त गीत में खेत में हल चलने और धरती को तड़काने का श्रव्य-बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। यहाँ 'ड़' ध्वनि के प्रयोग से ओजमयी श्रव्य-बिम्ब का अवलोकन किया जा सकता है।

(iii) स्पृश्य-बिम्ब

त्वक, संबंधी संवेदना को जगाने वाले बिम्ब स्पर्श-बिम्ब कहलाते हैं।[156] स्पर्श ऐन्द्रिय-बोध का स्थूल और प्रत्यक्ष स्तर है। स्पर्श जन्य संवेदना के आधार पर जिन बिम्बों की योजना होती है उन्हें स्पर्श बिम्ब कहते हैं।[157] स्पृश्य बिम्ब में स्पर्श-जन्य-संवेदनों के समन्वय से बिम्ब का निर्माण होता है। पेशल, कोमल, कर्कश, कठोर आदि विशेषण इस प्रकार के स्पृश्य बिम्बों के वाचक शब्द हैं जिनके बिम्बात्मक रूप अति प्रयोग के कारण जड़ बन गये हैं।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में स्पृश्य-बिम्ब का प्रयोग अल्प-मात्रा में हुआ है। इनके काव्य-संग्रहों के गीतों में प्रयुक्त स्पर्श-बिम्बों को देखा जा सकता है।

'कंचन-किरणें' नामक गीत में प्राकृतिक-सौन्दर्य का चित्रण करने में स्पर्श-बिम्ब का सहारा लिया गया है। यह स्पर्श-संवेदन भाव ही मानवीकरण के रूप में चित्रित है-

धीरे से पाँव धरा धरती पर किरनों ने,
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग तलुओ का।
छोटा-सा गाँव हुआ केसर की क्यारी-सा
कच्चे घर डूब गये कंचन के पानी में।

डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले,
उषा ने मस्ती से फूलों को चूम लिया।
गोरी ने गीतों से सरसों की गोद भरी,
भौरों ने गोरी के गालों को चूम लिया।[158]

उषा के द्वारा फूलों का चुम्बन लेना, सरसों की गोद भराई करना और भौरों द्वारा गोरी के गालों को चूमने में स्पर्श-संवेदना की अनुभूति होती है।

स्पर्श-बिम्ब का एक अन्य निदर्शन 'वायु' नामक गीत में हुआ है। प्रकृति-चित्रण के माध्यम से इस बिम्ब को संप्रेषित किया गया है-

बुलबुल-सी वायु आज चुलबुल है,
बैठा हूँ जहाँ वहाँ गुलगुल है,
इसीलिए दुनिया यह अच्छी है,
उनकी मुलायम-सी लच्छी है।[159]

अपने बैठे हुए स्थान को गुलगुल महसूस करना और दुनिया को ऊन जैसी मुलायम लच्छे की अनुभूति करना स्पर्श-बिम्ब ही है।

एक अन्य गीत 'पृथ्वी' में पृथ्वी को माँ के रूप में देखना और उसकी गोद को माँ की गोद की कोमलता और गरमाहट को महसूस करना और फूलों को गोद में लेने की कल्पना ही स्पर्श-बिम्ब की संवेदना को जागृत करता है-

पृथ्वी है
या कि खिले फूलों को गोद लिए माता है,
मोर, जिसे मुग्ध देख; नाच-नाच जाता है,
विहगों का दल विशेष पहरों तक गाता है;
और पवन पेड़ों के पत्तों से तालियाँ बजाता है![160]

'सीता मैया' नामक गीत में सीता एक प्रतिनिधि चरित्र है जो लाखों दुःख सहती हुई काम करके अपनी गुजारा करती है, भेड़ बकरी चराती है; धूप में छिपती

है, हाथ में फूटी कौड़ी नहीं पर धरती माँ की गोदी में सोकर उसे माँ की गोद की स्पर्शानुभूति होती है। इसी भाव को गीतकार ने अपने गीत में स्पर्श-संवेदना के रूप में प्रेषित किया है-

कौड़ी मोल नहीं रखती है,
आँखें भरकर रोती है।
धरती माता की गोदी में,
सीता चुपके सोती है।।[161]

'पुरवैया' नामक गीत में पूर्वी हवा की अठखेलियाँ किस तरह स्पर्श-संवेदना जगाती है उसका बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। कोमल हरी दूब पर युवती पुरवैया नाच रही है। हरी दूब की कोमलता का एहसास पाठकों को भी होता है-

कोमल दूब हरी धरती पर
विद्युत की शोभा से सजकर
नाच रही युवती पुरवैया।[162]

'निशि आई' गीत में स्पर्श-बिम्ब का सुन्दर चित्रण हुआ है। निशि अंधकार की उँगली चूमकर धरती की आँखें धुँधली कर देती है। अतः परिचित भी धुँधलके में अपरिचित से लगते हैं। प्रकृति का यह स्पर्श-संवेदना पाठकों को भी संवेदनशील करता है-

निशि आई, तू न मोहिनी आई!
चूमचूमकर तम की उँगली
आँख मही की धुँधलाई
परिचित की आकृति भी उसको
निरी अपरिचित दिखलाई,[163]

स्पर्श-बिम्ब का एक अन्य चित्रण अवलोकनार्थ प्रस्तुत है-

हे मेरी तुम!

मैंने देखा :
पवन प्रसन्न चला
रसियाया;
सौरभ ने भूतल महकाया,
किरन-किरन ने
मुँह गुलाब का चूमा
जैसे तुमने मुझको
मैंने तुमको चूमा।[164]

किरणों द्वारा गुलाब का चुम्बन लेना और उसके सदृश्य प्रेमी-प्रेमिका का एक दूसरे को चुम्बन करना, स्पर्श-बिम्ब का मनोहारी सुन्दर चित्रण है। प्रकृति का प्रेम मानव-मन को उद्दीप्त करता है और परिणामस्वरूप उद्दीप्त भाव प्रेम की चरम-सीमा को पहुँच जाता है।

'जल उठूँ मैं' नामक गीत में प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है यह प्रेमाभिव्यक्ति स्पृश्य-संवेदना जगाने में सक्षम है। असीम प्रेम की सुखानुभूति में स्पर्श-बिम्ब की योजना दिखाई पड़ती है-

जल उठूँ मैं जल उठूँ ऐसा कहाँ वरदान पाऊँ?
प्रेम है इतना हृदय में
नेह का नीरज रचाऊँ
देह का दीपक शिखा को
युग युगान्तर तक जलाऊँ
युग्म-संकोची कुचों के बीच
बस सुख-स्पर्श पाऊँ
तुम मुझे चूमो बराबर, मैं
नहीं फिर भी अघाऊँ।[165]

प्रेम का स्पर्श मनुष्य को मनुष्य बना देता है। जानवर तुल्य व्यवहार करनेवाला भी प्रेम का रस पाकर प्रेमसिक्त हो जाता है। पत्थर दिल भी कमलदल की भाँति कोमल और कमनीय हो जाता है। 'प्रेम ने छुआ' नामक गीत में इसी स्पर्श-संवेदना का स्फुरण हुआ है-

प्रेम ने छुआ
जानवर से आदमी हुआ
पत्थर दिल
कुमुद हुआ।
सूर्य की आग
वरदानी हुई
भूमि की देह धानी हुई।[166]

स्पर्श-संवेदना का एक सुन्दर बिम्ब 'तू ने जो गरमाई दी है' नामक गीत में प्रस्तुत किया गया है। अलौकिक स्पर्श की अनुभूति एकनिष्ठता की ओर अग्रसर कराती है-

तू ने जो गरमाई दी है
मुझे, अंग से अंग लगाकर
मैं इसका एहसान मानता हूँ
तुमसे बढ़कर
और किसी को नहीं जानता हूँ।[167]

'मैंने प्रेम अचानक पाया' नामक गीत में स्पर्श-संवेदना अलौकिक प्रेमानुभूति का दर्शन कराती है। एकनिष्ठ-प्रेम की पुलक इस गीत में दिखाई पड़ता है।

मैंने प्रेम अचानक पाया
गया ब्याह में युवती लाने
प्रेम ब्याहकर संग में लाया।।
घर में आया, घूँघट खोला,

आँखों का भ्रम दूर हटाया।
प्रेम-पुलक से प्रेरित होकर
प्रेम-रूप को अंग लगाया।।[168]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में स्पृश्य-बिम्ब का प्रयोग प्रकृति तथा प्रेम के सौन्दर्य और अनुभूति के लिए हुआ है। ये बिम्ब स्पृश्य-संवेदना जागृत करने में सक्षम हैं।

(iv) **घ्राण-बिम्ब**

घ्राण-विषयी बिम्ब गन्ध-विषयक अप्रस्तुतों के माध्यम से घ्राण-विषयक अनुभूति[169] को उद्‌बुद्ध करते हैं और उसके समग्र प्रभाव को संवेदना के आधार पर मूर्तिमत्ता प्रदान करते हैं। यह निर्विवाद है कि दृश्य को प्राणवता देने में गन्ध-योजना सहायक सिद्ध होती है। संसार में प्रत्येक पदार्थ का अपना एक गन्ध होता है। पृथ्वी गन्धवती है। गन्ध के दो प्रकार हैं- सुगन्ध और दुर्गन्ध। काव्य-रसास्वादन आनन्ददायक और मन को हर्षोल्लास से भरनेवाला होता है। इसलिए उसमें सुगन्धयुक्त पदार्थों का ही वर्णन प्रधान रहता है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में फूलों की सुगन्ध है। ये सुगन्ध सहृदय के अन्दर गन्ध-संवेदना उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं। सहृदय अनायास ही उस गंध-बिम्ब का अनुभव करता है। फूलों का सुगन्ध मन-प्राण को एक विलक्षण उत्फुल्लता और तृप्ति प्रदान करती है। कलियाँ अपना दिल खोलकर पंखुरियों के द्वारा मुसकाती है और सुगन्धी चारो तरफ व्याप्त हो जाती है। ऐसे वर्णन में घ्राण बिम्ब है-

कली-कली-दिल खुला
पेड़ का
पंखुरियाँ मुसकायी
रूप-गंध भर लायीं।[170]

'निशि आई' नामक गीत में मोहिनी के बाल सुगंधित हैं और वह प्रेमी के प्रेम-भाव को उद्दीप्त करती है। रात्रि के आगमन पर रात में खिलनेवाले फूल प्रफुल्लित हो जाते हैं, पर प्रेमिका के आगमन की कमी प्रेमी महसूस करता है-

निशि आई, तू न मोहिनी आई!
केश सुगंधित, मद-अभिमंत्रित
यौवन चर्चित, भर अँगड़ाई।[171]

केश-पास में बिंधे बेला के फूल रात भर प्रेमिका के अंगों को सुगंधित करते रहे। यह सुगंधी सहृदय को भी महसूस होती है। ये भाव घ्राण-संवेदन जगाने में पूर्णतः सक्षम हैं-

केश-पाश में बसे
वासना-विषयी बेला महके,
गंध-गंध हो गये अनंगी अंग रात भर गमके,[172]

'पूर्णमासी' नामक गीत में घ्राण बिम्ब है। चाँदनी रात में खिले फूल अपनी सुगंधी से रात को और अधिक मनमोहक बना रही है-

पारदर्शी चाँदनी की रात
पूर्णमासी की प्रकाशित यह विवसना रात
रूप की रम्या अचम्भा कर रही यह रात
पुष्प के प्रश्वास से मधुगंध गुम्फित रात।[173]

'वसंत' नामक गीत में गीतकार ने वसंत के आगमन पर प्रकृति में हुई परिवर्तन को चित्रित किया है। ठंड के प्रकोप से आहत वनस्पतियाँ वसंत के आगमन पर फूलने लगी हैं और फूलों की सुगंधी से वे भी मदमत्त होने लगी है। घ्राण-बिम्ब का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत है-

'हिम से हत संकुचित प्रकृति अब फूली
रूप-राग-रस-गंध-भार भर झूली'[174]

'न चलाओ दंभ की दराँती' गीत में भी घ्राण-संवेदना जागृत हुई है। हरे पेड़ जहाँ हँसते-मुसकुराते हैं, वहीं फूल अपनी महक चारों ओर बिखेरकर संतप्त हृदय को शीतल करते हैं-

हर्ष के हरे पेड़ जहाँ हँसते हैं,
फूल-फूल हुए महकते हैं।[175]

गुलाब के फूल केदारनाथ को बहुत ही प्रिय रहे हैं। उन्होंने गुलाब को गर्बीले पौधे के रूप में अभिहित किया है। यह गर्वीला पौधा अपने फूल से सबका मन मोहित कर लेता है और अपनी सुगंधी से धरती को महमहा देता है। गुलाब का नाम सुनते ही उसकी सुगंधी सहृदय को अनुभूत होने लगती है-

खड़े-खड़े हँसता है
गुलाब का गर्वीला पेड़,
मनहर फूल खिलाये,
संसार को
सुगंध से महमहाये।[176]

'चन्दू' नामक गीत सर्वहारा की स्थिति को बयान करता है। चन्दू चना-चबेना खाकर जीवन बसर करता है। भीख माँगकर खाता-पीता है। उसके रुखे-सूखे खाने और चरस पीने की अनुभूति सहृदयों को होती है। चरस के धुएँ के साथ शायद उसकी शेष आयु भी उड़ती नजर आती है। हालाँकि चरस का धुआँ दुर्गंध पैदा करता है लेकिन चंदू जैसे लोगों की यही यथार्थ स्थिति है, जो घ्राण-संवेदना उत्पन्न करता है-

कहीं एक कोने में बैठा
हाथ चरस की चिलम दबाए,
गुपचुप-गुपचुप फूँक लगाता,
शेष आयु का धुआँ उड़ाता![177]

केदारनाथ अग्रवाल ने गाँव का यथार्थ-चित्र प्रस्तुत किया है। गाँव के लोग अभावग्रस्त और शोषित-पीड़ित होते हैं। घूर के गोबर की दुर्गंध और मवेशियों के मूत्र की गंध से उनके जीवन के गुलाब की महक स्वतः समाप्त हो जाती है। गोबर का नाम सुनते ही उसकी गंध घ्राण-बिम्ब उपस्थित करता है। लेकिन गाँवों की यही यथार्थ स्थिति है जो संवेदना उत्पन्न करता है-

सड़े घूर की गोबर की
बदबू से दबकर
महक जिन्दगी के गुलाब की
मर जाती है।[178]

अपनी प्यारी को संबोधन करके लिखे गीत में गुलाब की खुशबू के माध्यम से घ्राण-बिम्ब की योजना स्पष्टतः परिलक्षित है-

प्यारी, फूल-गुलाब महकता
मधुकर-हृदय सुवासित रहता!
प्यारी, प्रेम-गुलाब महकता
प्रियतम हृदय सुवासित रहता!![179]

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में घ्राण-बिम्ब की सुन्दर योजना हुई है। हालाँकि इस बिम्ब के गीत बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं।

(v) आस्वाद्य-बिम्ब

स्वाद रसना का विषय है और ऐन्द्रिय बोध का अपेक्षाकृत स्थूल स्तर है। स्वाद को सौन्दर्यानुभूति के स्तर पर लाकर प्रस्तुत करने का प्रयास सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में बहुत कम हुआ है।[180] पदार्थों की आस्वादगत विशेषताओं (मधुरता, अम्लता आदि) का ज्ञान रसना से ही प्राप्त होता है।[181] रसना प्राप्त आस्वाद की अवधि अल्पकालिक होती है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में आस्वाद्य-बिम्बों का नितान्त अभाव है। काव्य-संग्रहों

के गीतों में दो-चार आस्वाद्य-बिम्ब के दर्शन हो जाते हैं, जिनका चित्रण आगे किया जा रहा है।

'धूप' नामक अति संक्षिप्त गीत में आस्वाद्य-बिम्ब की योजना दिखाई पड़ती है। ठंड के मौसम में धूप या गर्मी काफी अच्छी लगती है। चराचर जगत ठंडी के प्रकोप से संत्रस्त होकर गर्मी की चाह रखता है। धूप उस समय जीवों को ही नहीं प्रकृति को भी अच्छी लगती है और मनुष्य को तो ठंड में गर्म दूध और भी अच्छा लगता है-

पृथ्वी ने धूप पिया, पेड़ों ने धूप पिया,
नदियों ने धूप पिया, सागर ने धूप पिया,
हम सबने साथ-साथ गर्म-गर्म दूध पिया।[182]

अंतिम पंक्ति को पढ़ने से पाठक को दूध पीने के स्वाद की अनुभूति हो जाती है।

'आज सुबह से' नामक गीत में आस्वाद्य-संवेदना का उभार पूरी तरह से हुआ है। बुलबुल के जोड़े को देखकर प्रेमी-प्रेमिका का प्रेमासिक्त हो मधु पान करना और दुनिया की दहन-दाह को भूलना आस्वाद्य-बिम्ब को चित्रित करता है-

सफल हुआ दिन भर का जीना,
एक साथ मिलकर मधु पीना
दहन-दाह की दुनिया भूले,
प्रेम-लोक का झूला-झूले।[183]

'चंदू' नामक गीत में चन्दू एक ऐसा पात्र है जो गठीले वदन का युवक है, पर उसके धड़ के ऊपर चीथड़ा भी नहीं है और धड़ के नीचे मात्र एक चीथड़ा है, माँग कर खाना उसका व्यसन है। चना चबैना खाकर अपना जीवन-बसर करने के लिए वह मजबूर है। आस्वाद्य-बिम्ब का एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

कहीं एक कोने में बैठा
हाथ चरस की चिलम दबाए,

गुपचुप-गुपचुप फूँक लगाता,

शेष आयु का धुआँ उड़ाता।

चन्दू चना चबैना खाता!![184]

चन्दू द्वारा चरस पीने और चना चबैना खाने में आस्वाद्य बिम्ब है। ऐसा ही एक और गीत है 'चैतू'। चैतू दुनियादारी से ऊब कर बहुत ठर्रा पी लेता है और मृत्यु-तुल्य हो रात भर पड़ा रहता है। उसके ठर्रे पीने में आस्वाद्य बिम्ब है-

बीबी, बच्चे घर की माया,

सब की दुनियादारी तज के,

सूरज डूबे, छुट्टी पा के,

जिन्दा रहने से उकता के,

चैतू ने बेहद ठर्रा पी,[185]

पाठक चाहे ठर्रे की स्वाद लिया हो या नहीं पर उसकी कल्पना से ही आस्वाद्य-संवेदना उभरती है। परिवार का बोझ न ढो पाने के वजह से चैतू ठर्रा पी कर दुनियादारी से मुक्त हो जाना चाहता है, पर संयोग से वह बच जाता है। पाठकों की संवेदना चैतू के प्रति उभरती है।

एक अन्य गीत 'मछुआहे' में मछुआरों की दयनीय दशा का चित्रण है, वे अपनी भूख मिटाने के लिए मगरमच्छ का माँस खाने को मजबूर हैं-

गंगा तट के ये मछुआहे,

नैया पार लगाने वाले,

आदमखोर मगर को घेरे

बल-विक्रम से मार रहे हैं;

क्रूर कुल्हाड़ी की चोटों से

माँस काटकर राँध रहे हैं,

और गरम ही गरम चबा के

भूख पेट की मिटा रहे हैं।[186]

यहाँ माँस राँधना और खाना आस्वाद्य-बिम्ब को उभारता है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में बिम्ब का पूरा विधान देखने को मिलता है। इन्द्रिय-संवेदना के आधार पर प्रायः सभी बिम्ब पूरी तरह से चित्रित हैं। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि घ्राण-बिम्ब और आस्वाद्य-बिम्ब का चित्रण केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में कुछ कम हुआ है।

ङ) मिथकों का प्रयोग

भारतीय संदर्भों में मिथक की अवधारणा लगभग नई है, हिन्दी भाषा और साहित्य में इस शब्द के आविष्कारक आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं।[187] आंग्ल शब्द 'मिथ' के पर्याय के रूप में 'मिथक' शब्द का प्रयोग किसी गोष्ठी में गिरिजाकुमार माथुर के द्वारा[188] किया गया था। आचार्य हजारी प्रसाद ने चण्डीगढ़ में हुई एक गोष्ठी में लालित्य तत्व पर विचार व्यक्त करते हुए 'मिथ' के लिए 'मिथक' शब्द का प्रयोग किया था। 'मिथ' (Myth) मूल रूप में ग्रीक भाषा का शब्द है। यूनानी 'माइथॉस' (Mythos या Muthos) से इसकी व्युत्पत्ति मानी गयी है, जिसका अर्थगत संदर्भ है- 'मुँह से निकला हुआ', आप्तवचन या अतर्क्य कथन। कुछ आलोचक संस्कृत के 'मिथस' या 'मिथ्या' से इसकी अर्थगत संगति बैठाने की भ्रांत चेष्टा करते हैं। मिथक संबंधी आधुनिक अवधारणाओं में 'मिथ' को सत्य का समानधर्मी माना गया है।[189]

मिथक के कोशगत अर्थों में दैवी शक्तियों की कथाओं, प्राचीन विश्वासों तथा धार्मिक कर्मकांडों के कथात्मक स्वरूप पर अधिक बल दिया जाता रहा है।[190] हिन्दी में मिथक की इन प्राचीन स्थापित प्रवृत्तियों (रहस्यात्मक, अलौकिकता या अतिमानवीयता, अतिप्राकृत दैवीय तत्वों की काल्पनिक कथा) के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने इसे अन्य-अनेक नामों से संज्ञायित किया है। फादर कामिल बुल्के ने इसे पुराणकथा, देवकथा[191] कहा है। डॉ० सत्येन्द्र ने अपने लोक-साहित्य संबंधी ग्रंथ में इसके लिए 'धर्मगाथा' शब्द का प्रयोग किया है। मिथक की सृजन-प्रक्रिया के बारे में डॉ० बच्चन सिंह का मानना है- 'वस्तुतः अचेतन मन द्वारा प्रकृति के चमत्कारिक प्रभावों की अनुभूति का

कल्पनात्मक सृजन ही मिथक है। यह सृजन यथार्थ के प्रति सहज स्फूर्त प्रतिक्रिया है।[192]

मिथक और साहित्य का घनिष्ठ संबंध अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत में अनेक ऐसे मिथक मिलते हैं जिनका साहित्यिक मूल्य है और जिनका कालिदास आदि ने प्रयोग किया है। हिन्दी में प्रसाद का कामायनी, धर्मवीर भारती का अंधायुग, 'कनुप्रिया', 'एक कंठ विषपायी', 'संशय की रात', मिथकों पर आधृत रचनाएँ हैं जिनमें पुराकथा द्वारा समसामयिक संवेदनाओं, समस्याओं और उलझनों को रूपायित किया गया है, सार्वभौम मानव की छवि उतारी गयी है।[193] मूलतः मिथक भौतिक जगत का यथार्थ न होकर जाति-समूह की परम्परागत सांस्कृतिक अस्मिता की सत्य-कथा एवं पहचान है। इन कथा-संदर्भों में जातीय जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ एवं मूल्य जुड़े होते हैं और अनेक स्तरों पर जातीय चेतना एवं जनजीवन का सजीव यथार्थ इनमें घुला-मिला रहता है। कहना न होगा कि मिथक मनुष्य के अनुभव, ज्ञान और व्यवहार का प्रथम एवं अंतिम कोश है।[194]

प्रगतिवादी गीतकार केदारनाथ अग्रवाल की रचनाओं में मिथक के बारे में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- ''केदार की कविताएँ अतीत में विस्मृत उपेक्षितों की हूक मिथक गढ़कर सुनती सुनाती हैं।''[195] डॉ० रामचन्द्र मालवीय द्वारा मिथक पर पूछे गये एक प्रश्न के जवाब में स्वयं केदारनाथ ने कहा है- ''मिथकों से आपका जीवन निरूपित नहीं किया जा सकता। 'मिथक' चाहे जैसे हों, मिथक की गाँठ को आज के आदमी के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता। मिथकीय युगों की समस्याएँ और समाधान भिन्न थे। और आज के भी नितान्त भिन्न हैं। 'मिथक' किसी-किसी युग में एक कड़ी थे और तब वे, किसी प्रकार से सही, किसी के लिए सही अर्थपूर्ण हुए होंगे। लेकिन इस प्राविधिक और वैज्ञानिक युग के संसार के देशों में आदमी को मानसिक बनाने के लिए उनका उपयोग नहीं करना चाहिए। मैं इसको आदमी के लिए उपयुक्त नहीं समझता और नहीं इससे महान् मानवीय मूल्यों की विरासत विकसित की जा सकती है।''[196]

लेकिन केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उन्होंने गीतों में जाने-अनजाने 'मिथक' का प्रयोग किया है। कभी-कभी हम बुरी लगने वाली चीजों या बातों का भी अनदेखी नहीं कर सकते, यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिन मिथकों को वे आदमी के लिए अनुपयोगी मानते थे, वही मिथक उनके गीतों में कहीं न कहीं समाहित हो चुके हैं। यह बात सच है कि वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान मिथकीय प्रसंगों से नहीं किया जा सकता है। समय के अभाव और वैज्ञानिक तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण की खोज वाली मानसिकता और आज की युवा मानसिकता के लिए मिथक अप्रासंगिक हैं, पर रचनाकार अपनी कथन को प्रभावी बनाने के लिए और प्रासंगिक तथ्यों को पूरजोर स्थापित करने के लिए मिथक को प्रयोग में लाता है। केदारनाथ अग्रवाल ने भी शायद ऐसा ही किया है। हालाँकि 'मिथक' उनके बहुत कम गीतों में मिलते हैं। केदारनाथ के गीतों में प्रयुक्त मिथक निम्नलिखित हैं।

'लीला के बाद' नामक गीत में 'मिथक' का प्रयोग देखा जा सकता है-

लीला के बाद
रामलीला के राम
जंगली जनतंत्र में
रावण का रोल अदा करते हैं
दूसरों की सम्पदा हरते हैं[197]

उपरोक्त पंक्तियों में पौराणिक 'मिथ' के माध्यम से आज के तथाकथित सभ्य और अपने को आदर्शवादी कहलाने वाले लोग किस तरह से पीठ पीछे रावण-सा अत्याचार करते हैं, इसका जिक्र किया गया है। उनकी मनोवृत्ति दूसरों की सम्पत्ति लूटने की ही होती है।

'धरती' नामक गीत में भी पौराणिक मिथ का अवलोकन किया जा सकता है-

नहीं कृष्ण की,
नहीं राम की,

नहीं भीम, सहदेव, नकुल की,
नहीं पार्थ की,
नहीं राव की, नहीं रंक की,
नहीं किसी की, नहीं किसी की,
धरती है केवल किसान की।[198]

उपर्युक्त पंक्तियों में रामायण और महाभारत कालीन पात्रों का उल्लेख करते हुए उन पात्रों को आज के मानवों में आरोपित कर 'मिथ' को चित्रित किया गया है। 'धरती' पर तो उसी का अधिकार है जो उसका सेवक है। इसपर न तो अलौकिक या सर्वशक्तिमान व्यक्तियों का अधिकार है, न किसी राजा या राव का ही इसपर अधिकार है।

'जनयुग' गीत में मिथक के माध्यम से गीतकार ने स्वयं तथा तत्कालीन अर्थाभाव से ग्रस्त लोगों की स्थिति का जिक्र किया है-

आ जाते हैं याद मुझे भी आज सुदामा,
जिनके घर भूखी बैठी थी दीना भामा।
फिर भी चावल चार प्यार के वह ले धाए,
मिले कृष्ण से अपनी आँखे शीश झुकाए।।[199]

उपरोक्त पंक्तियों में पौराणिक मिथ के माध्यम से गीतकार ने अपनी दयनीय दशा का चित्रण करते हुए अंत में यह संतोष व्यक्त करता है कि सुदामा जैसे दरिद्र का साथ उसकी पत्नी ने कभी नहीं छोड़ा और सुदामा पत्नी की प्रेरणा से ही मुट्ठीभर चावल भेंट में लेकर शीश झुकाए अपने मित्र कृष्ण से मिलने गये। सुदामा जीवन-जीने की प्रेरणा देने वाले हैं और उनकी पत्नी धैर्य और आत्मविश्वास। सुदामा के 'मिथ' के माध्यम से दीन-हीन व्यक्ति की सच्चाई और ईमानदारी को वर्तमान संदर्भ में चित्रित किया गया है।

शिव के रौद्र रूप के 'मिथक' द्वारा स्वतंत्रता की चेतना प्रत्येक भारतीय नौजवानों में गीतकार देखना चाहता है। 1932 ई० में लिखित 'आधुनिक शंकर' नामक गीत में मिथक का अवलोकन किया जा सकता है-

सारा पापाचार नष्ट होगा शीघ्र भारत का,
सत्यता विमल-वर गंगा तू बहावेगा,
कपड़ा विदेशी आना बंद होगा भारत में,
चरखा त्रिशूल लिये पहरा लगावेगा।
दूरकर दासता पछाड़ पराधीनता को।
सत्याग्रह लोचन से आग बरसायेगा,
होके नौजवान वीर भारतीय सरदार,
शंकर का रौद्र रूप अब तू कहावेगा।[200]

गीतकार ने शंकर के माध्यम से नौजवानों को आह्वान किया है कि वे सभी शिव का रौद्र रूप धारण कर अपने तथा देश को स्वतंत्र कराए। जिस तरह से शिव ने तांडव करके कामदेव को भस्म किया था उसी तरह से यदि नवयुवक रौद्र रूप अपना लें तो किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं कि हमें गुलाम बना कर रखें। पौराणिक मिथक को वर्तमान संदर्भ में चित्रित कर मिथक संबंधी संवेदना जगाने का यहाँ प्रयास किया गया है।

रामायण कालीन 'मिथक' द्वारा 'सीता मैया' नामक गीत में गीतकार ने राम, सीता, जनक, जनकपुरी और अवधपुरी के माध्यम से एक ऐसे प्रतिनिधि दम्पति का जिक्र किया है जो अभावग्रस्त होने के बावजूद रामराज्य सा सुखानुभूति करते हैं।

जनकपुरी की पैदाइस है
अवधपुरी में आई है।
जनका ठाकुर की बेटी है।
रमचन्दा को ब्याही है।।

x x x

मूसल, चक्की, कूटना-पिसना
सब तड़के से करती है।
खपरे-छाये कच्चे घर में,
रामराज्य में रहती है।।[201]

रामराज्य में रहने-सा अनुभव करनेवाली स्त्री कभी भी धन की चाह नहीं रखती, वह अपने पति के साथ सुखपूर्वक जीवन बीता रही है। यदि प्रत्येक स्त्री इसी तरह से अपने को संयमित रखकर पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए, पति को सत्कार्य के लिए प्रेरित करती रहे तो यह देश और परिवार निश्चय ही रामराज्य में राम के परिवार सदृश जीवन बीता सकेगा।

गीतकार केदारनाथ अग्रवाल ने सिर्फ सौन्दर्यानुभूति के लिए ही 'मिथ' का प्रयोग नहीं किया है। उनके गीत में मिथ आधुनिक संदर्भ तथा परिस्थितियों को उभारने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मिथ आध्यात्मिक विचारों को पूर्ण रूप[202] प्रदान करते हैं। मिथ पौराणिक तथा अन्य प्राचीन कथाओं तथा धारणाओं को मूर्तिमान रूप में साकार करते हैं। मिथों द्वारा काव्याभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होती है। अपने कथन को प्रभावशाली बनाने, व्यवस्था परिवर्तन करने और मानसिकता बदलने के लिए ही केदारनाथ ने अपने गीतों में 'मिथ' का प्रयोग किया है।

उपरोक्त विन्दुओं के अवलोकन के पश्चात् कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल के गीत भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से बड़े ही बेजोड़ हैं। उनकी भाषा सहज और सरल है। उसमें तद्‌भव, तत्सम, देशज तथा विदेशी शब्दों के अलावा बुन्देली शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। गीतों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने गीतों में चमत्कार-प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। लेकिन इतना कहा जा सकता है कि अलंकार सौन्दर्यवर्द्धन के साधन के रूप में गीतों में प्रयुक्त हुए हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति उन्होंने अलंकारों का चमत्कारिक प्रयोग नहीं किया है। जहाँ तक प्रतीक और बिम्बों का सवाल है- वहाँ उनके प्रतीक और बिम्ब संवेदना को उभारने में सक्षम हैं। उनके

गीतों में प्राकृतिक प्रतीक ही ज्यादा देखने को मिलते हैं। बिम्ब की दृष्टि से गीतों का अवलोकन करने पर इन्द्रियग्राह्य बिम्ब (दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्राण और आस्वाद्य) ही ज्यादातर गीतों में दिखाई पड़ते हैं। मिथकों के प्रयोग की दृष्टि से यदि देखा जाय तो केदारनाथ अग्रवाल मिथको का समर्थन तो नहीं करते, पर जाने-अनजाने उनके गीतों में मिथकों का प्रयोग हुआ मिलता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से केदारनाथ अग्रवाल के गीत सहृदयों के हृदय में संवेदना जगाने में सक्षम हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1) रामसिंह तोमर (सं) - विश्वभारती पत्रिका (लेख-मिथक : सीमाएँ और स्वरूप) पृ. सं.356

2) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 10

3) वही, पृ. सं. 11

4) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 203

5) वही, पृ. सं. 204

6) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे, खुले डैने, पृ. सं. 20

7) भोलानाथ तिवारी - भाषाविज्ञान, पृ. सं. 1

8) वही, पृ. सं. 2

9) वही, पृ. सं. 2

10) आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. सं. 19

11) भोलानाथ तिवारी - भाषाविज्ञान, पृ. सं. 5

12) मैनेजर पाण्डेय - हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. सं. 150

13) वही, पृ. सं. 199

14) नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 138

15) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 68

16) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 7

17) केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं. 5

18) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 16

19) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ.सं. 179

20) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 153

21) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 53

22) केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, पृ. सं. 45

23) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 20

24) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 108

25) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 92

26) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 32

27) वही, पृ. सं. 47

28) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 27

29) वही, पृ. सं. 27

30) वही, पृ. सं. 27

31) वही, पृ. सं. 28

32) वही, पृ. सं. 29

33) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 89

34) वही, पृ. सं. 165

35) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 8

36) वही, पृ. सं. 8-9

37) आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - काव्य के तत्व, पृ. सं. 52

38) सत्यदेव चौधरी, शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, पृ. सं. 101

39) वही, पृ. सं. 101

40) वही, पृ. सं. 101

41) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 147

42) सत्यदेव चौधरी, शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, पृ. सं. 26

43) सियाराम तिवारी - साहित्यशास्त्र और काव्यभाषा, पृ. सं. 39

44) वही, पृ. सं. 37

45) वही, पृ. सं. 37

46) सत्यदेव चौधरी, शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, पृ. सं. 109

47) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 6
48) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 148
49) वही, पृ. सं. 148
50) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 14
51) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 148
52) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 74
53) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 223
54) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 25
55) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 121
56) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा. पृ. सं. 40
57) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 108
58) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 25-26
59) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 33
60) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 149
61) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 29
62) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 23
63) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 150
64) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 96
65) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 23
66) आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - काव्य के तत्व, पृ. सं. 63
67) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 29
68) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 21
69) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 23
70) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 106
71) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 227
72) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 25

73) आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - काव्य के तत्व, पृ. सं. 63
74) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 66
75) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 231
76) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 20
77) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 38
78) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 21
79) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 19
80) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 25
81) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 87
82) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 121
83) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 67
84) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 86
85) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 200-201
86) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 45
87) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 160
88) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 23
89) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 25
90) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 175
91) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 37
92) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 69
93) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 42
94) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 173
95) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 73
96) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 47
97) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 179
98) केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, पृ. सं. 96

99) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 43
100) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 82
101) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 173
102) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 33
103) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 75
104) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 81
105) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 139
106) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 46
107) भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, पृ. सं. 263
108) वही, पृ. सं. 263
109) वही, पृ. सं. 263
110) सुधा गुप्ता - स्वातंत्र्योतर हिन्दी काव्य : सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन, पृ. सं. 45
111) वही, पृ. सं. 46-47
112) वही, पृ. सं. 47
113) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 21
114) केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, पृ. सं. 45
115) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 25
116) केदारनाथ अग्रवाल - वही, पृ. सं. 133
117) केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे खुले डैने, पृ. सं. 63
118) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 34
119) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 153
120) वही, पृ. सं. 135
121) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 135
122) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 124
123) वही, पृ. सं. 92
124) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 181-182

125) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद-काव्य में बिम्ब योजना, पृ. सं. 17

126) सत्यदेव चौधरी, शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, पृ. सं. 342

127) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 1

128) सुधा गुप्ता - स्वातंत्र्योतर हिन्दी काव्य : सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन, पृ. सं. 41

129) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद-काव्य में बिम्ब योजना, पृ. सं. 19

130) वही, पृ. सं. 20

131) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 2

132) वही, पृ. सं. 3

133) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद-काव्य में बिम्ब योजना से उद्धृत, पृ. सं. 20

134) सुधा गुप्ता - स्वातंत्र्योतर हिन्दी काव्य : सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन, पृ. सं. 42-43

135) वही, पृ. सं. 43

136) वही, पृ. सं. 44

137) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद-काव्य में बिम्ब योजना, पृ. सं. 145

138) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 64

139) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 134

140) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 222-223

141) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 87

142) वही, पृ. सं. 108

143) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 76

144) वही, पृ. सं. 138

145) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 123

146) वही, पृ. सं. 63

147) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 65

148) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 85

149) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 67

150) वही, पृ. सं. 81

151) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 181

152) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 89-90

153) वही, पृ. सं. 129

154) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 149

155) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 67

156) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद-काव्य में बिम्ब योजना, पृ. सं. 157

157) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 75

158) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 33

159) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 115

160) वही, पृ. सं. 149

161) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 151

162) वही, पृ. सं. 81

163) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 29

164) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 41

165) केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. सं. 231

166) केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, पृ. सं. 207

167) केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, पृ. सं. 70

168) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 74

169) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 80

170) केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, पृ. सं. 41

171) केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, पृ. सं. 30

172) वही, पृ. सं. 145

173) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 153

174) केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. सं. 37

175) केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, पृ. सं. 38

176) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 56

177) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 46

178) वही, पृ. सं. 63

179) वही, पृ. सं. 80

180) रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद काव्य में बिम्ब योजना, पृ. सं. 162

181) पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ. सं. 84

182) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 15

183) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 75

184) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 46

185) वही, पृ. सं. 47

186) वही, पृ. सं. 62

187) रमेश गौतम - मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, पृ. सं. 13

188) रामसिंह तोमर (सं) - विश्व भारती पत्रिका, खंड-15, अंक-4, जनवरी-मार्च, 1975, दलजीत दिब्यांशु का लेख, पृ. सं. 350

189) रमेश गौतम - मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, पृ. सं. 14

190) वही, पृ. सं. 15

191) वही, पृ. सं. 15

192) धर्मयुग, जून 7;1968 बच्चन सिंह का लेख : पुराने मिथक : आधुनिक प्रयोग, पृ. सं.19

193) सत्यदेव चौधरी, शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, पृ. सं. 339

194) रमेश गौतम - मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, पृ. सं. 83

195) विश्वनाथ त्रिपाठी - पेड़ का हाथ, पृ. सं. 50

196) नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. सं. 127-128

197) केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, पृ. सं. 112

198) केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, पृ. सं. 55

199) केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. सं. 136

200) केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ. सं. 40

201) वही, पृ. सं. 150

202) सुधा गुप्ता - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य : सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन, पृ.सं. 115

उपसंहार

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद युग के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने समाज में फैली कुरूपताओं, विद्रूपताओं, कुत्साओं और विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से उनके गीत वैविध्य से परिपूर्ण हैं। केदारनाथ अग्रवाल स्वयं एक संवेदनशील गीतकार हैं। सबको समान स्नेह और आदर देना उनकी प्रवृति थी। किसी को अपने 'छोटेपन' का अहसास नहीं होने देते थे। उम्र का, बुजुर्गियत का, विद्वता का, कविताई का और अभिजात्य का कोई अहं उनमें लेश-मात्र भी नहीं था। नये लेखकों, रचनाकारों से मिलने-जुलने की प्रवृत्ति उनमें प्रबल थी। अहंकार उनमें लेशमात्र भी नहीं था। मानवतावादी विचारधारा के व्यक्ति होने के वजह से ही उन्हें सर्वहारा वर्ग के प्रति ज्यादा सहानुभूति थी। उन्होंने वकीली करने के बावजूद कभी भी किसी को अपने स्वार्थ के लिए परेशान नहीं किया। वकीली उन्होंने सच को सच और झूठ को झूठ साबित करने के लिए किया। उनका कहना था - ''मैं तो पूरी तरह से जमीन और जिन्दगी से जुड़ा हुआ था। मेरा दृष्टिकोण मानववादी था। इतना जानता था कि आदमी को बेईमान नहीं होना चाहिए, किसी को छलना नहीं चाहिए।''

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी गीतकार हैं। बचपन से ही वे संस्कारित व्यक्ति थे। अन्याय उन्हें कतई पसन्द नहीं। बचपन में रूढ़ियों के बलि जरूर हुए, पर रूढ़िवादी वे कभी नहीं रहे। धर्म के आड़ मे चलनेवाले हथकंडे को वे अच्छी तरह जानते थे। शोषकों की मनोवृत्ति और शोषितों की मौनता के दुष्परिणाम को जानकर और समाज तथा व्यक्ति पर पड़नेवाले उसके दूरगामी प्रभाव से बौखलाकर उन्होंने अपने गीतों में शोषितों को सबल बनने तथा शोषकों को समूल नष्ट करने का आह्वान किया है। अपने गीतों में जीवन का यथार्थ-चित्रण कर सबकी

आँखें वे खोलना चाहते हैं ताकि लोग अपने समाज तथा शोषित-पीड़ित व्यक्तियों की स्थिति को जान सकें। उन्होंने अपने गीतों में एक तरफ ग्राम्य जीवन के सौन्दर्य का चित्रण किया है तो दूसरी तरफ किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों को भी चित्रित किया है। किसान इस धरती के प्रत्यक्ष भगवान और अन्नदाता हैं लेकिन मालिक और पूँजीपति उनका शोषण करके उनका सर्वस्व लूट लेते हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में इन शोषकों की पोल खोलकर रख दिया है। किसानों और मजदूरों के प्रति संवेदना का भाव केदारनाथ के गीतों में पूर्णतः प्रतिफलित है। गीतों में एक तरफ जहाँ समान अधिकार प्राप्त करने के लिए सर्वहाराओं में चेतना जगाने की कोशिश की गयी है वहीं दूसरी तरफ न्याय और अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्ष का भी आह्वान किया गया है। बिना संघर्ष के व्यवस्था परिवर्तन संभव नहीं। गीतों में प्रकृति और प्रेम को बखूबी उभारा गया है। प्रकृति मानव की तो सहचरी आदिकाल से ही रही है, लेकिन कुछ स्वार्थी तत्वों के वजह से आज प्रकृति विद्रूप हो चुकी है। प्रकृति के प्रति गीतकार की संवेदना बहुत अधिक है। प्रकृति के पेड़ तो मानव के अग्रज हैं। हमारा जीवन प्रकृति के प्रत्येक उपादान से ही चल रहा है। प्रकृति की हानि जीवन और जगत की हानि है। अतः केदारनाथ ने अपने गीतों में प्रकृति के प्रति प्रेम-भाव को जागृत करने की कोशिश की है। आज का प्रेम वासना का रूप ले चुका है। प्रेम स्वार्थ के जंजीरों में जकड़ चुका है। केदारनाथ ने अपने गीतों में एकनिष्ठ दाम्पत्य-प्रेम के स्वस्थ स्वरूप को दिखाकर लोगों को उस ओर अग्रसर कराना चाहा है।

शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय प्रगतिवाद और केदारनाथ अग्रवाल के जीवन-परिवेश से संबंधित है, जो छः उप-अध्यायों में विभाजित है। इसमें प्रगतिवाद की परिभाषा, स्वरूप, विशेषताएँ, प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द की व्याख्या, केदारनाथ अग्रवाल का जीवन परिचय, उनकी कृतियों का परिचय, उनका परिवेश तथा प्रगतिवाद के पूर्व की हिन्दी गीतधारा तथा प्रगतिवादी गीत एवं विशेषताओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। केदारनाथ का जीवन और परिवेश उनकी रचनाओं में-खास करके गीतों में - पूरी तरह से प्रतिफलित हुआ है, क्योंकि रचनाएँ

अंतर्मन की बाह्य प्रतिफलन होती है। एक संवेदनहीन व्यक्ति कभी भी किसी दूसरे के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकता।

शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में ग्राम्य-जीवन और संस्कृति से संबंधित है। इसमें ग्राम्य जीवन का सौन्दर्य तथा अभाव-अभियोग का चित्रण है। इस अध्याय को चार उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है, क्योंकि केदारनाथ अग्रवाल गहन इंद्रिय संवेदना, सामाजिक प्रतिबद्धता के गहरे सरोकार, आधुनिक बोध और विकासमान ऐतिहासिकता की संयुक्त समझदारी से पैदा हुई भीतरी छटपटाहट, लोक-सौन्दर्य और किसान चेतना की मस्ती और उसकी उत्सवधर्मिता के उर्ध्वमुखी गीतकार हैं। उन्होंने सौन्दर्य को ग्रामीण परिवेश और श्रम-संस्कृति में देखा है। द्वितीय उप-अध्याय किसान जीवन के संघर्ष तथा अभावों से संबंधित है। इसमें केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में चित्रित किसानों के अभावों का उल्लेख किया गया है, जिसके वजह से गीतकार की संवेदना उन संघर्षशील अन्नदाताओं के प्रति है। गीतकार की संवेदना पाठकों की भी संवेदना बन जाती है। प्रस्तुत अध्याय का तृतीय उप-अध्याय प्रकृति से संबंधित है। इसमें प्रकृति के प्रति गीतकार की संवेदना पूर्णतः संप्रेषित है। केदारनाथ के गीतों में एकतरफ देशी माटी की सोंधी महक है तो दूसरी तरफ प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण। साहित्य जगत में इनकी ख्याति का आधार प्रकृतिपरक गीत ही हैं। इनमें चित्रित प्रकृति न तो वास्तविकता से दूर की आलंकारिक कल्पना का चोला पहने हुए हैं और न ही छायावादी कवियों की तरह रहस्यात्मकता का आवरण उस पर चढ़ा है। केदारनाथ के गीतों में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन और मानवीकरण के रूप में चित्रित है। वह कहीं-कहीं सहचरी के रूप में भी दिखाई पड़ती है। प्रकृति के साथ तादात्मय पर उन्होंने लिखा है - ''मै अब अपने आस-पास से, लोगों से, पेड़-पशुओं और पक्षियों से, नदी, पहाड़ और हो रहे घटना-क्रम से सम्बद्ध बना रहता हूँ। यही मानव जीवन है। मैं जब भी इस सबसे असम्बद्ध होने लगूँगा तभी मर जाऊँगा'' गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर ही बच्चन सिंह ने उनके विषय में लिखा है -- ''केदार छायावादोत्तर कविता के पंत हैं।'' चौथा उप-अध्याय प्रेम से संबंधित है। प्रेम मानव जीवन का एक अनमोल रत्न है। केदारनाथ के

गीतों में चित्रित प्रेम एकनिष्ठ और स्वकीया प्रेम है। उन्होंने कहीं भी मानसिक तृप्ति के लिए परनारी के सौन्दर्य को चित्रित नहीं किया है। जहाँ कहीं भी वे प्रेम का चित्र उभारते हैं वहाँ केन्द्रविन्दु में उनकी धर्मपत्नी ही होती हैं। उनके गीतों में प्रेम का एकनिष्ठ और शुद्ध रूप ही दिखाई पड़ता है। केदारनाथ ने स्वयं स्वीकार किया है - ''सौन्दर्य प्रकृति में भी है और नारी में भी। यह तो कवि-कवि पर निर्भर है कि वह अपने जीवन में प्रकृति के सौन्दर्य से सम्बद्ध हुआ है या कि नारी के सौन्दर्य से अथवा दोनों के सौन्दर्य से। मेरी रचनाओं में दोनों को समान स्थान मिला है। प्रकृति भी उतनी ही आकर्षक और प्रेरक होती है, जितनी नारी।''

शोध-प्रबंध का तृतीय अध्याय सर्वहारा वर्ग के जीवन से संबंधित है, जिसे सात उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप-अध्याय सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति से संबंधित है। केदारनाथ अग्रवाल को किसान और मजदूरों से ज्यादा हमदर्दी थी। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है -- ''मुझे अपने जीवन में जितने छोटे और गरीब आदमी मिले, वे उन सभी बड़े व ओहदेदारों व शक्तिसम्पन्न पैसे वालों से ज्यादा ही चरित्रवान और कर्मठ आदमी लगे और वही जीवन जीने के लिए सौ-सौ तकलीफें उठाते हैं और कष्ट पर कष्ट झेलते हैं। फिर भी आदमी की तरह जीने के लिए वे ललकते और जीवन की आग और आँधी को पकड़ते और मरते-खपते रहते है।'' केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में सर्वहाराओं के प्रति जो सहानुभूति और संवेदना है उसे ही इस उप-अध्याय में चित्रित किया गया है। दूसरा उप-अध्याय जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। तीसरे उप-अध्याय में शोषण और उत्पीड़न का जो विरोध केदारनाथ के गीतों में मिलता है उसका सविस्तार वर्णन किया गया है। चौथा उप-अध्याय न्याय एवं अधिकार के लिए संघर्ष का आह्वान से संबंधित है। इसमें सर्वहाराओं को अपने अधिकार प्राप्ति और न्याय प्राप्ति के लिए गीतकार ने गीतों में संघर्ष करने के लिए जो प्रेरणा दिया है उसका उल्लेख किया गया है। पाँचवा उप-अध्याय सामानाधिकार की चेतना से संबंधित है। इसमें पूँजीवाद की दीवार तोड़ समता की स्थापना की बात कही गयी है। समान अधिकार प्राप्ति के लिए गीतकार ने अपने गीतों में शोषितों और पीड़ितो के अन्दर एक चेतना जगाने की कोशिश की है, ताकि

समाजवाद की स्थापना हो सके। छठा उप-अध्याय पूँजीवाद के विरोध से संबंधित है। पूँजीवादी व्यवस्था में कतई समाजवाद की स्थापना संभव नहीं। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में पूँजीवाद रूपी दानव को खत्म करने की बात की है। पूँजीवादी व्यवस्था समाज में विकृतियाँ लाती है और व्यक्ति को बर्बाद करती है। शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिए पूँजीवाद का खात्मा नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय का सातवाँ उप-अध्याय रूढ़ि का विरोध है। परम्परावादी मानसिकता और रूढ़ियाँ कभी कल्याणकारी नहीं होती। प्रगतिवादी चाहता है कि धर्म, समाज और जीवन की सभी रूढ़ियों को समाप्त किया जाये, क्योंकि ये सब पूर्व-व्यवस्थाओं की ही देन हैं, प्रतिक्रियावादी हैं और श्रमिकों का अहित करती हैं। ईश्वर, भाग्यवाद, धर्म, परम्परागत रीति-रिवाज सब व्यर्थ हैं। धर्म अफीम का नशा है और भाग्य भ्रांति है। केदारनाथ अग्रवाल बचपन से ही रूढ़ि विरोधी मानसिकता के व्यक्ति रहे हैं। अतः उन्होंने अपने गीतों में रूढ़ि का खुलकर विरोध किया है। प्रस्तुत उप-अध्याय में गीतों में जिन रूढ़ियों का विरोध किया गया है उसी पर प्रकाश डाला गया है।

शोध-प्रबंध का चतुर्थ अध्याय केदारनाथ के गीतः गीत रचना के तत्वों की दृष्टि से संबंधित है। इस अध्याय में गीत-तत्व की दृष्टि से केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का मूल्यांकन किया गया है और उन्हें एक सफल गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

शोध-प्रबंध का पंचम अध्याय भाषा तथा शिल्प विधान से संबंधित है। इसे पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। इस अध्याय में मूल रूप से केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त भाषा, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब और मिथकों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम उप अध्याय में भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए उसमें प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के शब्दों (तत्सम, तदभव, देशज, विदेशी) पर विचार किया गया है। गीतों की भाषा सहज, सरल, मुहावरेदानी से भरपूर एवं पात्रानुकूल है। द्वितीय उप-अध्याय अलंकार योजना से संबंधित है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त शब्दालंकार और अर्थालंकारों का अध्ययन किया गया है। अलंकार गीतों को और भी सुन्दर बनाने में सक्षम हुए हैं। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - ''मेरी सौन्दर्य-प्रियता

शाब्दिक-आलंकारिक क्रीड़ा-कौतुकी स्वभाव की नहीं होती, मानवीय स्वभाव की अभिव्यक्ति की होती है।'' उनके गीतों में अलंकार अनायास आये हुए हैं। प्रकृति-चित्रण में ज्यादातर मानवीकरण अलंकार का प्रयोग मिलता है। तृतीय उप-अध्याय प्रतीक योजना से संबंधित है। इसमें केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त प्रतीकों का अध्ययन किया गया है। गीतों में प्रयुक्त प्रतीक बौद्धिक एवं संवेदात्मक हैं। बौद्धिक प्रतीक विचारों एवं संवेगों की मिश्रित उद्‌भावना करते हैं तथा संवेगात्मक प्रतीक भावों की अंतरंगता को प्रकट करते हैं। गीतों में प्रयुक्त 'सूरज' कर्मशील व्यक्ति का प्रतीक है, 'तुरंग' और घुड़सवार क्रमशः शोषित और शोषक के प्रतीक हैं, 'कालीमिट्‌टी' अदम्य साहसी किसान का प्रतीक है; 'छोटे हाथ' कृषक और मजदूरों के प्रतीक, 'झोपड़ी' और 'महल' क्रमशः सर्वहारा और अभिजात्य वर्ग के प्रतीक, 'भुजंग' नेताओं के प्रतीक, 'चिड़िया' मानव का आकुल अंतर के प्रतीक, 'भैंस' स्वार्थी और शोषकों के प्रतीक, 'घूरे का घास'-सर्वहारा का प्रतीक; 'कौआ' और 'कबूतर' क्रमशः शोषक और शोषित के प्रतीक के रूप में चित्रित हैं। चतुर्थ उप-अध्याय बिम्ब-विधान से संबंधित है। बिम्ब का निर्माण ऐसी चयन-प्रक्रिया है जो ध्वनि, गति और प्रकृति के प्रभावों से जीवन्त होकर भावक की विचार और संवेदना-तंत्रियों को झंकृत कर देता है; मनोवेगों को उद्वेलित कर देता है। इस उप-अध्याय में केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में प्रयुक्त बिम्ब का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। गीतों में बिम्बों का प्रयोग यथास्थान, यथासंभव और आवश्यकतानुसार हुआ है। गीतों में प्रयुक्त बिम्ब इन्द्रियग्राह्य हैं। इन्द्रिय-संवेदना के आधार पर वर्गीकृत सभी बिम्ब-दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्राण और आस्वाद्य-का प्रयोग गीतों में हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय का पंचम उप-अध्याय मिथकों का प्रयोग से संबंधित है। मिथक और साहित्य का घनिष्ठ संबंध अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। अतः केदारनाथ के गीतों में मिथकों का प्रयोग मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हालाँकि केदारनाथ अग्रवाल मिथक के पक्षपाती नहीं थे, फिर भी वे इससे बच नहीं पाये हैं। जाने-अनजाने उनके गीतों में मिथकों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने सौन्दर्यानुभूति के लिए 'मिथ' का प्रयोग नहीं किया है। ये मिथ आधुनिक संदर्भ तथा परिस्थितियों को उभारने के लिए

प्रयुक्त हुए हैं। मिथों द्वारा काव्याभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होती है, अतः कथन को प्रभावशाली बनाने, व्यवस्था परिवर्तन करने तथा मानसिकता बदलने के लिए ही केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों में 'मिथ' का प्रयोग किया है।

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों के संवेदनात्मक एवं शिल्पगत अध्ययन के उपरान्त वस्तुनिष्ठ शोध-निष्कर्षों की निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं --

1) केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी गीतकार हैं। उनके गीतों का अनुशीलन और अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि गीत के सभी तत्व उनमें मौजूद हैं। अतः हिन्दी साहित्य के प्रगतिवादी गीतधारा के वे एक श्रेष्ठ गीतकार हैं।

2) केदारनाथ अग्रवाल अपने जनपद के जीवन की समस्याओं एवं संघर्षों से जुड़े हुए व्यापक भारतीय समाज की प्रकृति, संस्कृति और विकृतियों की पहचान तथा अभिव्यक्ति करने वाले गीतकार हैं।

3) केदारनाथ अग्रवाल गीतों में जहाँ एक और ग्राम्य जीवन एवं संस्कृति को उद्घाटित करते हैं वहीं दूसरी और सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी पूरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

4) केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में अधिकार प्राप्ति एवं न्याय के लिए क्रांति की चेतना तथा संघर्ष का आह्वान मिलता है।

5) गीतों में सामाजिक विकृतियों एवं रूढ़ियों का पूरजोर विरोध कर स्वस्थ मानसिकता और स्वस्थ समाज की स्थापना पर बल दिया गया है।

6) लोक जीवन से सीधे सरल उपमानों, शब्दों, प्रतीकों, बिम्बों को लेकर रचित गीत लोक रस से संपृक्त हैं।

7) केदारनाथ अग्रवाल के गीतों की भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का मिश्रण है। मुहावरे का भी यथास्थान, यथासंभव प्रयोग हुआ है। उनकी भाषिक संवेदनशीलता में सामाजिक संवेदनशीलता छिपी हुई है। अतः उनके गीतों की भाषा देश, काल, परिवेश और पात्र के अनुरूप है।

8) केदारनाथ अग्रवाल कोई अलंकारवादी गीतकार नहीं हैं। अतः उनके गीतों में अलंकारों का प्रयोग सायास नहीं हुआ है। अपने गीतों में उन्होंने कथ्य की माँग के अनुसार ही अलंकारों को प्रयोग में लाया है।

अंततः कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल एक प्रगतिवादी गीतकार हैं। प्रगतिवाद की सारी विशेषताएँ उनके गीतों में मिल जाती है। जबकि वे मानवतावादी विचारधारा के एक गीतकार हैं, उनकी संवेदना सर्वहाराओं और पीड़ितों के प्रति है। आडम्बर उनमें लेशमात्र भी नहीं, चाहे वह भाव हो या शब्द-शिल्प। अपने सहज-सरल व्यक्तित्व एवं संवेदनशीलता के वजह से हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद युग के एक सफल गीतकार के रूप में केदारनाथ अग्रवाल अमर रहेंगे।

आशा है प्रस्तुत शोध-प्रबंध केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का संवेदनात्मक और शिल्पगत अध्ययन गीतों के भाव-पक्ष और कलापक्ष के अंतःसंबंध के साथ-साथ गीतकार के मनोवृत्ति को समझने में सहायक होगा।

अनुक्रमणिका

क. आधार ग्रंथ

1. केदारनाथ अग्रवाल - अनहारी हरियाली, साहित्य भंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

2. केदारनाथ अग्रवाल - अपूर्वा, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

3. केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना, साहित्यभंडार 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

4. केदारनाथ अग्रवाल - आत्मगंध, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

5. केदारनाथ अग्रवाल - कहें केदार खरी खरी, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

6. केदारनाथ अग्रवाल - कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

7. केदारनाथ अग्रवाल - खुली आँखे, खुले डैने, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

8. केदारनाथ अग्रवाल - गुलमेंहदी, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

9. केदारनाथ अग्रवाल - जमुन जल तुम, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

10. केदारनाथ अग्रवाल - जो शिलाएँ तोड़ते हैं, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

11. केदारनाथ अग्रवाल - पुष्पदीप, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

12. केदारनाथ अग्रवाल - पंख और पतवार, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

13.केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

14.केदारनाथ अग्रवाल - बम्बई का रक्त स्नान, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

15.केदारनाथ अग्रवाल - बोले बोल अबोल, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

16.केदारनाथ अग्रवाल - मार प्यार की थापें, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

17.केदारनाथ अग्रवाल - वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

18.केदारनाथ अग्रवाल - हे मेरी तुम, साहित्यभंडार, 50 चाहचन्द, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण, 2009

ख. अन्य सहायक-ग्रंथ

1. अजय तिवारी (सं) - 'केदारनाथ अग्रवाल', परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996
2. अनुराग मिश्र - नागार्जुन एवं केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक अभिव्यक्तियाँ और धारणाएँ, साहित्य भंडार, इलाहाबाद-211003, प्रथम संस्करण, 2009
3. अरविन्द त्रिपाठी - कवियों की पृथ्वी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2004
4. अवधेश नारायण मिश्र - 'पौरूष के कवि केदार', आर्यभाषा संस्थान, वाराणसी, 2000
5. अशोक त्रिपाठी (सं)- संचयिता : केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2011
6. उमाशंकर तिवारी - आधुनिक गीतिकाव्य, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-2, द्वितीय संस्करण-2000

7. कांति लोधी (सं) - साठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य : परम्परा और प्रयोग, अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेत नगर, कानपुर-14, प्रथम संस्करण, 1994
8. केदारनाथ अग्रवाल - विवेक विवेचन, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010
9. केदारनाथ अग्रवाल - समय समय पर, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010
10. केदारनाथ अग्रवाल - विचार बोध, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010
11. केदारनाथ अग्रवाल - बस्ती खिले गुलाबों की, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010
12. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, 1971
13. कौशल नन्दन गोस्वामी - छायावादी काव्य में संगीत तत्व, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, प्रथम संस्करण, 1991
14. कृष्णदेव झारी - हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, 33/1 भुलभुल्लैया रोड, महरौली, नयी दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण, 2012
15. कृष्णलाल हंस - प्रगतिवादी काव्य-साहित्य, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण, 1971
16. गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, 87/2591, आचार्य नगर, कानपुर-3, संस्करण 1965
17. गुरुचरण सिंह - कविता का समकालीन, के.एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, 1990
18. गुलाबराय - सिद्धान्त और अध्ययन, आत्माराम एंड संस लि० दिल्ली, 1999
19. गुलाबराय - काव्य के रूप, आत्माराम एंड संस लि० दिल्ली, 1992
20. चन्द्रबली सिंह - लोकदृष्टि और हिन्दी कविता, पिपुल लिटरेसी, दिल्ली, 1986
21. जयदेव सिंह एवं डॉ. वासुदेव सिंह - कबीर वाणी पीयूष, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण, 1995

22. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त, राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली-110002, संस्करण 1997
23. जीवन सिंह - कविता और कवि कर्म, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण-1999
24. जीवन सिंह - कविता की लोक प्रकृति, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1990
25. द्वारिका प्रसाद सक्सेना (सं.) - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, संस्करण 2009
26. देवराज - नई कविता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2002
27. नन्दकिशोर नवल - कविता की मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 1996
28. नरेन्द्र पुण्डरीक (सं) - मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009
29. नागार्जुन - सतरंगे पंखोंवाली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 110002, संस्करण 2001
30. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण- 1990
31. परेशचन्द्र देवशर्मा (सं)- हिन्दी कविता सुमन, असम हिन्दी प्रकाशन, गुवाहाटी, संस्करण- 1998
32. प्रभाकर श्रोत्रिय - कवि परम्परा : तुलसी से त्रिलोचन तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण-2006
33. पी. माणिक्याम्बा - महादेवी के काव्य में बिम्ब-विधान, सौरभ प्रकाशन, 39/2, आर.टी. विजय नगर कॉलोनी, हैदराबाद-500457, प्रथम संस्करण, जुलाई 1985

34. महेन्द्रपाल शर्मा (कौशिक) - आधुनिक हिन्दी काव्य में जीवन-दर्शन (भाग-1, 2) संजय प्रकाशन, 4378/4 डी. 209, जे.एम.डी. हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2008
35. मंजु गुप्ता - आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान, मिनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज मेरठ तथा 4 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6, वर्ष 1974
36. मृत्युंजय उपाध्याय - हिन्दी की प्रगतिशील कविता : स्वरूप और प्रतिमान, अमर प्रकाशन, सदर बाजार, मथुरा - 281001 (उ०प्र०) प्रथम संस्करण, 2000
37. मैनेजर पाण्डेय - हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2013
38. रतन कुमार पाण्डेय - प्रगतिशील कविता : कल और आज, विश्वविद्यालय प्रकाशन, संस्करण, 1987
39. रमेश गौतम - मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, राधारानी प्रकाशन, 29/61, गली नं. 11, विश्वास नगर, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण, 1997
40. रमेश रंजक - नये गीत का उद्‌भव और विकास, पुस्तकालय प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण, 2002
41. रवि रंजन - प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण 1995
42. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी - विनय-पत्रिका, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा
43. राधेश्याम बंधु (सं) - नवगीत और उसका युगबोध, समग्र चेतना, बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण 2004
44. रामकृष्ण अग्रवाल - प्रसाद काव्य में बिम्ब-योजना, लोकभारती प्रकाशन, 15-A, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण, अगस्त 1979
45. रामचन्द्र मालवीय - समीक्षाएँ एवं मूल्यांकन : केदारनाथ अग्रवाल, शब्दपीठ, इलाहाबाद, संस्करण 1980

46. रामनारायण शुक्ल - जनवादी समझ और साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1985
47. रामप्रकाश एवं दिनेश गुप्त - प्रयोजनमूलक हिन्दी : संरचना एवं अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1997
48. रामवचन राय - कविता के सरोकार, नोलेज प्लस, 6/15, पंजाबी बाग एक्सटेंशन, नई दिल्ली, 110026, संस्करण 2012
49. रामविलास शर्मा - रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति, 2013
50. रामविलास शर्मा- श्रम का सूरज, परिमल प्रकाशन, 17, एम.आई.जी. बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर-211006, संस्करण 2007
51. रामविलास शर्मा - प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011
52. रामविलास शर्मा, एवं अशोक त्रिपाठी - मित्र-संवाद (भाग-1, 2), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण 2010
53. वशिष्ठ अनूप - हिन्दी की जनवादी कविता, राधा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - 2, प्रथम संस्करण, 1994
54. वशिष्ठ अनूप - हिन्दी गीत का विकास और प्रमुख गीतकार, प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ-226620, प्रथम संस्करण, 2007
55. वाचस्पति पाठक (सं) - प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1995
56. विजयपाल सिंह (सं) - रीतिकाव्य संग्रह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1995
57. विजयपाल सिंह (सं) - आधुनिक काव्यधारा, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, 221001, संस्करण 2007

58. विजय बहादुर सिंह - कविता और संवेदना, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, संस्करण 1998
59. विनय कुमार पाठक एवं श्रीमती जयश्री शुक्ल - हिन्दी गीतयात्रा एवं समकालीन संदर्भ, भावना प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली-91, प्रथम संस्करण, 2005
60. विश्वनाथ त्रिपाठी - पेड़ का हाथ, वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
61. शंभुनाथ सिंह (सं) - छायावाद युग, सरस्वती मन्दिर प्रकाशन, जतनवर, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1962
62. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009
63. शिवकुमार मिश्र - साहित्य आलोचना के प्रगतिशील आयास, पंचकूल प्रकाशन, जयपुर, 1987
64. शिवनारायण सिंह एवं डॉ. उमाशंकर तिवारी (सं) - नवगीत के प्रतिमान तथा आयाम, परख प्रकाशन, सहसराम, रोहिताश्व, बिहार- 821115, प्रथम संस्करण, 1998
65. शिवशंकर मिश्र - जनवादी कविता का संदर्भ, प्रकाशनम प्रकाशन, नया टोला, पटना-4, प्रथम संस्करण 1984
66. श्रीनिवास शर्मा (सं) - जायसी ग्रंथावली, अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6, संस्करण, 2011
67. सच्चिदानन्द तिवारी - साठोत्तरी हिन्दी कविता में गीतितत्त्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1964
68. सन्तेन्द्र शर्मा - नवगीत संवेदना और शिल्प, साहित्य संगम प्रकाशन, नया 100, लूकरगंज, इलाहबाद-1, प्रथम संस्करण-1993
69. सियाराम तिवारी - साहित्यशास्त्र और काव्यभाषा, वि०भू० प्रकाशन, साहिबाबाद- 201005, प्रथम संस्करण-1978

70. सुधा गुप्ता - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य : सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन, संघी प्रकाशन, जयपुर - 302003, प्रथम संस्करण-1984

71. सुरेश गौतम - सूर्यम्पश्या गीतयात्रा पदचाप एवं प्रतीतियाँ (भाग-एक, दो) शारदा प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-2, प्रथम संस्करण, 1993

72. सुरेश गौतम एवं वीणा गौतम - नवगीत इतिहास और उपलब्धि, शारदा प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण-1985

73. हजारी प्रसाद द्विवेदी (सं) - कबीर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, छात्र संस्करण, 1990

74. हरवंशलाल शर्मा (सं) - सूरदास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि० 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, छठी आवृत्ति 1995

75. हरवंशलाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 202001 षष्ठम संस्करण, सन्, 1995

76. हरि शर्मा - लोकचेतना और हिन्दी कविता, निर्मल पब्लिकेशंस, कबीर नगर, गली नं. 3, शाहदरा, दिल्ली-94, संस्करण 1997

ग. हिन्दी साहित्य का इतिहास

1. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, ए-95, सेक्टर-5, नोएडा-201301, संस्करण 1993

2. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण-1990

3. श्रीनिवास शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली-6, नवीन संस्करण-2010

4. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि० 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, तीसरी आवृत्ति-2009

5. बच्चन सिंह - आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन 15-ए दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण, 2016

6. रमेशचन्द्र शर्मा - छायावाद से नई कविता, भारत प्रकाशन मन्दिर (रजि०) अलीगढ़, प्रथम संस्करण, 1998

7. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, तीसवाँ संस्करण, 1986

8. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली 2012

9. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 110002, चौथा संस्करण, 1998

10. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी साहित्य एक परिचय, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण, मार्च-1982

घ. भाषा विज्ञान

1. देवेन्द्रनाथ शर्मा - भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा०लि०,
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, आवृति : 1992

2. बाबूराम सक्सेना - सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12-सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, सन् 1995 ई०

3. भोलाराम तिवारी - भाषाविज्ञान, किताब महल, 22A- सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, 2015

4. भोलानाथ तिवारी - हिन्दी भाषा, किताब महल, 15 थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, प्रस्तुत संस्करण : 1992

ङ. साहित्यिक निबंध

1. गणपतिचन्द्र गुप्त (सं)- साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवम संस्करण- 1987

2. त्रिभुवन सिंह (सं)- आधुनिक साहित्यिक निबंध, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1982

च. काव्यशास्त्र

1. भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001, दशम संस्करण, 1993

2. भगीरथ मिश्र - नया काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी 221001, प्रथम बार, 1993

3. मम्मट - काव्यप्रकाश, व्याख्याकार : डॉ. सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003

4. राजकिशोर सिंह एवं दुर्गाशंकर मिश्र - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ-20, प्रथम संस्करण, 1991

5. विश्वनाथ कविराज - साहित्यदर्पण, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 221001, षष्ठ संस्करण, वि.सं. 2058

6. सत्यदेव चौधरी एवं शांतिस्वरूप गुप्त - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली-6, 2008

छ. शब्दकोश

1. कालिकाप्रसाद, रामबल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (सं.)- बृहत् हिन्दी कोश : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, सप्तम परिवद्धित संस्करण, सितम्बर, 1992

2. धीरेन्द्र वर्मा (सं.) - 'हिन्दी साहित्यकोश, भाग-1' (पारिभाषिक शब्दावली), ज्ञान मण्डल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, 2007

3. धीरेन्द्र वर्मा (सं.) - हिन्दी साहित्यकोश, भाग-1' (नामवाची शब्दावली), ज्ञान मण्डल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, 2007

4. रामचन्द्र वर्मा (सं.)- बृहत् प्रामाणिक हिन्दीकोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005

ज. पत्र-पत्रिकाओं के अंक

1. अनहद - (सं) संतोष कुमार चतुर्वेदी, वर्ष-1, अंक-1 : जनवरी, 2011, इलाहाबाद

2. अनुसंधान - (सं) शागुफ्ता नियाज, वर्ष-4, जुलाई-सितम्बर, 2013, आलीगढ़

3. अपनी माटी (त्रैमासिक ई-पत्रिका), किसान विशेषांक वर्ष-4, अंक-25, अप्रैल-सितम्बर, चितौड़गढ़, राजस्थान

4. दस्तावेज - (सं) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वर्ष-33, अंक-2, जनवरी-मार्च, 2011

5. सम्बोधन- (सं) गुलफ़ाम, वर्ष 45, अंक-2, पूर्णांक-144, जनवरी-मार्च, 2011

6. समकालीन भारतीय साहित्य- (सं.) शानी, केदारनाथ अग्रवाल पर परमानंद श्रीवास्तव का लेख, वर्ष-9, अंक-28, अप्रैल-जून, 1987

7. साहित्य भारती- (सं) अमिता दूबे, वर्ष-20, अंक-3, जुलाई-सितम्बर, 2017, लखनऊ

8. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) - (सं.) रविनन्दन सिंह, भाग-78, अंक-2, अप्रैल-जून, 2017, इलाहाबाद।